भिन्न भिन्न नहीं रहने से अर्थात् एक ही रहने से कार्य में वैलक्षण्य नहीं होता है। रूप-नाशकाग्नि संयोग मात्र को रूपोत्पादकता मान कर ही यह दोष वतलाया गया है। अन्यथा पूर्व रूप ध्वंसादि को भी यदि सहकारी मानें तो रक्तत्व रक्ततरत्व रक्त तमत्वादि रूप कार्य वैलक्षण्य की अनुपपत्ति नहीं होगी। जैसे प्रथम अग्नि संयोग से श्यामरूप का नाश और उस नाश के सहित उसी अग्नि संयोग से रक्त रूपोत्पत्ति और दूसरे अग्निसंयोग से रक्त रूप का नाश और तादृश नाश सहित उक्त संयोग से रक्ततर रूपोत्पत्ति और तीसरे अग्नि संयोग से रक्ततर रूप का नाश और तादृश नाश सहित उक्त संयोग से रक्ततम रूप की उत्पत्ति इसी प्रकार दूसरे जगह भी जानना चाहिये।

(२९) अथ परमाण्वन्तरे कर्मचिन्तनात्पञ्चमादि क्षणेऽपि गुणोत्पत्तिः। (३०) तथाहि। (३१) एकत्रपरमाणौ कर्म। (३२) ततो विभागः। (३३) तत आरम्भकसंयोगनाश परमाण्वन्तरे कर्मणी। (क) ततस्तु द्व्यणुक नाशः परमाण्वन्तर कर्मजन्यविभाग इत्येकः कालः। (ख) ततः श्यामादिनाशः, विभागाच्च पूर्व संयोग नाशश्चेत्येकः कालः, (ग) ततो रक्तोत्पत्तिः द्रव्यारम्भकसंयोगश्चेत्येकः कालः। (घ) अथ द्व्यणुकोत्पत्तिः। (ङ) ततो रक्तोत्पत्तिरिति। (च) पञ्चक्षणा।

(२९) * अगर द्व्यणुक के एक परमाणु में द्व्यणुकनाशानुकूल कर्म और उसी द्व्यणुक के दूसरे परमाणु में द्व्यणुकोत्पादनानुकूल कर्म मानें तो ५, ६, ७, ८, क्षणकी भी प्रक्रिया हो सकती है। (३०) जैसे—(३१) अग्नि संयोग से एक परमाणु में कर्म (३२) तव परमाणुद्वय का विभाग। (३३) तव द्व्यणुकारम्भक संयोग का नाश और द्व्यणुकोत्पादनानुकूल (उक्त द्व्यणुकके) दूसरे परमाणु मे कर्म (क) तव द्व्यणुक का नाश और परमाण्वन्तर के कर्म से पूर्व देश के साथ उक्त परमाणु का विभाग। (ख) तव परमाणु के श्याम रूप का नाश और परमाणु के पूर्व देश के साथ उत्पन्न हुए विभाग से परमाणु और पूर्व देशके संयोग का नाश। (ग) उस के वाद परमाणु में रक्त रूपोत्पत्ति और द्व्यणुकारम्भक रक्त परमाणुद्वय का संयोग। (घ) तव द्व्यणुक की उत्पत्ति (ङ) और उस के अनन्तर द्व्यणुक में रक्त रूप की उत्पत्ति (च) यह पांच क्षण की प्रक्रिया हुई।

---

* अगर द्व्यणुक के एकही परमाणु में द्व्यणुक नाशानुकूल कर्म और द्व्यणुकोत्पादनानुकूल कर्म दोनों माने जाय तो ९, १०, ११, क्षण की प्रक्रियायें होती हैं। गुणोत्पत्ति रक्तादि रूपोत्पत्तिः।

(१) अनित्यमिति। द्व्यणुकस्य त्रसरेणोश्च परिमाणं प्रति परमाणुपरिमाणं द्व्यणुकपरिमाणं वा न कारणं परिमाणस्य स्वसमान जातीयोत्कृष्टपरिमाणजनकत्वात्। (२) द्व्यणुकस्याणु परिमाणं तु परमाणवणुत्वापेक्षया नोत्कृष्टम्। त्रसरेणुपरिमाणं तु न सजातीयम्। (३) अतः परमाणौ द्वित्वसंख्या द्व्यणुकपरिमाणस्य, द्वयणुके त्रित्वसंख्या च त्रसरेणु परिमाणस्यासमवायिकारणमित्यर्थः।

(१) द्व्यणुक परिमाण के प्रति परमाणु परिमाण एवं त्र्यणुक परिमाण के प्रति द्व्यणुक परिमाण कारण नहीं हैं क्योंकि नियम है कि "परिमाण" स्व समान जातीय जो उत्कृष्ट परिमाण उसी का जनक होता है। (२) *इस स्थिति में द्व्यणुक परिमाण परमाणु परिमाणापेक्षया उत्कृष्ट अर्थात् अणुतर नहीं है एवं त्र्यणुकगत महत् परिमाण द्व्यणुकगत अणुपरिमाण का सजातीय नहीं है। (३) अतः द्व्यणुकपरिमाण और त्रसरेणु परिमाण के प्रति क्रमशः परमाणु परिमाण और द्व्यणुक परिमाण कारण नहीं है। किन्तु द्व्यणुक परिमाण के प्रति परमाणुगत द्वित्व संख्या" और त्रसरेणु परिमाण के प्रति द्व्यणुकगत त्रित्व संख्या असमवायि कारण है।

परिमाणजन्यं परिमाणमुदाहरति = परिमाणजन्य परिमाण का प्रदर्शन करते हैं।

का० ११२, ११३ पूर्वा०

परिमाणं घटादौ तु परिमाणज मुच्यते।
प्रचयः शिथिलाख्यो यः संयोगस्तेन जन्यते॥
परिमाणं तूलकादौ–

का० अर्थ।

घटादि (अवयवि) गत परिमाण कपालादि (अवयव) गत परिमाण से उत्पन्न होते हैं, तूलकादिगत शिथिल (ढीला) संयोग प्रचय कहा जाता है और प्रचय से तूलकादि में परिमाण की उत्पत्ति होती हैं।

(१) परिमाणं घटादाविति। घटादिपरिमाणं कपालादिपरिमाण जन्यम्। (२) प्रचयजन्यमुदाहर्तुं प्रचयं निर्वक्ति प्रचय इति।

(१) कारिकार्थ में स्पष्ट है। (२) प्रचयजन्य परिमाण को दिखाने के लिये पहले प्रचय का स्वरूप बतलाते हैं।

* "साजात्य" परिमाण विभाजक अणुत्व महत्त्वादि रूप से विवक्षित है। अतः द्व्यणुक परिमाण का सजातीय त्र्यणुक परिमाण नहीं है।

का० ११३ पूर्वा०

नाशस्त्वाश्रय नाशतः ।

का० अर्थ ।

परिमाण का नाश आश्रय नाश के अधीन है ।

(१) परिमाणं चाश्रयनाशादेव नश्यतीत्याह—(२) नाश इति । अर्थात्परिमाणस्यैव । (३) न चावयविनाशः कथं परिमाण नाशकः सत्यप्यवयविनि त्रिचतुरादिपरमाणु विश्लेषे तदुपचये चावयविनःप्रत्यभिज्ञानेऽपि परिमाणान्तरस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वादिति वाच्यम्, परमाणु विश्लेषे हिद्व्यणुकस्य नाशोऽवश्यमभ्युपेयस्तन्नाशे च त्रसरेणुनाश एवं क्रमेण महावयविनो नाशस्यावश्यकत्वात् ।

(१) करिकार्थ में स्पष्ट है । (२) नाश शब्द यहां परिमाण नाशका बोधक है । (३) शङ्का–जिस अवयवी से तीन चार परमाणु हट गये हैं अथवा उस में मिल गये हैं उस अवयवी में " सएवायम् " इत्याकारक प्रतीति पूर्ववत् होती है अतः अवयवी का नाश नहीं मान सकते और उस अवयवी में परिमाणान्तर प्रत्यक्ष सिद्ध है । इसलिये अवयवि नाश परिमाण नाशक कैसे होगा ? समा०--परमाणुओं के परस्पर हट जाने से उन के संयोग नष्ट हो जाने के कारण द्व्यणुक का नाश अवश्य मानना होगा । एवं द्व्यणुकों को नष्ट हो जाने से उन के संयोग नष्ट हो जाने के कारण त्रसरेणु का भी नाश अवश्य होगा । इस प्रकार महावयवी पर्यन्त का नाश अवश्य मानना होगा क्योंकि असमवायि कारण के नाश से द्रव्य का नाश अवश्य होता है ।

(४) सति च नाशकेऽनभ्युपगममात्रेण नाशस्यापलपितुमशक्यत्वात् । (५) शरीरादावयवोपचयेऽसमवायिकारणनाशस्यावश्यकत्वादवयविनाश आवश्यकः ।

(४) नाश की सामग्री रहने पर अस्वीकार मात्र से नाश का अपलाप नहीं हो सकता है । (५) एवं शरीरादि के अवयवों के उपचय स्थल में पूर्व शरीर के असमवायि कारण अवयव संयोग का विनाश अवश्य होता है । इसलिये अवयवी रूप शरीर का विनाश भी अवश्य मानना होगा जिससे पूर्व परिमाण नष्ट होकर परिमाणान्तर उत्पन्न होता है इस से भी पर्यवसित हुआ कि विना अवयवी के नाश से परिमाण का नाश नहीं होता है ।

(६) नच पटाद्यविनाशेऽपि तन्त्वन्तरसंयोगात्परिमाणाधिक्यं न स्यादिति वाच्यं, तत्रापि वेमाद्यभिघातेना समवायिकारणतन्तुसंयोगनाशात्पटनाशस्यावश्यंकत्वात् ।

(६) शंका—पट के रहते हुए भी कुछ तन्तुओं के जोड़ने से उस पट में परिमाण का आधिक्य होता है वह नहीं होगा क्योंकि विना पटके नाश होने से पूर्व परिमाण का नाश नहीं हो सकता है और विना पूर्व परिमाण नाश के परिमाणान्तर की उत्पत्ति नहीं होगी । समा०—तन्त्वन्तर संयोग जनक अभिघात से पट के असमवायि कारण तन्तुद्वय संयोग को नष्ट हो जाने से पट का नाश अवश्य मानना होगा ।

(७) किं च तन्त्वन्तरस्य तत्पटावयवत्वे पूर्वं तत्पट एव न स्यात्तन्त्वन्तररूपकारणा भावात् ।(८)तन्त्वन्तरस्या वयवत्वाभावे च न तेन परिमाणाधिक्यं संयुक्त द्रव्यान्तरवत्

(७) एवं तन्त्वन्तर यदि पूर्व पट को अवयव माना जाय तो (समवायि कारण रूप) तन्त्वन्तरें से पूर्व उक्त पटरूप कार्य ही सिद्ध नहीं होगा क्योंकि कार्य से पहले कारण का रहना आवश्यक है किन्तु वह यहां नहीं है। (८) यदि तन्त्वन्तर उक्त पट का कारण नहीं माना जाय तो उन तन्त्वन्तरों से परिमाण का आधिक्य नहीं होगा। जैसे घट पट के संयोग से उन दोनों का परिमाण नहीं बढ़ता है केवल संयुक्त व्यवहार मात्र होता है।

(९) तस्मात्तत्र तन्त्वन्तरसंयोगे सति पूर्वपटनाशस्ततः पटान्तरोत्पत्तिरित्यवश्यं स्वीकार्यम् । (१०) अवयविनः प्रत्यभिज्ञानं तु साजात्येन दीप कलिकादिवत् ।

(९) इसलिये पूर्व पट के साथ तन्त्वन्तर संयोग होने से पहले पूर्व पट का नाश एवं द्वितीय पट की उत्पत्ति होती है यह अवश्य मानना होगा । (१०) "सएवायं पटः" इत्याकारक तत् पटरूप अवयवी की प्रत्यभिज्ञा तो दीप शिखा को प्रति क्षण भिन्न होने पर भी "सैवेयं दीपकलिका" इत्याकारक प्रत्यभिज्ञा के समान साजात्य विषयक है ।

(११) न च पूर्वतन्तव एव तन्त्वन्तरसहकारात्पूर्वपटे सत्येव पटान्तरमारभन्तामिति वाच्यं, मूर्तयोः समानदेशताविरोधात्तत्र पटद्वयासंभवादेकदा नाना द्रव्यस्य तत्रोपलम्भस्य बाधितत्वाच्च । (१२) तस्मात्पूर्वद्रव्यस्य प्रतिबन्धकस्य विनाशे द्रव्यान्तरोत्पत्ति रित्यस्यावश्यमभ्युपेयत्वात् ॥

(११) शंका—पूर्वतन्तु नवीन तन्त्वन्तर के साहाय्य से पूर्व पट के रहते हुए ही पटान्तर की उत्पत्ति करता है ऐसा मानें वह भी नहीं हो सकता। क्योंकि दो मूर्त्त समवाय सम्बन्ध से एक जगह में नहीं रह सकते हैं। अतः एक तन्तु में पटद्वय की समवाय सम्बन्ध से उत्पत्ति असम्भव है। एवम् एक तन्तु में एक कालावच्छेदेन समवाय सम्बन्ध से दो पट का प्रत्यक्ष भी नहीं होता है। (१२) इस से यही पर्यवसित होता है कि समवाय सम्बन्ध से उत्तर पट का समवाय सम्बन्ध से प्रतिबन्धक जो पूर्व पट उस के नाश हुए विना नवीन पट की उत्पत्ति उन तन्तुवों में नहीं हो सकती यह आप को अवश्य मानना होगा।

पृथक्त्वं निरूपयति = पृथक्त्व का निरूपण करते हैं।

का० ११३, ११४

सङ्ख्यावत्तु पृथक्त्वं स्यात्पृथक्प्रत्ययकारणम् ॥
अन्योन्याभावतो नास्य चरितार्थत्वमिष्यते ।
अस्मात्पृथगिदं नेति प्रतीतिर्हि विलक्षणा ॥

का० अर्थ

यह इस से पृथक् है इस व्यवहार का असाधारण कारण पृथक्त्व है उस में नित्यत्वा नित्यत्व संख्या के समान है, वह पृथक्त्व अन्योन्या भाव से गतार्थ नहीं हो सकता है क्योंकि "इदमस्मात् पृथक्" इत्याकारक पृथक्त्व प्रतीति से "इदमिदन्न" इत्याकारक अन्योन्याभाव की प्रतीति में वैलक्षण्य का स्पष्ट भान होता है।

(१) संख्यावदिति। पृथक्प्रत्यया साधारणं कारणं पृथक्त्वम्। (२) तन्नित्यतादिकं संख्यावत्। तथाहि नित्येष्वेकत्वम् नित्यम्। अनित्येष्व नित्यम् अनित्यमेकत्वं तु आश्रयद्वितीयक्षणे चोत्पद्यतेऽऽश्रयनाशान्नश्यति। तथैक पृथक्त्वमपि। द्वित्वादिवच्च द्विपृक्त्वादिकमपीत्यर्थः।

(१) कारिकार्थ ही से स्पष्ट है। (२) पृथक्त्वगत नित्यत्व, अनित्यत्व, संख्या के समान है। जैसे नित्यगत एकत्व संख्या नित्य और अनित्यगत एकत्व संख्या अनित्य होती है। एवम् अनित्य एकत्व आश्रयोत्पत्ति के द्वितीय क्षण में उत्पन्नहोता है और आश्रय के नाश से नष्ट होता है। तथा एक पृथक्त्व भी नित्यगत नित्य और अनित्यगत अनित्य है एवम् आश्रयोत्पत्ति के द्वितीय क्षण में उत्पन्न होता है और आश्रय के नाश से नष्ट होता है। इसी प्रकार द्वित्वादिसंख्या के समान द्विपृथक्त्वादि भी अनित्य और अपेक्षाबुद्धि रूप निमित्त कारण से उत्पन्न होने वाला तथा अपेक्षाबुद्धि के नाश से नष्ट होने वाला है यही अभिप्राय है।

(३) नन्वयमस्मात्पृथगित्यादा वन्योन्याभावो भासते तत्कथं पृथक्त्वं गुणान्तरं स्वीक्रियते, न चास्तु पृथक्त्वं न त्वन्योन्याभाव इति वाच्यं, रूपं न घट इति प्रतीत्यनापत्तेः । (४) नहि रूपे घटावधिकं पृथक्त्वं गुणान्तरमस्ति न वा घटे घटावधिकं पृथक्त्वमस्ति येन परंपरा संबन्धः कल्प्यत त्यन्त आह । (५) अस्मादिति ।

(३) शङ्का—"इदमस्मात् पृथक्" इस प्रतीति में अन्योन्याभाव ही का भान मानने से कुछ हानि नहीं है तब पृथक्त्व रूप गुणान्तर मानना व्यर्थ है । यदि अन्योन्या भाव को नहीं मानकर "इदम् इदं न" इस प्रतीति का विषय पृथक्त्व ही को मानें तो इस प्रश्न का समाधान यह दिया जा सकता है कि ऐसी स्थिति में "रूपं न घटः" ऐसी प्रतीति नहीं होगी । (४) क्योंकि रूप को गुण होने के कारण घटावधिक पृथक्त्व रूप में नहीं रह सकता है क्योंकि गुण में गुण नहीं रहता है । "रूपं न घटः" इस प्रतीति में सामानाधिकरण्य सम्बन्ध से घटावधिक पृथक्त्व का रूप में भान होता है ऐसा भी नहीं कह सकते क्योंकि घट में यदि घटावधिक पृथक्त्व रहे तब घटवृत्ति रूप में घटावधिक पृथक्त्व सामानाधिकरण्य रूप परम्परा सम्बन्ध से भासित हो सकता है किन्तु ऐसा नहीं है इस से यह पर्यवसित हुआ कि अन्योन्या भाव को नहीं मानकर पृथक्त्व से अन्योन्या भाव को गतार्थ नहीं कर सकते हैं अर्थात् अन्योन्या भाव मानना आवश्यक है । तब "इदमस्मात् पृथक्" इस प्रतीतिका विषय अन्योन्या भाव ही को मान लेने से काम चल जाता है तब पृथक्त्व को मानना व्यर्थ है यह प्रश्न अभी तक निरुत्तरित रह गया अतः (५) "अस्मात् पृथक् इदं नेति" इत्यादि कारिका से समाधान करते हैं कि अन्योन्या भाव ही को मान कर यदि पृथक्त्व नहीं माना जाय तो अर्थ भेद के विना प्रतीति में भिन्नाकारत्व नहीं होने के कारण "इदमस्मात् पृथक्" "इदम् इदन्न" इन दोनो प्रतीतियों में वैलक्षण्य नहीं होगा ।

(६) ननु शब्द वैलक्षण्यमेव न त्वर्थ वैलक्षण्य मिति चेन्न विनार्थं भेदं घटात्पृथगिति वद्धटो न पट इत्यत्रापि पंचमी प्रसङ्गात् (७) तस्माद्यदर्थयोगे पञ्चमी सोऽर्थो नञर्थान्योन्याभावतो भिन्नो गुणान्तरं कल्प्यत इति ।

(६) उक्तदोनों प्रतीतियों में केवल शब्द भेद कृत भेद है । अर्थ भेद कृत भेद नहीं है यह शंका भी निर्मूल ही है क्योंकि यदि अर्थ भेद न हो तो जैसे "घटात् पृथक्" इस प्रयोग में पञ्चमी विभक्ति होती है उसी प्रकार "घटो न पटः" इस प्रयोग में भी पंचमी विभक्ति होनी चाहिये किन्तु नहीं होती है । (७) इसलिये यदर्थक शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है उस पृथक्त्व रूप अर्थ को "न अर्थ" अन्योन्या भाव से भिन्न गुणान्तर मानना होगा ।

संयोगं निरूपयति = संयोग का निरूपण करते हैं।

का० ११५

अप्राप्तयोस्तु या प्राप्तिः सैव संयोग ईरितः ।
कीर्तित स्त्रिविधस्त्वेष आद्योऽन्यतर कर्मजः ॥

का० अर्थ ।

अमिलित द्रव्यद्वय का जो मिलन वह संयोग कहा जाता है यह संयोग तीन प्रकार का है जिस में प्रथम अन्यतर कर्मजन्य है अर्थात् संयुक्त होनेवाले दो द्रव्यों में किसी एक द्रव्य के कर्म से पैदा होनेवाला है ।

(१) अप्राप्तयोरिति । तं विभजते- कीर्तित इति । एष संयोगः ।

(१) अर्थ स्पष्ट है ।

का० ११६, ११७ पूर्वा०

तथोभयक्रियाजन्यो भवेत्संयोगजोऽपरः ।
आदिमः श्येनशैलादि संयोगः परिकीर्तितः ॥
मेषयोः संनिपातो यः स द्वितीय उदाहृतः ।

का० अर्थ ।

दूसरा उभय कर्मजन्य और तीसरा संयोगजन्य है इन तीनों में पर्वत के साथ श्येनादि पक्षी का संयोग प्रथम अन्यतर कर्मजन्य संयोग है । भेड़ों का सन्निपात (टक्कर) रूप द्वितीय उभय कर्मजन्य संयोग है ।

(१) सन्निपातः संयोगः। द्वितीय उभय कर्मजः ।

(१) अर्थ स्पष्ट है ।

का० ११७ उत्त० ११८ ११९ पूर्वा०

कपालतरु संयोगात्संयोगस्तरुकुम्भयोः ॥
तृतीयः स्यात्कर्मजोऽपि द्विधैव परिकीर्तितः ।
अभिघातो नोदनं च शब्दहेतुरिहादिमः ॥
शब्दाहेतुर्द्वितीयः स्याद्

का० अर्थ।

कपाल वृक्ष के संयोग से उत्पन्न घट वृक्ष का संयोग तृतीय सयोगजन्य संयोग है। अन्यतर कर्मजन्य और उभय कर्मजन्यरूप जो कर्मज संयोग वह अभिघात और नोदन के भेद से दो प्रकार का होता है। शब्द का जनक जो संयोग वह अभिघात कहा जाता है और शब्द का अजनक जो संयोग वह नोदन कहा जाता है।

(१) तृतीय इति। संयोगजसंयोग इत्यर्थः। तृतीयःस्यादिति पूर्वेणान्वितम्। आदिमः अभिघातः। द्वितीयो नोदनाख्यः संयोग इति।

(१) अर्थ स्पष्ट है।

विभक्तप्रत्यय कारणं विभागं निरूपयति = यह इस से विभक्त है इस प्रतीतिका असाधारण कारण जो विभाग उस का निरूपण करते हैं।

का० ११९, १२०,

विभागोऽपि त्रिधा भवेत्।
एककर्मोद्भवस्त्वाद्यो द्वयकर्मोद्भवोऽपरः॥
विभागजस्तृतीयः स्यात्तृतीयोऽपि द्विधा भवेत्।
हेतु मात्र विभागोत्थो हेत्वहेतु विभागजः॥

का० अर्थ।

विभाग भी तीन प्रकार का होता है, प्रथम एक कर्मजन्य (अन्यतर कर्मजन्य) है। द्वितीय उभय कर्मजन्य है और तृतीय विभागजन्य है। तृतीय जो विभागजन्य विभाग वह भी कारण मात्र विभागजन्य विभाग और कारणाकारण विभागजन्य विभाग के भेद से दो प्रकार का होता है।

(१) विभाग इति। एक कर्मेति। तदुदाहरणं तु श्येनशैलविभागादिकं पूर्ववद्बोध्यम्। (२) तृतीयोऽपि विभागजविभागःकारणमात्रविभागजन्यः कारणाकारणविभागजन्यश्चेति। (३) आद्यस्तावत् यत्र कपाले कर्म ततः कपालद्वयविभागः। (४) ततो घटारम्भकसंयोगनाशः। (५) ततो घटनाशः। (६) ततस्तेनैव कपालविभागेन सकर्मणः कपालस्याकाशविभागो-जन्यते। (७) तत आकाश संयोगनाशः। (८) तत उत्तरदेशसंयोगः। (९) ततः कर्मनाश इति।

(१) उक्त तीन प्रकार के विभागों में पर्वत से जो श्येनादि पक्षी का विभाग वह अन्यतर कर्मज विभाग है एवं मेषद्वय का विभाग उभय कर्मज विभाग है । (२) तीसरा जो विभागजविभाग वह कारण मात्र विभागजन्य और कारणाकारण विभागजन्य के भेद से दो प्रकार का है । (३) कारण मात्र विभागजन्य विभाग का उदाहरण यह है कि जिस स्थान में एक कपाल में कर्म हुआ है तत्र कपालद्वय का विभाग, ((४) तब घट का आरम्भक जो कपालद्वयसंयोग उसका नाश । (५) तत्र घट नाश (६) तब उसी कपाल विभाग से सकर्मक कपाल में आकाश के साथ विभाग उत्पन्न होता है । (७) तब पूर्व देशावच्छिन्न जो कपालाकाशसंयोग उस का नाश होता है । (८) तब उत्तर देश के साथ कपाल का संयोग होता है । (९) तब कपाल कर्म का नाश होता है । कपाल कपाल के विभाग से उत्पन्न जो कपाल और आकाश का विभाग वही कारण मात्र विभागजन्य विभाग है ।

(१०) न च तेन कर्मणैव कथं देशान्तरविभागो न जन्यत इति वाच्यम्, एकस्य कर्मणः आरम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विविभागजनकत्वस्य अनारम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्वि विभागजनकत्वस्य च विरोधात् । अन्यथा विकसत्कमलकुड्मलभङ्गप्रसंगात् ।

(१०) * शंका—कपालद्वय विभाग का कारण जो एक कपालगत कर्म उसी से कपालाकाश विभागोत्पत्ति क्यों नहीं मानते हैं ? समा०— आरम्भक संयोग विरोधि विभाग-जनकत्व एवं अनारम्भक संयोग विरोधि विभागजनकत्व इन दोनों में परस्पर विरोध है अर्थात् एक वस्तु में ये दोनों नहीं रह सकते हैं इसलिये आरम्भक कपालद्वय संयोग विरोधि विभागजनक जो कपालगत कर्म वह अनारम्भक कपालाकाश संयोग के विरोधी जो कपालाकाश विभाग उसका जनक नहीं हो सकता है ।

(११) अन्यथा विकसत्कमलकुड्मल भङ्ग प्रसङ्गात् ।

(११) अनारम्भक संयोग विरोधि विभागजनक कर्म को यदि आरम्भक संयोग विरोधि विभाग के जनक मानें तो खिलते हुए कमल-कोष का नाश हो जायगा क्योंकि कमल पत्रों का अग्रावच्छेदेन जो द्रव्यानारम्भक परस्पर संयोग तद्विरोधी विभाग का जनक जो पत्रगत कर्म है उस कर्म से मूलावच्छेदेन पत्रों का जो कमलारम्भक संयोग तद्विरोधी जो मूलावच्छेदेन कमल पत्र विभाग वह उत्पन्न हो जायगा । तब उस विभाग से कमलारम्भक संयोग नाश होने के बाद कमल का भी नाश सुतरां हो जायगा ।

(१२) तस्माद् यदीदमनारम्भक संयोगप्रतिद्वन्द्वि विभागं जनयेत्तदारम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विविभागं न जनयेत् ।

---

* द्रव्योत्पादक अवयव द्वय संयोग आरम्भक संयोग कहलाता है ।

(१२) इसलिये कपाल गत कर्म से यदि अनारम्भक कपालाकाश संयोग का विरोधी विभाग उत्पन्न हो तो घटारम्भक संयोग विरोधी कपालद्वय विभाग उत्पन्न नहीं होगा। तब यह सिद्ध हुआ कि कपालगत कर्म से कपालाकाश विभाग उत्पन्न नहीं होगा।

(१३) न च कारण विभागेनैव द्रव्यनाशात् पूर्वं कुतो देशान्तर विभागो न जन्यत इति वाच्यम्, आरम्भक संयोगप्रतिद्वन्द्वि विभागवतोऽवयवस्य सति द्रव्ये देशान्तरविभागासंभवात्।

(१३) शंका करते हैं कि कपालद्वय विभाग से घट नाश के पूर्व क्षण में अर्थात् कपालद्वय संयोग नाश क्षण में कपालाकाश विभाग क्यों नहीं उत्पन्न होता है जो आप घट नाश के उत्तर क्षण में मानते हैं? समा०—आरम्भक संयोग विरोधि विभागाश्रय कपालादि रूप अवयव में जब तक घटादि रूप द्रव्य समवायेन रहेगा तब तक उस अवयव का आकाशादि रूप देशान्तर के साथ विभाग नहीं हो सकता है। क्योंकि आरम्भक संयोग विरोधि विभागाश्रय अवयव में देशान्तर विभाग के प्रति समवाय सम्बन्धेन घटादि रूप द्रव्य प्रतिबन्धक है।

(१४) द्वितीयस्तावत्। यत्र हस्तक्रियया हस्ततरुविभागस्ततः शरीरेऽपि विभक्तप्रत्ययो भवति तत्र शरीरतरुविभागे हस्तक्रिया न कारणं व्यधिकरणत्वात्। (१५) शरीरे तु क्रिया नास्त्येव अवयविकर्मणो यावदवयवकर्मनियतत्वात्। (१६) अतस्तत्र कारणाकारणविभागेन कार्याकार्य विभागो जन्यत इति।

(१४) कारणाकारण विभागजन्य विभाग का उदाहरण। जहां हस्त में क्रिया होने के कारण हस्त वृक्ष का विभाग हुआ है तब उस विभाग से शरीर और वृक्ष में विभाग की प्रतीति होती है इसलिये शरीर और वृक्ष का विभाग मानना होगा उस विभाग में हस्त की क्रिया असमानाधिकरण होने के कारण कारण नहीं है। (१५) अवयवी के प्रत्येक अवयवों में जब तक क्रिया नहीं होती तब तक अवयवी क्रियावान नहीं कहाता है। इसलिये हस्त मात्र में क्रिया होने के कारण शरीर में क्रिया नहीं मानी जा सकती जिस को समानाधिकरण होने के कारण शरीर वृक्ष विभाग के प्रति कारणत्व मानना युक्त होता। (१६) इसलिये (अगत्या) कारणाकारण विभाग रूप हस्त तरु विभाग से कार्याकार्य विभाग रूप शरीर तरु विभाग उत्पन्न होता है ऐसा मानना होगा।

(१७) अत एव विभागो गुणान्तरम्। अन्यथा शरीरे विभक्तप्रत्ययो न स्यात्। अतः संयोग नाशेन विभागो नान्यथासिद्धो भवति।

(१७) विभागज विभाग मानने के कारण संयोगध्वंस रूप विभाग नहीं मान सकते हैं। क्योंकि संयोगध्वंस रूप ही यदि विभाग माना जाय तो हस्त तरु विभागानन्तर शरीर में तरु विभागप्रत्यय नहीं होगा क्योंकि हस्तक्रियाजन्य जो हस्ततरुसंयोगध्वंस वह शरीर में वृत्ती नहीं है। हस्तक्रिया व्यधिकरण होने के कारण शरीर गत संयोगजसंयोग ध्वंस का कारण नहीं होगा। यदि शरीर में क्रिया होती तो तज्जन्य शरीरगत संयोगज संयोग का नाश होता किन्तु उस समय सकल अङ्ग में क्रिया नहीं है अतः शरीर में क्रिया नहीं मानी जा सकती इसलिये संयोग ध्वंस रूप विभाग नहीं है किन्तु गुणान्तर है तब हस्त क्रिया जन्य हस्त तरु विभाग से शरीर तरु विभाग शरीर में रहने के कारण शरीरगत विभक्तप्रत्यय में कोई बाधा नहीं है।

परापर व्यवहारनिमित्ते परत्वापरत्वे निरूपयति =

परापर व्यवहार का असाधारण कारण जो परत्व और अपरत्व उन दोनों का निरूपण करते हैं।

का० १२१, १२२

परत्व चापरत्व च द्विविधं परिकीर्तितम्।
दैशिकं कालिकं चापि मूर्त एव तु दैशिकम्॥
परत्वं मूर्तसंयोग भूयस्त्वज्ञानतो भवेत्।
अपरत्वं तदल्पत्वबुद्धितः स्यादितीरितम्॥

का० अर्थ।

दैशिक और कालिक के भेद से परत्व तथा अपरत्व दो दो प्रकार के होते हैं। जिन में दूरत्व, समीपत्व रूप दैशिक परत्वापरत्व मूर्त मात्र में रहते हैं। दैशिक परत्व बहुतर मूर्त संयोगान्तरितत्व ज्ञान से उत्पन्न होता है और दैशिक अपरत्व अल्पतर मूर्त संयोगान्तरितत्व ज्ञान से उत्पन्न होता है।

(१) परत्वं चेति। दैशिक मिति। दैशिकपरत्वं बहुतर मूर्तसंयोगान्तरितत्व ज्ञानादुत्पद्यते। एवं तदल्पीयस्त्व ज्ञानादपरत्व मुत्पद्यते। अत्राव धित्वार्थं पञ्चम्यपेक्षा। यथा पाटलिपुत्रात्काशीमपेक्ष्य प्रयागः परः पाटलिपुत्रात्कुरुक्षेत्रमपेक्ष्य प्रयागोऽपर इति।

(१) उदाहरण पाटलिपुत्र (पटना) से काशी तक मध्य में जितने मूर्त संयोग हैं उन से अधिक मूर्तसंयोग पटने से प्रयाग तक हैं इत्याकारक ज्ञान से काशी की अपेक्षा प्रयाग में परत्व उत्पन्न होता है। एवं पटना और कुरुक्षेत्र के मध्य में जितने मूर्त संयोग हैं तदपेक्षया अल्प मूर्त संयोग पटना और प्रयाग के मध्य में है। इत्याकारक ज्ञान रहने पर प्रयाग में अपरत्व उत्पन्न होता है " पाटलि पुत्रात् " एतत्प्रयोग घटक पञ्चमी अवधित्व ज्ञानार्थ अपेक्षित है।

का० १२३ पू०

तयोरसमवायी तु दिक्संयोगस्तदाश्रये ।

का० अर्थ ।

दैशिक परत्वापरत्व का असमवायि कारण दैशिक परत्वापरत्वाश्रय के साथ दिशा का संयोग है।

(१) तयोर्दैशिक परत्वापरत्वयोः । असमवायी असमवायिकारणम् । तदाश्रये दैशिक परत्वापरत्वाश्रये ।

(१) कारिकार्थ से स्पष्ट है।

का० १२३, १२४

दिवाकरपरिस्पन्द भूयस्त्वज्ञानतो भवेत् ॥
परत्वमपरत्वं तु तदीयाल्पत्वबुद्धितः ।
अत्र त्वसमवायी स्यात्संयोगः कालपिण्डयोः ॥

का० अर्थ ।

दिवाकर के परिस्पन्द (क्रिया) में भूयस्त्वज्ञान से ज्येष्ठत्व रूप] कालिक परत्व उत्पन्न होता है। एवं दिवाकर परिस्पन्द में अल्पत्व ज्ञान से कनिष्ठत्व रूप कालिक अपरत्व उत्पन्न होता है। कालिक परत्वापरत्व का असमवायि कारण कालिक परत्वापरत्वाश्रय के साथ काल का संयोग है।

(१) दिवाकरेति । अत्र परत्वमपरत्वं कालिकं ग्राह्यम्। (२) यस्य सूर्यपरिस्पन्दापेक्षया यस्य सूर्यपरिस्पन्दोऽधिकः स ज्येष्ठः। यस्य न्यूनः स कनिष्ठः। (३) कालिक परत्वापरत्वे जन्यद्रव्य एव। अत्र कालिक परत्वापरत्वयोः।

(१) कारिका घटक परत्वापरत्व शब्द से कालिक परत्वापरत्व समझना चाहिये (२) जिस वस्तु की उत्पत्ति समय से लेकर वर्तमान समय पर्यन्त सूर्य परिस्पन्दापेक्षया जिस वस्तु की उत्पत्ति समय से लेकर वर्तमान समय पर्यन्त सूर्य परिस्पन्द अधिक है वह ज्येष्ठ है। अगर अल्प है तो वह कनिष्ठ है। (३) जिस हेतु नित्य वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती है अतः कालिक परत्व और अपरत्व जन्यद्रव्य मात्र में रहते हैं। कारिका में "अत्र" शब्द कालिक परत्वा परत्व पर है।

का० १२५ पूर्वा०

अपेक्षाबुद्धिनाशेन नाशस्तेषां निरूपितः।

का० अर्थ।

अपेक्षाबुद्धि के नाश से दैशिक और कालिक परत्वापरत्व का नाश होता है।

(१) तेषां कालिकदैशिकपरत्वापरत्वानाम्।

(१) कारिका घटक तत्पद कालिक और दैशिक परत्वापरत्व बोधक है।

क्रमप्राप्तां बुद्धिं निरूपयितुमाह = निरूपण क्रमप्राप्त बुद्धि का निरूपण करते हैं।

का० १२५ १२६. १२७

बुद्धेः प्रपञ्चः प्रागेव प्रायशो विनिरूपितः॥
अथावशिष्टोऽप्यपरः प्रकारः परिदर्श्यते।
अप्रमा च प्रमाचेति ज्ञानं द्विविध मिष्यते॥
तच्छून्ये तन्मतिर्या स्यादप्रमा सा निरूपिता।
तत्प्रपञ्चो विपर्यासः संशयोऽपि प्रकीर्तितः॥

का० अर्थ।

बुद्धि के प्रभेद (प्रकार) का निरूपण पूर्व ही अधिक हो चुका है। अब उस के अवशिष्ट प्रकार बतलाये जाते हैं। यथार्थ और अयथार्थ के भेद से ज्ञान दो प्रकार के होते हैं। तदभाववद्विशेष्यक और तत्प्रकारक जो ज्ञान वह अयथार्थ ज्ञान कहाता है। अयथार्थ ज्ञान विपर्यास और संशय के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

(१) बुद्धेरिति । तत्राप्रमां निरूपयति-तच्छून्य इति । तदभाववति तत्प्रकारकं ज्ञानं भ्रम इत्यर्थः । तत्प्रपञ्चोऽप्रमाप्रपञ्चः ।

(१) इन का अर्थ कारिकार्थ से ही स्पष्ट है ।

का० १२८ ।

आद्यो देहेष्वात्मबुद्धिः शखादौ पीततामतिः ।
भवेन्निश्चयरूपा या संशयोऽथ प्रदर्श्यते ॥

का० अर्थ ।

निश्चयात्मक भ्रम विपर्यास कहलाता है यथा "गौरोहम्" इत्याकारक देह विशेष्यक आत्मत्व प्रकारक निश्चय एवं "शंख: पीतः" इत्याकारक शंख विशेष्यक पीतत्व प्रकारक निश्चय विपर्यास है । अब संशय का स्वरूप बतलाते हैं ।

(१) आद्य इति । विपर्यास इत्यर्थः । शरीरादौ निश्चयरूपं यदात्मत्व प्रकारकं ज्ञानं गौरोऽहमित्याकारकम् । एवं शङ्खादौ पीतः शङ्ख इत्याकारकं यज्ज्ञानं निश्चयरूपं तद्भ्रम इति ।

(१) कारिकार्थ से ही स्पष्ट है ।

का० १२६

किंस्विन्नरो वा स्थाणुर्वेत्यादि बुद्धिस्तु संशयः ।
तदभावाप्रकारा धीस्तत्प्रकारा तु निश्चयः ॥

का० अर्थ ।

"अयं नरोवा स्थाणुर्वा" इत्याकारक बुद्धि संशय रूप है एवं तदभावा प्रकारक तत्प्रकारक ज्ञान निश्चय है ।

(१) किं स्विदिति । किं स्विदितिवितर्के । निश्चयस्य लक्षणमाह-तद भावेति तदभावा प्रकारकं तत्प्रकारकं ज्ञानं निश्चयः ।

(१) किंस्वित् शब्द वितर्कार्थक है । तदभावेत्यादि कारिका से निश्चय का लक्षण कहते हैं जो कारिकार्थ से स्पष्ट है ।

संशयं लक्षयति = संशय का लक्षण करते हैं।

का० १३० ।

स संशयो मतिर्या स्यादेकत्राभाव भावयोः ।
साधारणादिधर्मस्य ज्ञान संशय कारणम् ॥

का० अर्थ ।

एक वस्तु विशेष्यक विरुद्ध भावाभाव प्रकारक ज्ञान संशय है। साधारणादि धर्म ज्ञान संशय का कारण है ।

(१) स संशय इति। एक धर्मिक विरुद्ध भावाभाव प्रकारकं ज्ञानं संशय इत्यर्थः ।

(१) कारिकार्थ से स्पष्ट है ।

(२) साधारणेति। उभय साधारणो यो धर्मस्तज्ज्ञानं संशयकारणम्। (३) यथोच्चैस्तरत्वं स्थाणुपुरुषसाधारणं ज्ञात्वायं स्थाणुर्नवेति संदिग्धे। (४) एव मसाधारण धर्मज्ञानमपि कारणम् । यथा शब्दत्वस्य नित्यानित्यव्यावृत्तत्वेन शब्दे गृहीतत्वाच्छब्दो नित्यो न वेति संदिग्धे ।

(२) कोटिद्वय समानाधिकरण जो धर्म उस का ज्ञान संशय का कारण है। (३) यथा स्थाणुत्व स्थाणुत्वा भाव रूप कोटिद्वय समानाधिकरण उच्चैस्तरत्व का पुरोवर्त्ती "इदम्" पदार्थ में ज्ञान होने से "अयंस्थाणुर्न वा" इत्याकारक सन्देह होता है (४)एवं कोटि द्वय के असमानाधिकरण जो धर्म उस का ज्ञान भी संशय का कारण है । यथा "शब्दो नित्यः शब्दत्वात्" इस स्थल में शब्द को पक्ष होने के कारण शब्द में नित्यत्व, एवं नित्यत्वाभाव का निश्चय नहीं है इसलिये शब्दत्व में नित्यत्व सामानाधिकरण्य एवं नित्यत्वाभाव सामानाधिकरण्य का निश्चय नहीं होगा, अतः "नित्यत्व नित्यत्वाभाव रूप कोटिद्वया समानाधिकरण शब्दत्ववान् शब्दः" इत्याकारक ज्ञान होने से "शब्दो नित्यो न वा" इत्याकारक सन्देह होता है।

(५) विप्रतिपत्तिस्तु शब्दो नित्यो न वेत्यादि शब्दात्मिका न संशय कारणं शब्दव्याप्ति ज्ञानादीनां निश्चयमात्रजनकत्व स्वभावात्। (६) किंतु तत्र शब्देनकोटिद्वय ज्ञानं जन्यते संशयस्तु मानस एवेति ।

(५) " शब्दो नित्यो न वा " इत्यादि शब्द रूप विप्रतिपत्ति संशय का कारण नहीं है क्योंकि शब्द और व्याप्ति ज्ञानादि को निश्चय मात्र जनकत्व स्वभाव है। (६) किन्तु विप्रतिपत्ति स्थल में " शब्दः नित्यो न वा " इत्याद्याकारक शब्द रूप विप्रतिपत्ति से नित्यत्व नित्यत्वा भावाद्यात्मक कोटिद्वय का स्मरण होता है तदनन्तर शब्दादि विशेष्यक नित्यत्व नित्यत्वा भावादि प्रकारक संशय मानस (उपनीत भानात्मक) होता है ।

(७) एव ज्ञाने प्रामाण्य संशयाद्विषयसंशय इति।

(७) एवं " अयं घटः " इत्याकारक घटत्वप्रकारक ज्ञान में " इदं घटत्व प्रकारकं ज्ञानं घटत्ववति घटत्व प्रकारकं नवा " इत्याकारक प्रामाण्य संदेह से " अयं घटो न वा " इत्याकारक घटत्व का संशय होता है ।

(८) एवं व्याप्य संशयादपि व्यापक संशय इत्यादिक बोध्यम्
(९) किंतु संशये धर्मिज्ञानं धर्मीन्द्रियसंनिकर्षो वा कारण मिति।

(८) एवं धूमादि रूप व्याप्य के सन्देह से वह्न्यादि रूप व्यापक का सन्देह होता है। (९) एवं संशय में धर्मी का ज्ञान अथवा धर्मी के साथ इन्द्रिय सन्निकर्ष कारण है।

का० १३१

दोषोऽप्रमाया जनकः प्रमायास्तु गुणो भवेत् ।
पित्तदूरत्वादिरूपो दोषो नानाविधः स्मृतः ॥

का० अर्थ ।

अप्रमा के प्रति दोष और प्रमा के प्रति गुण कारण है। पित्त दूरत्वादि भेद से दोष अनन्त प्रकार के हैं ।

(१) दोष इति। अप्रमां प्रति दोषः कारणम्। प्रमां प्रति गुणः कारणम्। (२) तत्रापि पित्तादिरूपा दोषा अननुगताः। तेषां कारणत्व मन्वयव्यतिरेकाभ्यां सिद्धम्। (३) गुणस्य प्रमा जनकत्वं तु अनुमानात्सिद्धम्। यथा प्रमा ज्ञानसाधारणकारणभिन्नकारणजन्या जन्यज्ञानत्वात् अप्रमावत्।

(१) कारिकार्थ से स्पष्ट है। (२) पित्तादि रूप दोष अननुगत है । अप्रमात्मक ज्ञान के साथ अन्वय व्यतिरेक रहने के हेतु वह अप्रमात्मक ज्ञान के प्रति कारण माना जाता है। (३) गुण में प्रमाजनकत्व अनुमान से सिद्ध है यथा "प्रमा ज्ञानसामान्य कारण भिन्न कारण जन्या जन्यज्ञानत्वात् अप्रमावत्" अर्थात् आत्म मनः संयोग त्वङ्मनः संयोगादिरूप ज्ञानसामान्य के कारण से भिन्न पित्तादि दोषरूप कारणजन्य अप्रमा ज्ञान के तरह प्रमा ज्ञान भी जन्य ज्ञानरूप होने के कारण उक्त संयोगादि रूप ज्ञान सामान्य के कारण से भिन्न सन्निकर्षादि रूप गुण जन्य है ।

(४) नच दोषाभाव एव कारणमस्त्विति वाच्यं पीतः शङ्ख इति ज्ञानस्थले पित्तदोषसत्त्वाच्छङ्खत्व प्रमानुत्पत्ति प्रसङ्गात् । (५) विनिगमना विरहा दनन्तदोषाभाव कारणत्वमपेक्ष्य गुणस्य कारणताया न्याय्यत्वात् ;

(४) शङ्का—प्रमा में गुण को कारण नहीं मान कर दोषाभाव ही को कारणता मानें तो क्या हानि है ? समा०—"पीतः शंखः" इत्याकारक आंशिक अप्रमात्मक-प्रमा में पित्त रूप दोष रहने के कारण दोषाभाव नहीं रहेगा। अतः वह ज्ञान शंखत्वांश में प्रमा है यह नहीं होगा। (५) और यह भी कारण है कि सकल दोष में एक दोषत्व अनुगत नहीं रहने के कारण दोषत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक दोष सामान्या भाव को आप कारण नहीं कह सकते हैं क्योंकि वह अप्रसिद्ध हो जायगा। अतः विनिगमना विरहात् अनन्त तत्तत् दोषाभाव कूट ही को कारणत्व मानना होगा। तदपेक्षया लाघवात् गुण ही को कारणत्व मानना उचित है।

(६) नच गुणसत्त्वेऽपि पित्तेन प्रतिबन्धाच्छंखे न श्वैत्यज्ञानमतः पित्तादि दोषा भावानां कारणत्वमवश्यं वाच्यं तथाच किं गुणस्य हेतुत्व कल्पनयेति वाच्यं, तथाप्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां गुणस्यापि हेतुत्वसिद्धेः ।

(६) (शंका) यदि कहें कि शंखगत शुक्ल रूप के साथ चक्षुः संयुक्त समवाय रूप सन्निकर्षात्मक गुण रहने पर भी नेत्रगत पित्तदोष प्रयुक्त शंख में शुक्ल रूप की प्रमा नहीं होती है। अब उक्त गुण रहने के कारण प्रमा होनी चाहिये। अतः प्रमा के प्रति दोषाभाव को कारणत्व मानना आवश्यक हुआ तब गुण को कारणत्व मानना व्यर्थ है। (समाधान) यह युक्त नहीं है क्योंकि नेत्रगत पित्तादि दोष रहित पुरुषों को दोषाभाव रहने पर भी शंख में पीत रूप प्रकारक प्रमा नहीं होती है। वह क्यों नहीं होगी अतः सन्निकर्षादि रूप गुण को भी प्रमा के प्रति कारण मानते हैं। तब दोषाभाव को रहते हुए भी पीत रूप के साथ सन्निकर्षात्मक गुण नहीं है इसलिये शंख में पीत प्रमा नहीं होती है।

(७) एवं भ्रमं प्रति गुणाभावः कारण मित्यस्यापि सुवचत्वात् ।

(७) प्रमा के साथ गुण में अन्वय व्यतिरेक रहने पर भी यदि आप प्रमा के प्रति केवल दोषाभाव को कारण मानकर गुण को अन्यथासिद्ध मानें तो भ्रम के साथ दोष में अन्वय व्यतिरेक रहने पर भी भ्रम के प्रति गुणाभाव ही को कारणत्व मानकर दोष को अन्यथा सिद्ध क्यों नहीं माना जाय ? इस से यह पर्यवसित हुआ कि भ्रम के प्रति यथा दोष और गुणाभाव दोनों कारण हैं तथा प्रमा के प्रति भी गुण और दोषाभाव दोनों कारण हैं। नेत्रगत पित्तदोष विशिष्ट पुरुष को दोष रहने पर भी पीत पट में पीत रूप प्रकारक भ्रम नहीं होता। अतः भ्रम के प्रति सन्निकर्ष रूप गुणाभाव को कारणत्व मानते हैं एवं सन्निकर्ष रूप गुणाभाव रहने पर भी विना पित्तादि दोष के शंख में पीत रूप प्रकारक भ्रम नहीं होता अतः भ्रम के प्रति दोष को भी कारणत्व मानना आवश्यक है।

(८) तत्र दोषाः के इत्याकांक्षायामाह-पित्तेति ।

(८) दोष किस को कहते हैं इस आकांक्षा के निवृत्त्यर्थ पित्तेत्यादि कारिका से दोष का स्वरूप कहते है ।

(९) क्वचित्पीतादिभ्रमे पित्तं दोषः । क्वचिच्चन्द्रादेः स्वल्पपरिमाण-भ्रमे दूरत्वं दोषः । क्वचिच्च वंशोरगभ्रमे मण्डूक वसाञ्जनमित्येवंरूपा दोषा अननुगता भ्रान्तिजनका इत्यर्थः ।

(९) कहीं शंखादिमें पीत रूप के भ्रममें नेत्रगत पित्त जन्य पीतिमा दोष है। कहीं चन्द्रादि में अल्प परिमाण के भ्रम में चन्द्रादिगत दूरत्व दोष है। कहीं वंश में सर्पत्व भ्रम में मण्डूक मज्जाञ्जन दोष है। इस प्रकार अननुगत अनन्त दोष भ्रम का जनक होते हैं।

अथ के गुणा इत्याकांक्षायां प्रत्यक्षादौ क्रमशो गुणान्दर्शयति =

प्रमात्मक ज्ञान में कारणीभूत गुण कौन है इत्याकारक आकांक्षा निवृत्त्यर्थ प्रत्यक्षादि प्रमात्मक ज्ञान मे कारणीभूत प्रत्येक २ गुण दिखलाते हैं।

का० १३२, १३३,

प्रत्यक्षे तु विशेष्येण विशेषणवता समम् ।
संनिकर्षो गुणस्तु स्यादथ त्वनुमितौ पुनः ॥
पक्षे साध्यविशिष्टे तु परामर्शो गुणो भवेत् ।
शक्ये सादृश्यबुद्धिस्तु भवेदुपमितौ गुणः ॥

का० १३४

शाब्दबोधे योग्यतायास्तात्पर्यस्याथ वा प्रमा ।
गुणः स्याद्भ्रमभिन्नं तु ज्ञानमत्रोच्यते प्रमा ॥

का० अर्थ ।

विशेषण विशिष्ट विशेष्य के साथ जो इन्द्रिय का सन्निकर्ष वह प्रत्यक्ष प्रमा में गुण है। साध्यविशिष्ट पक्ष में जो साध्यव्याप्य हेतु वैशिष्ट्यावगाही परामर्श वह अनुमिति प्रमा में गुण है। गवयादि पद के शक्यार्थ गवयादियों में जो गवादि का सादृश्य ज्ञान वह उपमिति प्रमा में गुण है। प्रमात्मक योग्यता ज्ञान अथवा प्रमात्मक तात्पर्य ज्ञान शाब्द बोध प्रमा में गुण है।

(१) प्रत्यक्षे त्विति । प्रत्यक्षे विशेषणवद्विशेष्यसंनिकर्षो गुणः । अनुमितौ साध्यवति साध्यव्याप्यवैशिष्ट्यज्ञानं गुणः। एवमग्रेऽप्यूह्यम् ।

(१) इन का अर्थ कारिकार्थ में ही स्पष्ट है ।

(२) प्रमां निरूपयति । भ्रमभिन्नन्तु ज्ञानमत्रोच्यते प्रमा । भ्रम भिन्न मिति ।

(२) "भ्रमभिन्नम्" इत्यादि कारिका से प्रमा का निरूपण करते हैं, भ्रम से भिन्न ज्ञान प्रमा कहलाता है ।

ननु यत्र शुक्तिरजतयोरिमे रजते इति ज्ञानं जातं तत्र रजतांशेऽपि प्रमा न स्यात्, तज्ज्ञानस्य भ्रमभिन्नत्वाभावादत आह=

शंका करते हैं कि यदि भ्रमभिन्न ज्ञान को प्रमा माने तो जिस स्थल में शुक्तिका और रजत इन दोनों में रजतत्व प्रकारक "इमे रजते" इत्याकारक एक ज्ञान उत्पन्न हुआ है उस स्थल में "इमे रजते" यह ज्ञान शुक्तिकांश में भ्रम और रजतांश में प्रमा है जो भ्रम-भिन्न नहीं होने के कारण रजतांश में भी प्रमात्मक नहीं होगा अतः "अथवा" इत्यादि कारिका से प्रमा का लक्षणान्तर करते है ।

का० १३५, १३६, पूर्वा०

अथवा तत्प्रकारं यज्ज्ञानं तद्वद्विशेष्यकम् ।
तत्प्रमा न प्रमा नापि भ्रमः स्यान्निर्विकल्पकम् ॥
प्रकारतादिशून्यं हि संबन्धानवगाहि तत् ।

का० अर्थ ।

"तदाश्रयविशेष्यक तत्प्रकारक ज्ञान" प्रमा है और निर्विकल्पक ज्ञान न प्रमा है न भ्रम है। जिस हेतु निर्विकल्पक ज्ञान प्रकारता विशेष्यता शून्य और सम्बन्धानवगाही होता है।

(१) अथवेति। तद्वद्विशेष्यकं तत्प्रकारकं ज्ञानं प्रमेत्यर्थः।

(१) इस का अर्थ कारिकार्थ से ही स्पष्ट है।

(२) अथैवं स्मृतेरपि प्रमात्वं स्यात्। (३) ततः किमिति चेत्तथा सति तत्करणस्यापि प्रमाणान्तरत्वं स्यादिति चेन्न। यथार्थानुभव करणस्यैव प्रमाणत्वेन विवक्षितत्वात्।

(२) (शंका) तद्वद्विशेष्यक तत्प्रकारक ज्ञान ही यदि प्रमा हो तो स्मृत्यात्मक ज्ञान को भी तादृश होने के कारण प्रमात्वापत्ति हो जायगी। (३) स्मृति को प्रमा रूप होने से क्षति ही क्या है। तब स्मृति को प्रमात्मक होने से तत्करण संस्कार या अनुभव को पञ्चम प्रमाण मानना होगा। समा०— यह नहीं कह सकते हैं। क्योंकि यथार्थानुभव करण ही को मै प्रमाण रूप मानता हूं। स्मृति को यथार्थानुभव रूप नही होने के कारण उस का करण संस्कारादि प्रमाणान्तर नहीं हो सकता है।

(४) इदं तु बोध्यम्। येन संबन्धेन यद्वत्ता तेन संबन्धेन तद्वद्विशेष्यकत्वं तेन संबन्धेन तत्प्रकारकत्वं वाच्यम्। (५) तेन कपालादौ संयोगादिना घटादिज्ञाने नातिव्याप्तिः।

(४) यहां यह समझना चाहिये कि जिस सम्बन्ध से प्रकार विशेष्य में रहता हो उस सम्बन्ध से तद्वत्त्व और तत्प्रकारकत्व लेना चाहिये। (५) अतः समवाय सम्बन्ध से कपाल में घट को रहने पर भी सयोग सम्बन्ध से घट प्रकारक कपाल विशेष्यक ज्ञान में अति व्याप्ति नहीं हुई। क्योंकि प्रकारतावच्छेदकीभूत संयोग सम्वन्ध से कपाल में घटवत्ता नहीं है।

(६) एवं सति निर्विकल्पकं प्रमा न स्यात्तस्य सप्रकारकत्वाभावादत आह-- न प्रमेति।

(६) प्रमात्मक ज्ञान के ऐसे लक्षण करने से निर्विकल्पक ज्ञान किंचित्प्रकारक नहीं होने के कारण प्रमा रूप नहीं होगा इस शंका का "न प्रमा" इत्यादि कारिका से इष्टापत्ति द्वारा खण्डन करते हैं।

(७) ननु वृक्षे कपिसंयोगज्ञानं भ्रमः प्रमा च स्यादितिचेन्न प्रतियोगिव्यधिकरण संयोगाभाववति संयोगज्ञानस्य भ्रमत्वात् ।

(७) शंका करते हैं कि जिस वृक्ष में कपिसंयोग किसी एक देशावच्छेदेन है उसी वृक्ष में अन्यदेशावच्छेदेन कपि संयोगाभाव को रहने के कारण तादृश वृक्ष विशेष्यक कपि संयोग प्रकारक ज्ञान कपि संयोगाभाववद्विशेष्यक कपि संयोग प्रकारक होने के कारण भ्रम रूप एवं कपि संयोगवद्विशेष्यक कपि संयोग प्रकारक होने के कारण प्रमा रूप भी हो जाना चाहिये । समा०—प्रतियोगिव्यधिकरण कपिसंयोगाभाववद्विशेष्यक कपिसंयोग प्रकारक ज्ञान को भ्रम रूप मानताहूं । उक्त वृक्ष में प्रतियोगिव्यधिकरण होकर कपिसंयोगाभाव को नहीं रहने से उक्त ज्ञान प्रतियोगिव्यधिकरण कपिसंयोगाभाववद्विशेष्यक कपिसंयोग प्रकारक नहीं है अतः भ्रम रूप नहीं होगा केवल प्रमा रूप है ।

(८) नच वृक्षे संयोगाभावावच्छेदेन संयोगज्ञानं भ्रमो न स्यात्तत्र संयोगाभावस्य प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वादिति वाच्यं, तत्र संयोगाभावावच्छेदेन संयोगज्ञानस्य भ्रमत्वात् । लक्ष्यस्याननुगमाल्लक्षणाननुगमेऽपि न क्षतिः ।

(८) शङ्का करते हैं कि कपिसंयोगवत् वृक्ष मे कपिसंयोगाभाव प्रतियोगिव्यधिकरण होकर नहीं रहता है अतः कपिसंयोगाभाववान् कपिसंयोगी इत्याकारक वृक्ष मे कपिसंयोगाभावावच्छेदेन कपिसंयोगज्ञान भ्रम रूप नहीं होगा । समा०-अव्याप्यवृत्ति पदार्थ प्रकारक भ्रम लक्षण तदभावावच्छेदेन तत्प्रकारक ज्ञानत्व है । अतः कपिसंयोगाभावावच्छेदेन वृक्ष में कपि संयोग प्रकारक ज्ञान को भ्रम रूप होने में कोई बाधा नहीं है । व्याप्यवृत्ति पदार्थ प्रकारक भ्रम का लक्षण उक्त तदभाववद्विशेष्यक तत्प्रकारक ज्ञानत्व है । लक्ष्य के अननुगत होने के कारण लक्षण का अननुगम होने पर भी कोई क्षति नहीं है ।

का० १३६ उत्त०

प्रमात्वं न स्वतो ग्राह्यं संशयानुपपत्तितः ॥

का० अर्थ ।

प्रमात्व स्वतो ग्राह्य नहीं है अर्थात् जिस सामग्री से ज्ञान का ग्रह होता है उसी सामग्री से तज्ज्ञाननिष्ठ प्रमात्व का ग्रह नही होता है, यदि ऐसा न माना जाय तो ज्ञानोत्पत्त्यनन्तर "इदं ज्ञानं प्रमा न वा" इत्याकारक संशय नहीं होगा । (इसका हेतु मुक्तावली में वतलाया गया है)

(१) प्रमात्वमिति, मीमांसका हि प्रमात्वं स्वतो ग्राह्यमिति वदन्ति । (२) तत्रगुरूणां मते ज्ञानस्य स्वप्रकाशरूपत्वात्तज्ज्ञानप्रामाण्यं तेनैव गृह्यत

इति । (३) भट्टानां मते ज्ञानमतीन्द्रियम् । (४) ज्ञानजन्या ज्ञातता प्रत्यक्षा तया च ज्ञान मनुमीयते । (५) मुरारिमिश्राणां मतेऽनुव्यवसायेन ज्ञानं गृह्यते । (६) सर्वेषामपि मते तज्ज्ञानविषयकज्ञानेन तज्ज्ञानप्रामाण्यं गृह्यते ।

(१) मीमांसक लोग ज्ञान मे प्रमात्व स्वतोग्राह्य मानते हैं । अर्थात् ज्ञान ग्राहक सामग्री से ही ग्राह्य मानते हैं । (२) गुरु प्रभाकर के मत में ज्ञान स्वप्रकाश है अर्थात् अपने को भी विषय करता है अतः स्वात्मक ज्ञानसे जैसे स्वनिष्ठ ज्ञानत्व गृहीत होता है उसी प्रकार ज्ञाननिष्ठ प्रमात्व भी गृहीत होता है। (३) कुमारिल भट्ट के मत से ज्ञान का प्रत्यक्ष नहीं होता है । (४) ज्ञानोत्पत्ति होने पर विषयनिष्ठ ज्ञानजन्य एक ज्ञातता नाम का धर्म विशेष उत्पन्न होता है जो प्रत्यक्ष सिद्ध है। तादृश ज्ञातता से ज्ञान का अनुमान किया जाता है यथा—" यह ज्ञातता घटवृत्ति घटत्व प्रकारक ज्ञातता रूप होने के कारण घटविशेष्यक घटत्व प्रकारक ज्ञानजन्य है। जो ज्ञातता यद्वृत्ति यत्प्रकारक होती है वह तद्विशेष्यक तत्प्रकारक ज्ञानजन्य होती है यथा पटवृत्ति पटत्व प्रकारक ज्ञातता है। (५) एवं मुरारि मिश्र के मत से ज्ञान का ग्रहण अनुव्यवसाय से होता है । (६) उक्त सबों के मत में तज्ज्ञान विषयक ज्ञान से तज्ज्ञान निष्ठ प्रामाण्य गृहीत होता है ।

(७) विषयनिरूप्यं हि ज्ञानमतो ज्ञानवित्तिवेद्यो विषयः । (८) तन्मतं दूषयति—न स्वतो ग्राह्यमिति ।

(७) ज्ञान विषय से निरूप्य होता है अर्थात् विषया विषयक प्रत्यक्ष का अविषय होता है । अतः ज्ञान ज्ञान से पूर्व ज्ञान का विषय ज्ञात होता है। इसलिये तद्वन्निष्ठ विशेष्यता निरूपित तन्निष्ठ प्रकारताकत्व रूप जो विषय घटित प्रमात्व वह ज्ञान ज्ञान से ज्ञात होता है। (८) उक्त मीमांसक मत का " प्रमात्वं न स्वतो ग्राह्यम् " इत्यादि कारिका से नैयायिक खण्डन करते हैं।

(९) संशयेति । यदि ज्ञानस्य प्रामाण्यं स्वतो ग्राह्यं स्यात्तदाऽनभ्यासदशापन्नज्ञाने प्रामाण्यसंशयो न स्यात् । तत्रहि यदि ज्ञानं ज्ञात तदा त्वन्मते प्रामाण्यं ज्ञातमेवेति कथं संशयः । (१०) यदि तु ज्ञानं न ज्ञातं तदा धर्मिज्ञानाभावात्कथं संशयः । (११) तस्माज्ज्ञाने प्रामाण्यमनुमेयम् ।

(९) यदि ज्ञाननिष्ठ प्रामाण्य ज्ञान ग्राहक सामग्री से ग्राह्य माना जाय तो अनिश्चित प्रामाण्यक जो ज्ञान उस ज्ञान के सजातीय ज्ञान में प्रामाण्य का सन्देह नहीं होगा

क्योंकि यदि ज्ञान का ज्ञान है तो मीमांसक मत से ज्ञाननिष्ठ प्रामाण्य भी निश्चित ही हो जायगा अतः प्रामाण्य का सन्देह नहीं हो सकता है। (१०) यदि ज्ञान ज्ञात नहीं है तो संशय में धर्मि ज्ञान को कारण होने के हेतु ज्ञान रूप धर्मि ज्ञान के अभाव से ज्ञान में प्रामाण्य का सन्देह नहीं हो सकता है। (११) इसलिये ज्ञान में प्रामाण्य अनुमेय है।

(१२) तथाहि। इदं ज्ञानं प्रमा सफलप्रवृत्तिजनकत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथाऽप्रमा। (१३) इदं पृथिवीत्वप्रकारकं ज्ञानं प्रमा, गन्धवति पृथिवीत्वप्रकारकज्ञानत्वात्। (१४) एवमिदं जलत्वप्रकारकं ज्ञानं प्रमा स्नेहवति जलत्वप्रकारक ज्ञानत्वात्।

(१२) जैसे यह ज्ञान सफल प्रवृत्ति का जनक होने के कारण प्रमा है जो ज्ञान प्रमा नहीं होता है वह सफल प्रवृत्ति का जनक नहीं होता है जैसे अप्रमात्मक ज्ञान। (१३) पृथ्वी में पृथिवीत्व का ज्ञान होने पर यह पृथिवीत्व प्रकारक ज्ञान, गन्धवत् में पृथिवीत्वप्रकारक ज्ञान रूप होने के कारण प्रमा है। (१४) एवं जल में जलत्व का ज्ञान होने पर यह जलत्व प्रकारक ज्ञान स्नेहवत् में जलत्व प्रकारक ज्ञान रूप होने के कारण प्रमा है। इत्यादि अनुमानों से ज्ञान में प्रामाण्य ज्ञात होता है।

(१५) न च हेतुज्ञानं कथं जातमिति वाच्यं, पृथिवीत्वप्रकारकत्वस्य स्वतो ग्राह्यत्वात्। (१६) तत्र गन्ध ग्रहणे गन्धवद्विशेष्यकत्वस्यापि सुग्रहत्वात्। (१७) तत्प्रकारकत्वावच्छिन्न तद्विशेष्यकत्वं परं न गृह्यते, संशयानुरोधात्।

(१५) शंका करते हैं कि गन्धवद्विशेष्यक पृथिवीत्व प्रकारक ज्ञानत्व रूप हेतु का एवं स्नेह वद्विशेष्यक जलत्व प्रकारक ज्ञानत्व रूप हेतु का ज्ञानात्मक पक्ष में ज्ञान कैसे हुआ। समा०—ज्ञान निष्ठ जो पृथिवीत्व प्रकारकत्व उस को मैं स्वतोग्राह्य अर्थात् ज्ञान ज्ञान से ग्राह्य मानता हूं। (१६) एवं पृथिवी में गन्ध ज्ञान होने के कारण गन्धवद्विशेष्य कत्व भी ज्ञान ज्ञान से ग्राह्य है। (१७) परन्तु पृथिवीत्वादि प्रकारकत्वावच्छिन्न पृथिवी त्ववद्विशेष्यकत्व रूप प्रमात्व स्वतो ग्राह्य नहीं माना जाता है। क्योंकि यदि तादृश प्रमात्व स्वतो ग्राह्य माना जाय तो ज्ञानोत्पत्त्यनन्तर ज्ञान में प्रामाण्य का सन्देह नहीं होगा।

(१८) ननु "सर्वेषां ज्ञानानां यथार्थत्वात्प्रमालक्षणे तद्वद्विशेष्यकत्वं विशेषणं व्यर्थम्, नच रङ्गे रजतार्थिनः प्रवृत्तिर्भ्रमजन्या न स्यात् तव मते भ्रमस्या भावादिति वाच्यम्, तत्रहि दोषाधीनस्य पुरोवर्तिनि स्वतन्त्रोपस्थित रजतभेदाग्रहस्य हेतुत्वात्। सत्यरजतस्थले तु विशिष्ट ज्ञानस्य सत्त्वात्तदेव कारणम्।

(१८) मीमांसक कहते हैं कि ज्ञान मात्र यथार्थ ही होता है अयथार्थ ज्ञान होता ही हीं। तव "तद्वद्विशेष्यक तत्प्रकारक ज्ञानत्व रूप जो यथार्थ ज्ञान का लक्षण है उस में तत्प्रकारक ज्ञानत्व मात्र यदि कहें तथापि कोई दोष नहीं होगा अतः लक्षण घटक "तद्वद्विशेष्यकत्व रूप विशेषण व्यर्थ है क्योंकि यह विशेषण केवल भ्रम में अतिव्याप्ति वारणार्थ है जो भ्रम मीमांसक मत में माना ही नहीं जाता है। यदि नैयायिक कहें कि रंग में रजतार्थियों की प्रवृत्ति भ्रम से होती है किन्तु अब नहीं होगी। क्योंकि आप (मीमांसक) के मत में तो भ्रम माना ही नही जाता है। (मीमांसक का समाधान) रंग में रजतार्थियों की जो विसम्वादिनी प्रवृत्ति होती है जिस को नैयायिक भ्रमजन्य कहते हैं उस प्रवृत्ति में पुरोवर्ति रङ्गनिष्ठ चाकुचिक्य रूप दोषाधीन स्वतन्त्रोपस्थित अर्थात् स्वातन्त्र्येण स्मृति विषय जो रजत उस रजत के भेदाग्रह को भ्रम के वदले में कारण मानते हैं। अतः उक्त तादृश भेदाग्रह से विसम्वादि प्रवृत्ति होने में कोई बाधा नहीं होगी। और जहां वास्तविक रजत है तत् स्थलीय सम्वादिनी अर्थात् सफल प्रवृत्ति में रजतत्व प्रकारक विशिष्ट ज्ञान को रहने के हेतु तादृश विशिष्ट ज्ञान ही कारण माना जाता है।

(१९) अस्तु वा तत्रापि भेदाग्रहः स एव कारणमिति। न चान्यथाख्यातिः सम्भवति, रजत प्रत्यक्षकारणस्य रजत सन्निकर्षस्याभावाद्रंगे रजतबुद्धेरनुपपत्ते रितिचेन्न। सत्यरजतस्थले प्रवृत्तिं प्रति विशिष्ट ज्ञानस्य हेतुतायाः क्लृप्तत्वादन्यत्रापि तत्कल्पनात्।

(१९) मीमांसक कहते हैं कि विसम्वादि प्रवृत्ति मे भेदाग्रह और सम्वादि प्रवृत्ति मे विशिष्ट ज्ञान इन दोनों को पृथक् २ कारणता मानने से मुझे गौरव होगा अतः प्रवृत्ति मात्र मे भेदाग्रह ही को कारणता मानना युक्त है। अतः सत्य रजतस्थल मे भी प्रवृत्तिके प्रति रजत भेदाग्रह को ही कारणता मानते हैं। मीमांसक शंका करते हैं कि रजतत्व प्रकारक प्रत्यक्ष का कारण जो चक्षुः संयुक्त समवाय रूप सन्निकर्ष उसको नहीं रहने के कारण रङ्ग मे रजतत्व प्रकारक अन्यथा ख्याति नहीं हो सकती है जो (नैयायिकों के मत मे) विसम्वादि प्रवृत्ति मे कारण होती है (नैयायिक का समा०)—सत्य- रजतस्थलीय सम्वादि प्रवृत्ति के प्रति रजत भेद ग्रहा भावापेक्षया लाघवात् रजतत्व प्रकारक विशिष्ट ज्ञान ही को कारणता स्वीकृत है। इसलिये असत्य रजतस्थलीय विसम्वादि प्रवृत्ति मे भी रजतत्व प्रकारक विशिष्ट ज्ञान ही को लाघवात् कारण मानना होगा।

(२०) न च संवादिप्रवृत्तौ तत्कारणं विसम्वादिप्रवृत्तौ च भेदाग्रहः कारणमिति वाच्यं, लाघवेन प्रवृत्तिमात्रे तस्य हेतुत्व कल्पनात्।

(२०) यदि आप (मीमांसक) कहें कि सम्वादि प्रवृत्ति मे विशिष्ट ज्ञान कोका-रणता मानने पर भी विसम्वादि प्रवृति मे भेदाग्रह ही कारण है तो यह कथन युक्त नहीं होगा क्योंकि सम्वादि प्रवृत्ति मे विशिष्ट ज्ञान और विसम्वादि प्रवृत्ति मे भेदाग्रह इन दोनो को कारणता मानने मे गौरव होगा अतः प्रवृत्ति मात्र मे विशिष्ट ज्ञान ही को कारणता मानना युक्त है।

(२१) इत्थं च रंगे रजतत्वविशिष्टबुद्ध्यनुरोधेन ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्ति कल्पनेऽपि न क्षतिः, फलमुखगौरवस्यादोषत्वात् ।

(२१) प्रवृत्ति मात्र के प्रति लाघवात् विशिष्ट ज्ञान को कारणता मानने पर रङ्ग में रजतत्वभासक सन्निकर्ष नहीं रहने के कारण रङ्ग में रजतत्व भानार्थ ज्ञान लक्षण प्रत्यासत्ति की कल्पना आवश्यक है अतः तादृश प्रत्यासत्ति कल्पनाकृत गौरव फलमुख होने के कारण दोषाधायक नहीं है।

(२२)किंच यत्र रंग रजतयोरिमे रजते रंगेवेति ज्ञानं जातं तत्र न कारणबाघोऽपि ।

(२२) एवं जहां रङ्ग और रजत इन दोनों में " इमे रजते रंगे वा " इत्याकारक ज्ञान हुआ है उस स्थलमे रजतत्व अथवा रङ्गत्वके साथ चक्षुः संयुक्त समवाय रूप लौकिक सन्निकर्षका अभाव नहीं रहने के कारण सन्निकर्षाभाव प्रयुक्त अन्यथाख्याति का अभाव नहीं हो सकता है जो कि आप (मीमांसक) पूर्व में कह चुके हैं ।

(२३) अपि च यत्र रंगरजतयोरिमे रजतरंगे इति ज्ञानं तत्रोभयत्र युगपत्प्रवृत्तिनिवृत्ती स्याताम्, रंगे रंगभेदग्रहे रजते रजतभेदग्रहे चान्यथाख्याति भयात्त्वन्मते दोषादेव रंगे रजतभेदाग्रहस्य रजते रंगभेदाग्रहस्य च सत्त्वात् ।

(२३) जहां पुरोवर्ती रङ्ग तथा रजत में युगपत् रङ्ग में रजतत्व ज्ञान और रजत मे रंगत्व ज्ञान हुआ है वहां युगपत् प्रवृत्ति निवृत्ति की आपत्ति (मीमांसक मत में) हो जायगी क्योंकि रंग में रंग भेदाग्रह और रजत में रजत भेदाग्रह अन्यथाख्याति नहीं मानने वाले मीमांसक को मानना होगा एवं चाक् चिक्य रूप दोष वश रंग में रजत भेदाग्रह और रजत में रंग भेदाग्रह भी मानना होगा । अतः रजतार्थी व्यक्ति को रंग मे रजत भेदाग्रह रूप प्रवृत्ति का कारण और रंगमे रंग भेदाग्रह रूप निवृत्ति का कारण दोनों ही रह गये एवं रंगार्थी व्यक्ति को रंग में रंग भेदाग्रह रूप प्रवृत्ति का कारण और रंग में रजत भेदाग्रह रूप निवृत्ति का कारण दोनों ही रह गये

इसी प्रकार रजत में भी रजतार्थी और रंगार्थी व्यक्तियों की प्रवृत्ति निवृत्ति का कारण समझना चाहिये। किन्तु यह आपत्ति नैयायिक मत में नहीं है। क्योंकि रंग में चाकचिक्य रूप दोष वश रजतत्व ज्ञान होने के कारण रजतार्थी को प्रवृत्ति होती है और उक्त दोषवश रंगत्व ज्ञान नहीं होने के कारण निवृत्ति नहीं होगी इसी प्रकार रंगार्थी को भी समझना चाहिये।

(२४) किंचानुमितिं प्रति भेदाग्रहस्य हेतुत्वे जलह्रदे वह्निव्याप्यधूमवद्भेदाग्रहादनुमितिर्निराबाधा। यदि च विशिष्टज्ञानं कारणं तदाऽयोगोलके वह्निव्याप्यधूमज्ञानमनुमित्यनुरोधादापतितम्। सेयमुभयतः पाशारज्जुः।

(२४) अन्यथा ख्याति मानने में ग्रन्थकार " किंचेत्यादि " ग्रन्थ से एक और भी युक्ति दिखलाते हैं। अनुमिति के प्रति मीमांसक व्याप्यवद् भेदाग्रह को यदि कारण माने तो दोष वश वह्नि व्याप्य धूमवद्भेदाग्रह जल में होने के कारण उनको " वह्नि मज्जलम् " इत्याकारक अनुमित्यात्मक अन्यथाख्याति माननी होगी। तद्वारणार्थ यदि अनुमिति के प्रति व्याप्यवद्भेदाग्रह को कारणत्व नहीं मानकर व्याप्य प्रकारक विशिष्ट ज्ञान ही को कारण माने तो " अयोगोलकं वह्नि मत् " इत्याकारक अनुमिति होती है। तदर्थं तत् कारणीभूत विशिष्ट ज्ञानात्मक वह्निव्याप्य धूमवदयोगोलकम् इत्याकारक परामर्श रूप अन्यथाख्याति मानना आवश्यक हो जायगा अतः अन्यथाख्याति भयभीत मीमांसक अनुमिति के प्रति व्याप्यवद्भेदाग्रह और विशिष्ट ज्ञान इन दोनों में एक को भी कारण नहीं कह सकते हैं।

(२५) इत्थं चान्यथाख्यातौ प्रत्यक्षमेव प्रमाणं रङ्गं रजततयाऽवेदिषमित्यनुभवादिति संक्षेपः।

(२५) *इस प्रकार अनेक युक्ति सिद्ध जो अन्यथाख्याति उस में सर्वप्रमाणापेक्षया बलवत्तर प्रत्यक्ष प्रमाण भी " इत्थम् " इत्यादि ग्रन्थ से ग्रन्थकार दिखलाते हैं। जैसे रङ्ग को मैं रजत करके जानता था अर्थात् रजतत्वनिष्ठ प्रकारता निरूपित रङ्गनिष्ठ विशेष्यता शालि प्रत्यक्ष वानहम्। इत्याकारक अनुव्यवसायात्मक प्रत्यक्ष भी अन्यथाख्याति में प्रमाण है।

——*——

पूर्वं व्याप्तिरुक्ता तद्ग्रहोपायस्तु न दर्शित इत्यतस्तं दर्शयति—

व्याप्ति का निरूपण पहले किया जा चुका है। परन्तु व्याप्तिग्रह का उपाय दिखलाया नहीं गया है। अतः व्याप्तिग्रह का उपाय बतलाते हैं।

* प्रत्यक्षमेव यहां एवकारअप्यर्थक है।

का० १३७

व्यभिचारस्याग्रहोऽपि सहचारग्रहस्तथा ।
हेतुर्व्याप्तिग्रहे तर्कः क्वचिच्छंकानिवर्तकः ॥

का० अर्थ ।

व्यभिचार ज्ञानाभाव और सहचार ग्रह ये दोनों व्याप्ति ज्ञान के कारण हैं और तर्क कहीं कहीं व्याप्तिज्ञान के प्रतिबन्धक व्यभिचार शंका का विघातक होनेसे व्याप्ति ज्ञान में उपयोगी होता है ।

(१) व्यभिचारस्येति । व्यभिचाराग्रहः सहचारग्रहश्च व्याप्तिग्रहे कारणम् । (२) व्यभिचारग्रहस्य व्याप्तिग्रहे प्रतिबन्धकत्वात्तदभावः कारण मित्यर्थः । (३) एवमन्वयव्यतिरेकाभ्यां सहचारग्रहस्यापि हेतुता । (४) भूयो दर्शनं तु न कारणं व्यभिचारास्फूर्तौ सकृद्दर्शनेऽपि क्वचिद्व्याप्तिग्रहात् । क्वचिद्व्यभिचारशङ्काविधूननद्वारा भूयोदर्शनमुपयुज्यते ।

(१) कारिकार्थ में स्पष्ट है । (२) व्याप्ति ज्ञान में व्यभिचार ज्ञान को प्रतिबन्धक होने के कारण प्रतिबन्धकाभाव रूप व्यभिचारज्ञानाभाव व्याप्तिज्ञान का कारण है । (३) एवं साध्य साधन सामानाधिकरण्य ज्ञान रूप सहचार ज्ञान को व्याप्तिज्ञान के साथ अन्वय व्यतिरेक रहने के कारण व्याप्तिज्ञान के प्रति कारणत्व है । (४) व्यभिचार का अज्ञान रहने से एकबार भी साध्य साधन के सामानाधिकरण्य का ज्ञान होने पर कहीं कहीं व्याप्ति का ज्ञान हो जाता है । अतः व्याप्ति ज्ञान में बारम्बार साध्य साधन सामानाधिकरण्य ज्ञानात्मक भूयो दर्शन कारण नहीं है । किन्तु व्याप्ति ज्ञान प्रतिबन्धक व्यभिचार शंका के अपनयन द्वारा भूयो दर्शन व्याप्ति ज्ञान में उपयोगी है ।

(५) यत्र तु भूयोदर्शनादपि शङ्का नापैति तत्र विपक्षबाधकतर्कोऽपेक्षितः । (६) तथाहि वह्निविरहिण्यपि धूमः स्यादिति यद्याशङ्का भवति तदा सा वह्नि धूमयोः कार्यकारणभावस्य प्रतिसन्धानान्निवर्तते ।

(५) और जहां पर भूयोदर्शन होने पर भी व्यभिचार शंका की निवृत्ति नहीं होती है । वहां पर व्याप्तिज्ञान प्रतिबन्धक व्यभिचार शंका के निवर्तक तर्क की अपेक्षा होती है । (६) जैसे—"धूमो यदि वह्नि व्यभिचारीस्यात्" अर्थात् वह्नि शून्य देश में भी यदि धूम उत्पन्न हो इत्याकारक व्याप्ति ज्ञान प्रतिबन्धक यदि शङ्का हो तो वह वह्नि धूम के कार्यकारणभाव के निश्चय से निवृत्त होती है ।

(७) यद्ययं वह्निमान्न, स्यात्तदा धूमवान्न, स्यात्कारणं विना कार्यानुत्पत्तेः।

(७)* जैसे "धूमो यदि वह्नि व्यभिचारीस्यात् तदा वह्निजन्यो न स्यात्" अर्थात् वह्नि शून्य देश में भी यदि धूम उत्पन्न हो तो धूम वह्नि का जन्य नहीं होगा। क्योंकि कारण के विना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है।

(८) यदि च क्वचित्कारणं विना कार्यं भविष्यति तदाऽहेतुक एव भविष्यतीति तत्राप्याशङ्का भवेत्तदा सा व्याघातादपसारणीया। (९) यदि हि कारणं विना कार्यं स्यात्तदा धूमार्थं वह्नेस्तृप्त्यर्थं भोजनस्य वा नियमत उपादानं तवैव न स्यादिति। (१०) यत्र स्वत एव शंका नावतरति तत्र न तर्कापेक्षापीति तदिदमुक्तम्—तर्कः क्वचिच्छङ्कानिवर्तक इति।

(८) यदि क्वचित् कारण के विना भी कार्य की उत्पत्ति होती होगी तो धूम भी कारण के विना भी उत्पन्न हो सकता है। यह यदि शंका हो तो व्याघात से उस शंका की निवृत्ति करनी चाहिये। (९) जैसे कारण के विना भी यदि कार्य की उत्पत्ति हो तो धूमार्थ वह्नि का एवं तृप्त्यर्थ भोजन का नियमतः उपादान (ग्रहण) जो होता है वह आप के मत से नहीं होना चाहिये। (१०) जहां व्याप्तिज्ञान प्रतिबन्धक व्यभिचार शंका स्वतः उत्पन्न नहीं होती है वहां तर्क की अपेक्षा भी नहीं है। अतः मूल में कहा है कि "तर्कः क्वचिच्छङ्का-निवर्तकः" अर्थात् व्यभिचार शंका निवृत्त्यर्थ तर्क की अपेक्षा सार्वत्रिक नहीं है।

इदानीं परकीयव्याप्तिग्रह प्रतिबन्धार्थ मुपाधिं निरूपयति=

परकीय व्याप्ति ज्ञान के प्रतिबन्ध का प्रयोजक उपाधि का "साध्यस्य" इत्यादि कारिका से निरूपण करते हैं।

का० १३८

साध्यस्य व्यापको यस्तु हेतोरव्यापकस्तथा।
स उपाधिर्भवेत्तस्य निष्कर्षोऽयं प्रदर्श्यते॥

का० अर्थ।

साध्य का व्यापक और हेतु अर्थात् साधन का अव्यापक जो पदार्थ वह उपाधि कहलाता है। उस उपाधि का निष्कर्ष बतलाते हैं।

---

*"यद्ययं वह्निमान् नस्यात तदा धूमवान् न स्यात्" इस पंक्ति का यदि यह अर्थ करें कि "यदि यह पर्वत वह्निमान् नहीं होगा तो धूमवान् भी नहीं होना चाहिये" तो यद्ययं वह्निमान् न स्यात् तदा धूमवान् न स्यात्" इस विषय परिशोधक तर्क को व्याप्तिग्राहक नहीं होने के कारण असङ्गति हो जायगी। अतः उक्त पंक्ति का "धूमो यदि वह्नि व्यभिचारीस्यात् तर्हि वह्नि जन्यो न स्यात्" इत्याकारक अर्थ करना उचित है।

(१) साध्यस्येति । साध्यत्वाभिमत व्यापकत्वे सति साधनत्वाभिमताव्यापकत्व मुपाधिरित्यर्थः ।

(१) साध्यत्वेन अभिमत वस्तु का व्यापक होकर साधनत्वेन अभिमत वस्तु का अव्यापक जो पदार्थ वह उपाधि कहलाता है ।

(२) ननु स श्यामो मित्रातनयत्वादित्यत्र शाकपाकजन्यत्वं नोपाधि स्यात्तस्य साध्यव्यापकत्वाभावाच्छ्यामत्वस्य घटादावपि सत्त्वात्, एवं वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वादित्यत्रोद्भूतरूपवत्त्वं नोपाधिः स्यात्प्रत्यक्षत्वस्यात्मादिषु सत्त्वात्तत्र च रूपाभावात्, एवं ध्वंसो विनाशी जन्यत्वादित्यत्र भावत्वं नोपाधिः स्यात्विनाशित्वस्य प्रागभावेऽपि सत्त्वात्तत्र च भावत्वाभावादिति चेन्न ।

(२) शंका करते हैं कि साध्य व्यापक होकर साधना व्यापक ही यदि उपाधि रूप हो तो "स श्यामो मित्रा तनयत्वात्" इस अनुमान में शाक पाकजन्यत्व नील घटादि में नहीं रहने के कारण श्यामत्व रूप साध्य व्यापक नहीं है (अतः उक्त स्थल में शाक पाक जन्यत्व उपाधि नहीं होगा। एवं "वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्ष स्पर्शाश्रयत्वात्" इस अनुमान में उद्भूतरूपवत्त्व प्रत्यक्षत्व रूप साध्य के आश्रय आत्मादि में नहीं रहने के कारण प्रत्यक्षत्व रूप साध्य का व्यापक नहीं है। अतः उद्भूत रूपवत्त्व उपाधि नहीं होगा। इसी प्रकार "ध्वंसो विनाशी जन्यत्वात्" इस स्थल मे विनाशित्व रूप साध्य के अधिकरण प्रागभाव में भावत्व को नहीं रहने के कारण विनाशित्व रूप साध्य का व्यापक भावत्व नहीं है। अतः वह भी उपाधि नहीं होगा।

(३) यद्धर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वं तद्धर्मावच्छिन्नसाधनाव्यापकत्व मित्यर्थे तात्पर्यात् ।

(३) समा०—केवल साध्य व्यापक और साधना व्यापक ही उपाधि नहीं है किन्तु यद्धर्मविशिष्ट साध्य का व्यापक होकर तद्धर्म विशिष्ट साधन का अव्यापक जो वस्तु वह उपाधि रूप है।

(४) मित्रातनयत्वा वच्छिन्न श्यामत्वस्य व्यापकं शाकपाकजन्यत्वं तदवच्छिन्न साधनाव्यापकं च ।

(४) "स श्यामो मित्रा तनयत्वात्" इस स्थल मे मित्रा तनयत्व रूप यद्धर्म विशिष्ट जो श्यामत्वरूप साध्य तद्व्यापक जो शाक पाक जन्यत्व वह मित्रा तनयत्व रूप यद्धर्म वि-

शिष्ट मित्रा तनयत्व रूप साधन के अधिकरण गौर मित्रातनय मे नहीं रहने के कारण मित्रातनयत्वरूप यद्धर्म विशिष्ट साधन का अव्यापक है अतः शाक पाकजन्यत्व उपाधि हो सकताहै।

(५) एवं पक्षधर्मबहिर्द्रव्यत्वा वच्छिन्नप्रत्यक्षत्वस्य व्यापक मुद्भूत रूप वत्त्वम्। एवं वहिर्द्रव्यत्वा वच्छिन्न साधनस्या व्यापकं च।

(५) एवं "वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्ष स्पर्शाश्रयत्वात्" इस स्थल मे वायु रूप पक्ष में रहने वाले वहिर्द्रव्यत्व रूप यद्धर्म विशिष्ट प्रत्यक्षत्व रूप साध्य का व्यापक जो उद्भूत रूपवत्त्व वह वहिर्द्रव्यत्व रूप यद्धर्म विशिष्ट प्रत्यक्ष स्पर्शाश्रयत्व रूप साधन के अधिकरण वायु मे नहीं रहने के कारण वहिर्द्रव्यत्व रूप तद्धर्म विशिष्ट साधन का अव्यापक है अतः उपाधि हो सकता है।

(६) एवं ध्वंसो विनाशी जन्यत्वादित्यत्र जन्यत्वावच्छिन्न साध्य व्यापकं भावत्वम्।

(६) एवं "ध्वंसो विनाशी जन्यत्वात्" इस स्थल में जन्यत्व रूप यद्धर्म विशिष्ट विनाशित्व रूप साध्य का व्यापक भावत्व जन्यत्व रूप यद्धर्म विशिष्ट जन्यत्वरूप साधन का अव्यापक है। अतः उपाधि हो सकता है।

(७) सद्धेतौ तु एतादृशो धर्मो नास्ति यदवच्छिन्नस्य साध्यस्य व्यापकं तदवच्छिन्नस्य साधनस्य चा व्यापकं किंचित्स्यात्। (८) व्यभिचारिणि तूपाध्यधिकरणं यत्साध्याधिकरणं यच्चोपाधिशून्यं साध्य व्यभिचाराधिकरणं तदन्यतरत्वावच्छिन्नस्य साध्यस्य व्यापकत्वं साधनस्य चाव्यापकत्वमुपाधेरन्ततः संभवतीति।

(७) सद्धेतु स्थल मे ऐसा धर्म एक भी प्रसिद्ध नहीं है यद्धर्मविशिष्ट साध्य का व्यापक और तद्धर्म विशिष्ट साधन का अव्यापक कोई वस्तु हो। (८) और व्यभिचारि स्थल मे उपाध्यधिकरण जो साध्याधिकरण और उपाधि शून्य जो साध्य व्यभिचारनिरूपकाधिकरण तदन्यतरत्व को "यद्धर्म" से अन्ततः ग्रहण करके तादृशान्यतरत्व विशिष्ट साध्य का व्यापक और तादृशान्यतरत्व विशिष्ट साधन का अव्यापक उपाधि अन्ततः अवश्य होगा। जैसे — "धूमवान् वह्नेः" इत्यादि स्थल मे आर्द्रेन्धन संयोग रूप उपाध्यधिकरण जो धूमाधिकरण महानसादि और आर्द्रेन्धन संयोग रूप उपाधि शून्य जो धूम व्यभिचाराधिकरण अयोगोलकादि तदन्यतरत्व रूप यद्धर्म विशिष्ट साध्य के सकल

अधिकरण मे रहने के कारण तादृशान्यतरत्वात्मक यद्धर्म विशिष्ट साध्य का व्यापक जो आर्द्रेन्धन संयोग वह तादृशान्यतरत्वात्मक यद्धर्म विशिष्ट साधन के अधिकरण अयोगोलक मे नहीं रहने के कारण तद्धर्म विशिष्ट साधन का अव्यापक है। अतः उपाधि हो सकता है ।

——०——

अतएव लक्ष्यमप्युपाधिस्वरूप मेतदनुसारेण दर्शयति = यद्धर्मावच्छिन्न साध्य व्यापकत्व तद्धर्मावच्छिन्न साधना व्यापकत्व रूप उपाधि लक्षण जिस हेतु मूलकार का अभिप्रेत है। अत: उसी लक्षण के अनुसार लक्ष्य " सर्वे " इत्यादि कारिका से दिखलाते हैं।

का० १३९

सर्वे साध्य समानाधिकरणाः स्युरुपाधयः ।
हेतोरेकाश्रये येषां स्वसाध्य व्यभिचारिता ॥

का० अर्थ ।

सभी उपाधि साध्य के समानाधिकरण होते हैं और हेतु के किसी अधिकरण मे उन उपाधियों का व्यभिचारित्व (अभाव) और साध्यका व्यभिचारित्व (अभाव) रहा करता हैं।

(१) सर्व इत्यादिना स्वसाध्येति स्वं च साध्यं च स्वसाध्ये तयोर्व्यभिचारितेत्यर्थः ।

(१) कारिका घटक स्व पद उपाधि बोधक है। स्वपद और साध्य पद को पूर्व द्वन्द्व समास करके पश्चात् समस्त स्व साध्य पद का व्यभिचारिता पद के साथ षष्ठी तत्पुरुष समास करने पर द्वन्द्वान्ते " द्वन्द्वादौ वा श्रूयमाणं पदं प्रत्येक मभि सम्बध्यते" इस नियम के बल से अभाव रूप व्यभिचारित्व पदार्थ मे स्व और साध्य इन दोनों पदार्थों का अन्वय होता है।

——०——

उपाधेर्दूषकता बीज माह = उपाधिनिष्ठ दोष प्रयोजकता का कारण " व्य भिचारस्येत्यादि " कारिका से कहते हैं।

का० १४० पूर्वा०

व्यभिचारस्यानुमानमुपाधेस्तु प्रयोजनम् ।

का० अर्थ

हेतु में व्यभिचार का अनुमान कराना उपाधि का प्रयोजन है ।

(१) व्यभिचारस्येति उपाधिव्यभिचारेण हेतौ साध्यव्यभिचारानुमानमुपाधेः प्रयोजन मित्यर्थः । (२) तथाहि यत्र शुद्धसाध्यव्यापक उपाधिस्तत्र शुद्धेनैवोपाधिव्यभिचारेण साध्य व्यभिचारानुमानम् । (३) यथा धूमवान्वह्नेरित्यादौ वह्निर्धूमव्यभिचारी तद्व्यापकार्द्रेन्धन संयोग व्यभिचारित्वा दिति । (४) व्यापकव्यभिचारिणो व्याप्यव्यभिचारावश्यकत्वात् ।

(१) साध्य व्यापक जो उपाधि उसका व्यभिचार जहां रहेगा वहां साध्य का व्यभिचार अवश्य होगा । क्योंकि व्यापक का व्यभिचारी पदार्थ व्याप्य का व्यभिचारी अवश्य होता है । अतः आर्द्रेन्धन संयोगादि रूप उपाधि के व्यभिचार रूप हेतु से वह्न्यादि रूप हेतु में धूमादि रूप साध्य का व्यभिचारानुमान उपाधि का प्रयोजन है । (२) जिस स्थल मे शुद्ध साध्य व्यापक उपाधि होता है उस स्थल मे शुद्ध उपाधि व्यभिचार से साध्य व्यभिचारानुमान होता है । (३) धूमवान् वह्नेः इस स्थल मे आर्द्रेन्धन संयोग रूप उपाधि को शुद्ध साध्य व्यापक होने के कारण शुद्ध आर्द्रेन्धन संयोग रूप उपाधि के व्यभिचार से हेतु में साध्य व्यभिचार का अनुमान होता है । जैसे "वह्निः धूमव्यभिचारी धूमव्यापक आर्द्रेन्धन संयोग व्यभिचारित्वात्" । (४) व्यापक व्यभिचारी को व्याप्य व्यभिचारी अवश्य होने के कारण धूम व्यापक आर्द्रेन्धन संयोग का व्यभिचारी जो वह्नि वह धूम का व्यभिचारी अवश्य होगा ।

(५) यत्र तु किंचिद्धर्मा वच्छिन्न साध्यव्यापक उपाधिस्तत्र तद्धर्मवति उपाधि व्यभिचारेण साध्यव्यभिचारानुमानम् । (६) यथा स श्यामो मित्रातनयत्वादित्यादौ मित्रातनयत्वं श्यामत्वव्यभिचारि मित्रातनये शाकपाकजत्व व्यभिचारित्वादिति । (७) बाधानुन्नीतपक्षेतरस्तु साध्यव्यापकताग्राहकप्रमाणाभावात्स्वव्याघातकत्वाच्च नोपाधिः ।

(५) जिस स्थल में यत्किंचिद्धर्म विशिष्ट साध्य का व्यापक उपाधि होता है उस स्थल में तादृश यत्किंचिद्धर्म वन्निष्ठ जो उपाधि व्यभिचार तादृश उपाधि व्यभिचार से हेतु मे साध्य व्यभिचारानुमान होता है। (६) यथा "सश्यामो मित्रातनयत्वात्" इस स्थल मे मित्रातनयत्व रूप यद्धर्म विशिष्ट साध्य व्यापक शाक पाक जन्यत्व रूप उपाधि होने के कारण व्यभिचारानुमान इस प्रकार होगा। "मित्रा तनयत्वं श्यामत्वव्यभिचारि मित्रातनये शाक पाक जन्यत्व व्यभिचारित्वात्" अर्थात् मित्रातनयत्व मित्रा तनयनिष्ठ शाक पाक जन्यत्व का व्यभिचारी होने के कारण श्यामत्व का व्यभिचारी है। (७) जो पक्ष साध्याभाव वत्त्वेन अनिश्चित है अर्थात् जिस पक्ष मे साध्य का सन्देह है तादृश पर्वतादि रूप पक्ष भिन्नत्व मे साध्य व्यापकता निश्चायक प्रमाण नहीं रहने के कारण उक्त पक्षेतरत्व में साध्य व्यापकता का निश्चय नहीं होगा। इसलिये वह उपाधि नहीं है। दूसरी युक्ति यह है कि यदि पक्षतरत्व उपाधि माना जाय तो सब सद्धेतु स्थलों में भी पक्षेतरत्व रूप उपाधि अवश्य होने के कारण अनुमान मात्र का उच्छेद हो जायगा। तब हेतु मेः यभिचारानुमान द्वारा उपाधि की दूषकता नहीं होगी अतः स्वनिष्ठ दूषकत्वा भाव सम्पादकत्व रूप स्वव्याघातकत्व हेतुक उक्त पक्षेतरत्व मे उपाधित्वा भाव की सिद्धि होगी।

(८) बाधोन्नीतस्तूपाधिर्भवत्येव। (९) यथा वह्निरनुष्णः कृतकत्वादित्यादौ प्रत्यक्षेण वह्नावुष्णत्वग्रहे वह्नीतरत्वमुपाधिः। यत्र तूपाधेः साध्यव्यापकता संदिह्यते स संदिग्धोपाधिः। (१०) पक्षेतरस्तु संदिग्धोपाधिरपि नोद्भावनीयः कथक सम्प्रदायानुरोधादिति।

(८) साध्याभाववत्त्वेन निश्चित जो पक्ष तादृश पक्षेतरत्व उपाधि रूप होता ही है। (९) जैसे "वह्निः अनुष्णः कृत कत्वात्" इस स्थल में वह्नि रूप पक्ष में अनुष्णत्व रूप साध्य का अभाव अर्थात् उष्णत्व का प्रत्यक्ष प्रमाण से निश्चय रहने के कारण वह्नीतरत्व रूप उपाधि हो सकता है। जिस उपाधि में साध्य व्यापकता का सन्देह रहता है वह संदिग्धोपाधि शब्द से व्यवहृत होता है। (१०) संदिग्ध साध्यवत् पक्षेतरत्व यद्यपि संदिग्धोपाधि है। तथापि भाष्यकारादियों के संप्रदायानुरोध से कथा में दोषत्वेन उद्भावन योग्य नहीं है।

(११) केचित्तु सत्प्रतिपक्षोत्थापनमुपाधि फलम्। (१२) तथाहि। अयोगोलकं धूमवद्वह्नेरित्यादावयोगोलकं धूमाभाववदार्द्रेन्धनाभावादिति सत्प्रतिपक्षसंभवात् (१३) इत्थं च साधन व्यापकोऽपि क्वचिदुपाधिः। (१४) यथा करका पृथिवी कठिनसंयोगवत्त्वादित्यादावनुष्णाशीतस्पर्शवत्त्वम्।

(११) किसी का मत है कि सत्प्रतिपक्षोत्थापन उपाधि का फल है। (१२) जैसे " अयो गोलकं धूमवद्वह्नेः " इस स्थल में धूम व्याप्य वह्निमद् योगोलकम्" इत्याकारक परामर्श काल में " धूमाभावव्याप्य आर्द्रेन्धन संयोगाभाववदयोगोलकम् " इत्याकारक परामर्श होने के कारण सत्प्रतिपक्ष होता है। (१३) जिनके मत में'सत्प्रतिपक्षोत्थापन ही उपाधि का फल है उन के मत से क्वचित्साधन व्यापक पदार्थ भी उपाधि रूप होता है। (१४) जैसे करका पृथिवी कठिन संयोगवत्त्वात्" इस अनुमान में अनुष्णाशीत स्पर्शवत्त्व कठिन संयोगवत्त्व रूप हेतु का व्यापक होने पर भी उपाधि रूप होता है। अनुष्णाशीत स्पर्शवत्त्व रूप उपाधि से सत्प्रतिपक्षोत्थापन इस प्रकार होता है। जैसे " पृथिवीत्वव्याप्य कठिन संयोगवत्त्ववती करका" इत्याकारक परामर्श के समय में पृथिवीत्वा भाव व्याप्य अनुष्णाशीत स्पर्शवत्त्वा भाववती करका इत्याकारक परामर्श होने से सत्प्रति पक्षोत्थापन समझना चाहिये।

(१५) न चात्र स्वरूपासिद्धिरेव दूषणमिति वाच्यं, सर्वत्रोपाधेर्दूषणान्तर सांकर्यात्। (१६) अत्र च साध्यव्यापकः पक्षावृत्तिरुपाधि रित्याहुः।

(१५) * शंका करते है कि " करका पृथिवी कठिन संयोग वत्त्वात इस स्थल में करका को पिघलने के वाद उस में कठिन संयोग नहीं रहेगा। अतः पक्ष में हेत्वभाव और साध्याभाव रहने के कारण स्वरूपा सिद्धि और बाधादि दोष के रहते हुए उपाधि दोष नहीं रहने पर भी हेतु में दुष्टत्व व्यवहार हो ही जायगा। तब साधन व्यापक अनुष्णाशीत स्पर्शवत्त्व को उपाधि रूप मानना व्यर्थ है। समा०—सर्वत्र उपाधि स्थल में व्यभिचारादिरूप दोष अवश्य रहते हुए भी जैसे उपाधिरूप दोष माना जाता है उसी तरह प्रकृत स्थल में भी स्वरूपासिद्धि बाधादि दोष रहते हुए अनुष्णाशीत स्पर्शवत्त्व रूप उपाधि माना जा सकता है। (१६) जिनके मत में सत्प्रतिपक्षोत्थान उपाधि का फल है उन के मत में साध्य व्यापक पक्षावृत्ति पदार्थ उपाधि रूप है।

का० १४०. १४१

शब्दोपमानयोर्नैव पृथक्प्रामाण्यमिष्यते ॥
अनुमानगतार्थत्वादिति वैशेषिकं मतम्।
तन्न सम्यग्विना व्याप्तिबोधं शब्दादिबोधतः॥

का० अर्थ।

वैशेषिक (कणाद) के मत से शब्द और उपमान इन दोनों में अनुमान से पृथक्

* स्वरूपासिद्धिरेव यहां एव शब्द अप्यर्थक हैं।

प्रामाण्य नहीं है। अर्थात् अनुमान ही में ये दोनों अन्तर्गत हैं किन्तु नैयायिक मत से यह ठीक नहीं है क्योंकि शब्द और उपमान जन्य बोध व्याप्ति ज्ञान की अपेक्षा नहीं करता है।

(१)शब्दोपमानयोरिति। वैशेषिकाणां मते प्रत्यक्ष मनुमानं च प्रमाणम्। (२) शब्दोपमानयो स्त्वनुमानविधयैव प्रामाण्यम्। (३) तथाहि-दण्डेन ग मानयेत्यादिलौकिक पदानि यजेतेत्यादि वैदिकपदानि वा तात्पर्यविषय-स्मारितपदार्थसंसर्गप्रमापूर्वकाणि आकांक्षादिमत्पदकदम्बत्वाद्घटमानयेति पदकदम्बवत्।

(१) वैशेषिक मत में प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण हैं। (२) क्योंकि शब्द और उपमान में अनुमान रूप ही से प्रामाण्य है किन्तु अनुमान से, पृथक् प्रामाण्य नहीं है। (३) बुबोधयिषा से वाक्यों के उच्चारण में वाक्यार्थ ज्ञान कारण है। अर्थात् किसी को समझाने के लिये जो वाक्योच्चारण किया जाता है उस में वाक्यार्थ का ज्ञान कारण है। क्योंकि वाक्यार्थ ज्ञान जिस को नहीं है वह आदमी बुबोधयिषा से वाक्योच्चा-रण नहीं कर सकता है। अतः "घटमानय" यह वाक्य आकांक्षा; योग्यता, तात्पर्य सहित पद समूह रूप होने के कारण जिस प्रकार वक्ता के तात्पर्य का विषय जो पद द्वारा स्मरण कराये गये घट, कर्मत्व, आनयन, और कार्यत्व,रूप पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध, उस सम्बन्ध के यथार्थ ज्ञान से होता है। उसी प्रकार "दण्डेन गामानय" इत्यादि लौकिक वाक्य और "यजेत" इत्यादि वैदिक वाक्य आकांक्षा, योग्यता, और तात्पर्य सहित पदों का समूह रूप होने के कारण वक्ता के तात्पर्य का विषय जो पदस्मारित दण्ड, करणत्व, गो, कर्मत्व, आनयन और कार्यत्व, रूप पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध, एवं याग, इष्टसाधनत्व, कृति साध्यत्व, और वलवदनिष्टा ननुवन्धित्व रूप पदार्थोंका परस्पर सम्बन्ध उस सम्बन्धके यथार्थ ज्ञान से होता है और यह ज्ञान "दण्डेनगामानय" इस वाक्य से होने वाला जो दण्डकर-णक गोकर्मकानयनङ्कार्यम् इत्याकारक ज्ञान एवं "यजेत" इस वाक्य से होनेवाला जो यागः इष्ट साधनं,कृति साध्यो, वलवदनिष्टा ननुवन्धी च इत्याकारक ज्ञान; तद्रूप है इस लिए शब्दसे जैसा बोध आनुभविक है वैसा बोध अनुमान ही से लब्ध हो जाता है। अतः शब्द प्रमाण का अनुमान ही में अन्तर्भाव है।

(४) यद्वा एते पदर्था मिथःसंसर्गवन्तः, योग्यतादिमत्पदोपस्थापित-त्वात्, तादृशपदार्थवत्। (५) दृष्टान्तेऽपि दृष्टान्तान्तरेण साध्यसिद्धि-रिति।

(४) पद विशेष्यक अनुमान को बतला कर यद्वा इत्यादि ग्रन्थ से पदार्थ विशेष्यक अनुमान का प्रदर्शन करते हैं। योग्यतादि मत्पदों से उपस्थापित होने के कारण योग्यतादि

मत्पदोपस्थापित घट, कर्मत्व, आनयन, और कार्यत्व, रूप पदार्थान्तर के सदृश " दण्डेन गामानय " इत्यादि वाक्यान्तः पाती पदों से उपस्थापित दण्ड, करणत्व गो, कर्मत्व, आनयन, और कार्यत्व, रूप पदार्थ भी परस्पर सम्बद्ध हैं। यह ज्ञान " दण्डेन गामानय " इस वाक्य से होनेवाला जो दण्डकरणक गो कर्मकानयनं कार्यम्, इत्याकारक ज्ञान तद्रूप है इस कारण शब्द से जैसा बोध आनुभविक है वैसा बोध अनुमान ही से लब्ध हो जाता है। अतः शब्द प्रमाण का अनुमान में अन्तर्भाव है। (५) " घटमानय " इत्यादि वाक्य घटक पदोंसे उपस्थापित घट, कर्मत्व; आनयन, और कार्यत्व, रूप पदार्थसमुदायात्मक दृष्टान्त में भी " घटमानय इत्यादि वाक्य घटक पदोपस्थापित पदार्थ रूप दृष्टान्तान्तर से परस्पर संसर्गवत्त्व रूप साध्य का निश्चय करना चाहिये।

(६) एवं गवयव्यक्तिप्रत्यक्षानन्तरं गवयपदं गवयत्वप्रवृत्तिनिमित्तकम्, असतिवृत्त्यन्तरे वृद्धैस्तत्र प्रयुज्यमानत्वात्। असति च वृत्त्यन्तरे वृद्धैर्यत्र यत्प्रयुज्यते तत्तत्प्रवृत्तिनिमित्तकम्। यथा गोपदं गोत्वप्रवृत्ति निमित्तकम्।

(६) एवम् इत्यादि ग्रन्थ से उपमान के अनुमान प्रमाण मे अन्तर्भाव का प्रदर्शन करते हैं। गोत्व रूप अर्थ मे गो पद की लक्षणा नहीं है तथापि गोत्व के तात्पर्यसे गो पद का प्रयोग वृद्ध लोग करते हैं और गोपद गोत्वप्रवृत्तिनिमित्तक माना जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस अर्थ में जिस पद की लक्षणा नहीं है परन्तु वृद्ध लोग उस अर्थ में उस पद का प्रयोग करते हैं, वह पद तत्प्रवृत्तिनिमित्तिक होता है इस लिये गवय व्यक्तिके प्रत्यक्षानन्तर गवय पद में गवयत्व प्रवृत्ति निमित्तकत्व का निश्चय अनुमान से हो जायगा क्योंकि गवयत्वरूप अर्थमें गवय पदकी लक्षणा नहींहै तथापि गवयत्वरूप अर्थमें गवय पद का प्रयोग वृद्ध लोग करते हैं। अतः गवय पद गवयत्व प्रवृत्ति निमित्तिक है अर्थात् गवय पद का प्रवृत्ति निमित्त याने वाच्यतावच्छेदक गवयत्व है, इत्याकारक ज्ञान जो कि उपमान से होता है वह अनुमान ही से हो जायगा तब उपमान को प्रमाणान्तर मानना व्यर्थ है।

(७) यद्वा गवयपदं सप्रवृत्तिनिमित्तकं साधुपदत्वादित्यनुमानेन पक्षधर्मताबलात्गवयत्व प्रवृत्तिनिमित्तकत्वं सिद्ध्यति।

(७) अथवा गवयपद साधु पद होने के कारण किंचित्प्रवृत्ति निमित्तक है " इस अनुमान से (गवय पद में किंचित्प्रवृत्ति निमित्तकत्व की सिद्धि के पश्चात्) गवय पद में अन्यप्रवृत्ति निमित्तकत्व नहीं है इस इतरबाध निश्चय की सहायता से गवयत्वप्रवृत्ति निमित्तकत्व की सिद्धि होती है।

(८) तन्मतं दूषयति–तन्न सम्यगिति, (९) व्याप्तिज्ञानं विनापि शाब्दबोधस्यानुभव सिद्धित्वात्। (१०) न हि सर्वत्र शब्दश्रवणानन्तरं व्याप्तिज्ञाने प्रमाणमस्तीति। (११, किंच सर्वत्र शाब्दस्थले यदि व्याप्तिज्ञानं कल्प्यते तदा सर्वत्रानुमितिस्थले पदज्ञानं कल्पयित्वा शाब्दबोध एव किं न स्वीक्रियत इति ध्येयम्।

(८) "तन्नसम्यक्" इत्यादि ग्रन्थ से वैशेषिक मत का नैयायिक खण्डन करते हैं।(९) व्याप्ति ज्ञान के विना भी शाब्द बोध होता है इस कारण शब्द जन्य बोध का अन्तर्भाव अनुमिति में नहीं होसकता है। (१०) सर्वत्र शब्द श्रवणानन्तर व्याप्ति ज्ञान हो ही कर शाब्द बोध होता है इस में कोई प्रमाण नहीं है। (११) एवं सर्वत्र शाब्द बोध स्थल में व्याप्ति ज्ञान की कल्पना कर के यदि आप (वैशेषिक) शाब्द बोध का अनुमिति में अन्तर्भाव करते हैं तो सर्वत्र अनुमिति स्थल में पदज्ञान की कल्पना कर के शाब्द बोध ही में अनुमिति का अन्तर्भाव क्यों नहीं मानते हैं। इस विनिगमना विरह से यह सिद्ध होता है कि जैसे अनुमिति स्थान में पद ज्ञान की कल्पना नहीं की जा सकती है वैसे शाब्द बोध स्थल में भी व्याप्ति ज्ञान की कल्पना नहीं हो सकती है तव शब्द में पृथक् प्रामाण्य मानना आवश्यक हो जायगा।

का० १४२, १४३ पूर्वा०

त्रैविध्यमनुमानस्य केवलान्वयि भेदतः।
द्वैविध्यं तु भवेद्व्याप्तेरन्वयव्यतिरेकतः॥
अन्वयव्याप्तिरुक्तैव व्यतिरेकादिहोच्यते।

का० अर्थ।

केवलान्वयि केवल व्यतिरेकि और अन्वयव्यतिरेकि के भेद से अनुमान तीन प्रकार का होता है एवं अन्वय और व्यतिरेक के भेद से व्याप्ति दो प्रकार की होती है। उस में अन्वय व्याप्ति का प्रदर्शन पूर्व ग्रन्थ से किया जा चुका है अब व्यतिरेक व्याप्ति का प्रदर्शन यहां किया जा रहा है।

(१) त्रैविध्यमिति। अनुमानं हि त्रिविधं केवलान्वयि केवलव्यतिरेक्यन्वयव्यतिरेकि भेदात्। (२) तत्रासद्विपक्षः केवलान्वयी। (३) यथा घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वादित्यादौ। तत्र हि सर्वस्यैवाभिधेयत्वाद्विपक्षासत्त्वम्।

(१) इस का अर्थ कारिका के अर्थ से ही स्पष्ट है। (२) अलीक है विपक्ष जिस का ऐसा जो साध्य उस साध्य की अनुमिति का जो करण अर्थात् अत्यन्ताभावा प्रतियोगि साध्यक अनुमिति का जो करण वह केवलान्वयि अनुमान कहलाता है। (३) जैसे घटोभिधेयः प्रमेयत्वात्" इस स्थल में पदशक्यत्वात्मक अभिधेयत्व रूप साध्य का अभाव कहीं नहीं है अतः अत्यन्ताभाव का अप्रतियोगी जो अभिधेयत्व रूप साध्य उस साध्य की अनुमिति का करणत्व प्रमेयत्व रूप हेतु में है। इस कारण प्रमेयत्व केवलान्वयि अनुमान कहलाता है।

(४) असत्सपक्षः केवलव्यतिरेकी। यथा पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वादित्यादौ। तत्र हि जलादित्रयोदशभेदस्य पूर्वमनिश्चिततया निश्चितसाध्यवतः सपक्षस्याभावात्। (५) सत्सपक्षविपक्षोऽन्वयव्यतिरेकी यथा वह्निमान्धूमादित्यादौ। तत्र सपक्षस्य महानसादेर्विपक्षस्य जलह्रदादेश्च सत्त्वादिति।

(४) एवं अलीक है सपक्ष जिसका ऐसा जो अनुमान वह केवलव्यतिरेकि अनुमान कहलाता है। जैसे "पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात्" इस स्थल में जलादि का जो चतुर्दश भेद तादृश चतुर्दश भेद रूप जो साध्य उसे साध्य के अभाव का जलादि में निश्चय रहने के कारण जलादि विपक्ष ही हुआ किन्तु सपक्ष नहीं होगा एवं पृथिवी मे अनुमिति से पूर्व उक्त साध्य का सन्देह रहने के कारण पृथिवी भी पक्ष ही है नकि सपक्ष है। अतः इस स्थल में सपक्ष नहीं रहने के कारण गन्धवत्त्व रूप हेतु केवलव्यतिरेकि अनुमान कहलाता है। यद्यपि इस स्थल में पृथिवी से इतर जलादि ८ और गुणादि६ येचौदह पदार्थ हैं। अतः पृथिवी में १४ भेद का साध्य करना युक्त था तव जो मुक्तावली में त्रयोदश भेद लिया है वहां "त्रयोदशसु भेदः त्रयोदश भेदः" इस व्युत्पत्ति से त्रयोदश भेद शब्द से त्रयोदश निष्ठ चतुर्दश भेद अभिप्रेत है। अतः असङ्गति नहीं हुई। (५) एवं वर्तमान है सपक्ष और विपक्ष जिस का ऐसा जो अनुमान वह अन्वयव्यतिरेकि अनुमान कहलाता है जैसे "वह्निमान् धूमात्" यहां महानस रूप सपक्ष और जल ह्रदादि रूप विपक्ष रहने के कारण धूम हेतु अन्वय व्यतिरेकि अनुमान कहलाता है।

तत्र व्यतिरेकिणि व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानं कारणं तदर्थं व्यतिरेकव्याप्तिं निर्वक्ति—"पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात्" इत्यादि स्थल मे व्यतिरेक व्याप्ति ज्ञान ही अनुमिति का कारण है। इस हेतु व्यतिरेक व्याप्ति का निरूपण करते हैं।

का० १४३ उत्त० ।

साध्याभाव व्यापकत्वं हेत्वभावस्य यद्भवेत् ।

का० अर्थ ।

साध्याभाव व्यापकीभूत जो अभाव तादृशाभाव प्रतियोगित्व व्यतिरेक व्याप्ति है ।

(१) साध्या भावेति । साध्याभाव व्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वमित्यर्थः । (२) अत्रेदं बोध्यम् । यत्संबन्धेन यदवच्छिन्नं:प्रति येन संबन्धेन येन रूपेण व्यापकता गृह्यते तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक तद्धर्मावच्छिन्नाभाववत्ता ज्ञानात्तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक तद्धर्मावच्छिन्नाभावस्य सिद्धिरिति ।

(१) इस का अर्थ कारिकार्थ ही में स्पष्ट है । (२) यहां यह समझना चाहिये कि जिस संबन्ध से यद्धर्मावच्छिन्न के प्रति जिस संबन्ध से यद्धर्मावच्छिन्न में व्यापकत्व गृहीत होता है तत्संबन्धावच्छिन्न तद्धर्मावच्छिन्न प्रतियोगितानिरूपक जो अभाव तत्प्रकारक ज्ञान से तत्सम्बन्धावच्छिन्न तद्धर्मावच्छिन्न प्रतियोगिता निरूपक अभाव की अनुमिति होती है। जैसे संयोग सम्बन्ध से धूमत्वावच्छिन्न के प्रति संयोग सम्बन्ध से वह्नित्वेन रूपेण वह्नि में व्यापकता का ज्ञान होने से संयोग संबन्धावच्छिन्न वह्नित्वावच्छिन्न प्रतियोगिता निरूपक जो वह्न्यभाव तादृशा भाव प्रकारक ज्ञान जलादि में होने से जलादि में संयोग सम्बन्धावच्छिन्न धूमत्वावच्छिन्न प्रतियोगिता निरूपक धूमाभाव की सिद्धि अर्थात् अनुमिति होती है, क्योंकि यह नियम है कि व्यापक का अभाव व्याप्य और व्याप्य का अभाव व्यापक होता है अतः वह्न्य भाव रूप व्याप्य से धूमाभाव रूप व्यापक की सिद्धि होती है ।

(३) इत्थ च यत्र विशेषणतादि संबधेनेतरत्वव्यापकत्वं गन्धाभावे गृह्यते तत्र गन्धाभावाभावेनेतरत्वात्यन्ताभावः सिध्यति । यत्र तु तादात्म्य संबन्धेनेतरव्यापकत्वं गन्धाभावस्य गृह्यते तत्र तादात्म्यसंबन्धेनेतरस्याभावः सिध्यति । स एवान्योन्याभावः । (४) एवं यत्र संयोगसंबन्धेन धूमं प्रति संयोगसम्बन्धेन वह्नेर्व्यापकता गृह्यते तत्र संयोगसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक वह्न्यभावेन जलह्रदे संयोगसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक धूमाभाव सिध्यति ।

(३) ऐसा नियम रहने के कारण जहां स्वरूप सम्बन्ध से जलादिनिष्ठ इतरत्व के प्रति स्वरूप सम्बन्ध से गन्धाभाव में व्यापकत्व का ज्ञान है, वहां गन्धाभाव के स्वरूप सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव अर्थात् गन्धके ज्ञान से स्वरूप सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक इतरत्वाभाव की अनुमिति होती है। और जहां तादात्म्य सम्बन्ध से जलादि रूप इतर के प्रति स्वरूप सम्बन्ध से गन्धाभाव में व्यापकता का ज्ञान है वहां गन्धाभाव के स्वरूप सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव अर्थात् गन्धके ज्ञान से तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक इतराभाव अर्थात् इतर भेद की अनुमिति होती है। (४) इसकी व्याख्या इसी कारिका की मुक्तावली न० २ में "जैसे इत्यादि शब्द से हो चुकी है।

(५) अत्र च व्यतिरेकव्याप्तिग्रहे व्यतिरेकसहचारज्ञानं कारणम्। (६) केचित्तु व्यतिरेकसहचारेणान्वयव्याप्तिरेव गृह्यते न तु व्यतिरेकव्याप्तिज्ञान कारणम्। यत्र व्यतिरेकसहचाराद्व्याप्तिग्रहस्तत्र व्यतिरेकीत्युच्यते। (७) साध्यप्रसिद्धिस्तु घटादावेवजाता पश्चात्पृथिवीत्वावच्छेदेन साध्यत इति वदन्ति।

(५) व्यतिरेक व्याप्ति ज्ञान में व्यतिरेक सहचार ज्ञान अर्थात् "साध्याभाव समानाधिकरणो हेत्वभावः" इत्याकारक सहचार ज्ञान ही कारण है। (६) कुछ आचार्यों का ऐसा मत है कि व्यतिरेक व्याप्ति ज्ञान से अनुमिति नहीं होती है। किन्तु केवल अन्वयव्याप्तिज्ञान ही से अनुमिति होती है। अन्वयव्याप्ति ज्ञान ही कचित् अन्वय सहचार ज्ञान से कचित् व्यतिरेक सहचार ज्ञानसे कचित् उभय सहचार ज्ञानसे होता है जहां केवल व्यतिरेक सहचार ज्ञान से व्याप्ति ज्ञान हुआ है वहीं अनुमान केवल व्यतिरेकी कहलाता है। (७) पृथिवी इतरेभ्योभिद्यते गन्धवत्त्वात् इस स्थल में सपक्ष नहीं रहने के कारण साधन में साध्य के सामानाधिकरण्य का निश्चय होना असम्भव है। तब हेतु व्यापक साध्य सामानाधिकरण्य रूप अन्वय व्याप्ति ज्ञान उक्त स्थल में नहीं होगा। इसी शंका का "साध्य प्रसिद्धिस्तु" इत्यादि मुक्तावली से निराकरण करते हैं अर्थात् "पृथिवी इतरेभ्योभिद्यते गन्धवत्त्वात्" इस स्थल में घटादि रूप जिस पृथिवी मे इतर भेद का निश्चय है उसी पृथिवी के द्वारा साधन में साध्य के सामानाधिकरण्य का निश्चय होने के कारण उक्त स्थलमें उक्त अन्वय व्याप्ति का ज्ञान हो सकता है। यत्किंचित् घटादि रूप पृथिवीमें साध्य निश्चय रहने पर भी पृथिवीत्वावच्छेदेन साध्य निश्चय नहीं रहनेके कारण पृथिवीत्वावच्छेदेन इतर भेद को साध्यता हो सकती है।

का० १४५।

अर्थापत्तिस्तु नैवेह प्रमाणान्तरमिष्यते।
व्यतिरेकव्याप्तिबुद्ध्या चरितार्था हि सा यतः॥

का० अर्थ ।

अर्थापत्ति प्रमाणान्तर अर्थात् अनुमानातिरिक्त प्रमाण नहीं है क्योंकि व्यतिरेक व्याप्ति ज्ञान ही में वह अन्तर्भूत हो सकता है ।

(१) अर्थापत्तिरिति । अर्थापत्तिः प्रमाणान्तरमिति केचन मन्यन्ते (२) तथाहि- यत्र देवदत्तस्य शतवर्षजीवित्वं ज्योतिः शास्त्रादवगतं जीविनो गृहासत्त्वं च प्रत्यक्षादवगतं तत्र शतवर्षजीविनो गृहासत्त्वं बहिःसत्त्वं विनाऽनुपपन्नमिति बहिःसत्त्वं कल्प्यत इति । तदनुमानेन गतार्थत्वा न्नेष्यते ।

(१) मीमांसक तथा वेदान्ती अर्थापत्ति को प्रत्यक्षादि चार प्रमाण से अतिरिक्त प्रमाण मानते हैं। (२) जैसे देवदत्त का शतवर्ष तक जीना ज्योतिष शास्त्र से निश्चित है और जीते हुए देवदत्त का घर में नहीं रहना प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है। तब शतवर्ष जीवी देवदत्त का गृहासत्त्व वहिःसत्त्व के विना अनुपपन्न है। इत्याकारक अनुपपत्ति ज्ञान रूप अर्थापत्ति प्रमाण से शतवर्ष जीवी देवदत्त में वहिःसत्त्व की कल्पना की जाती है परन्तु यह शतवर्ष जीवी देवदत्त में वहिःसत्त्व का ज्ञान अनुमान प्रमाण ही से सिद्ध हो सकता है इस कारण अनुमान प्रमाण से अतिरिक्त अर्थापत्ति प्रमाण नैयायिक नहीं मानते हैं।

(३) तथाहि—यत्र जीवित्वस्य बहिः सत्त्व गृहसत्त्वान्यतर व्याप्यत्वं गृहीतं तत्रान्यतरसिद्धौ जायमानायां गृहसत्त्व बाधा द्बहिः सत्त्वमनुमितौ भासते ।

(३) जैसे यन्निष्ठ जीवित्व में गृह सत्त्व वहिः सत्त्वान्यतर व्याप्यत्व का निश्चय होने पर जीवित्व हेतु से गृह सत्त्व वहिः सत्त्वान्यतर की सिद्धि की जाती है। वहाँ गृह सत्त्व का प्रत्यक्ष प्रमाण से बाध निश्चय रहने के कारण केवल वहिः सत्त्व का अनुमिति में भान होता है "जैसे देवदत्तो वहिरास्ते गृहासत्त्वे सति जीवित्वात्"।

(४) एवं पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्त इत्यादौ पीनत्वस्य भोजन व्याप्यत्वावगमाद्भोजनसिद्धौ दिवा भोजनबाधे रात्रिभोजनं सिध्यतीति। (५) अभाव प्रत्यक्षस्यानुभविकत्वादनुपलम्भोऽपि न प्रमाणान्तरम् ।

(४) "एवं पीनोऽयं देवदत्तो दिवा न भुंक्ते" इत्यादि स्थल में भी दिवा भोजन नहीं करने वाले देवदत्त का पीनत्व रात्रि भोजन के विना अनुपपन्न है इत्याकारक अनुपपत्ति ज्ञान रूप अर्थापत्ति प्रमाण से देवदत्त में रात्रि भोजन कर्तृत्व की कल्पना की जाती है। परन्तु यह देवदत्तमें रात्रि भोजन कर्तृत्व का ज्ञान अनुमान प्रमाण से ही सिद्ध हो जायगा।

जैसे पीनत्व मे भोजन कर्तृत्व व्याप्यत्व का निश्चय होने पर पीनत्व हेतु से भोजन कर्तृत्व की सिद्धि होने पर दिन में भोजन कर्तृत्व के अभाव का निश्चय प्रत्यक्ष प्रमाण से रहनेके कारण अनुमिति में रात्रि भोजन कर्तृत्व का भान होता है। जैसे "देवदत्तो रात्रि भोजी दिवाऽभुंजानत्वेसति पीनत्वात् इत्यादि। इस प्रकार जब अनुमान से ही अर्थापत्ति का प्रयोजन सिद्ध हो जाता है तब उस का प्रमाणान्तर मानना व्यर्थ है। (५) विशेषणता सन्निकर्ष से अभाव का प्रत्यक्ष होता है ऐसा अनुभव होने के कारण अभाव ज्ञान का जनक अनुपलब्धि भी एक अतिरिक्त प्रमाण नहीं है।

(६) किंचानुपलम्भस्याज्ञातस्य हेतुत्वे ज्ञानाकरणकत्वात्प्रत्यक्षत्वम्। (७) ज्ञातस्य हेतुत्वे तु तत्राप्यनुपलम्भान्तरापेक्षेत्यनवस्था।

(६) एवं अनुपलब्धि को प्रमाणान्तर मानने पर एक और भी दोष लगेगा वह यह है कि अनुपलम्भ यदि अज्ञात होकर अभाव ज्ञान का जनक हो तो अभाव ज्ञान को ज्ञाना करणक ज्ञान रूप होनेके कारण उस में प्रत्यक्षत्वापत्ति हो जायगी क्योंकि ज्ञाना करणक ज्ञान प्रत्यक्षात्मक ही होता है। (७) यदि ज्ञात होकर अनुपलम्भ अभाव ज्ञान का जनक हो तो उपलम्भा भाव रूप अनुपलम्भ के ज्ञानार्थ उपलम्भ रूप प्रतियोगी की अनुपलब्धि कारण होगी। इस प्रकार अनवस्था हो जायगी।

(८) एवं चेष्टापि न प्रमाणान्तरं तस्याः संकेतग्राहक शब्दस्मारकत्वेन लिप्यादिसमशीलत्वाच्छब्द एवान्तर्भावात्। (९) यत्र च व्याप्त्यादि ग्रहस्तत्रानुमितिरेवेति।

(८) इसी प्रकार चेष्टा भी प्रमाणान्तर नहीं है। क्योंकि 'चेष्टा को संकेत ग्राहक शब्द के स्मारक होने के कारण संकेत ग्राहक शब्द के स्मारक लिप्यादि से होने वाले बोध को शाब्द बोध में अन्तर्भूत होने के कारण जैसे लिप्यादि प्रमाणान्तर नहीं है वैसे चेष्टा भी प्रमाणान्तर नहीं है किन्तु शब्द प्रमाण ही मे अन्तर्भूत है। (९) यदि चेष्टा स्थल मे व्याप्ति ज्ञान हो ही कर बोध हो तो तादृश बोध को अनुमिति रूप होने के कारण अनुमानान्तर्गत ही चेष्टा हो जायगी। अतः चेष्टा भी प्रमाणान्तर नहीं है।

सुखं निरूपयति = सुख का निरूपण करते हैं।

का० १४५ पूर्वा०।

सुखं तु जगतामेव काम्यं धर्मेण जायते।

का० अर्थ ।

सकल प्राणियों की इच्छा का विषय जो सुख वह धर्म से उत्पन्न होता है ।

(१) सुखंत्विति । काम्यमभिलाष विषयः । (२) धर्मेणेति । धर्मत्वेन सुखत्वेन कार्यकारणभाव इत्यर्थः ।

(१) स्पष्ट है । (२) सुख रूप कार्य के प्रति धर्म निमित्त कारण हैं ।

दुःखं निरूपयति = दुःख का निरूपण करते हैं ।

का० १४५ उत्त० ।

अधर्मजन्यं दुःखं स्यात्प्रतिकूल सचेतसाम् ॥

का० अर्थ ।

सकल प्राणियों के द्वेष का विषय जो दुःख वह अधर्म से उत्पन्न होता है ।

(१) अधर्मेति । अधर्मत्वेन दुःखत्वेन कार्यकारणभाव इत्यर्थः । (२) प्रतिकूलमिति । दुःखत्वज्ञानादेव सर्वेषां स्वाभाविकद्वेषविषय इत्यर्थः ।

(१) दुःख रूप कार्य के प्रति अधर्म निमित्त कारण है । (२) दुःख दुःखत्व ज्ञान मात्र से प्राणी मात्र के स्वाभाविक अर्थात् द्वेषानधीन द्वेष का विषय होता है ।

इच्छां निरूपयति = इच्छा का निरूपण करते हैं ।

का० १४६

निर्दुःखत्वे सुखे चेच्छा तज्ज्ञानादेव जायते ।
इच्छातु तदुपाये स्यादिष्टोपायत्व धीर्यदि ॥

का० अर्थ ।

दुःखाभाव की इच्छा में दुःखाभाव ज्ञान और सुख की इच्छा में सुखज्ञान कारण है। दुःखाभाव और सुख के साधन में इष्ट साधनता ज्ञान रहने से उस साधन की इच्छाहोती है।

(१) निर्दुःखत्व इति । इच्छा द्विविधा फलविषयिणी उपायविषयिणी च । (२) फलं तु सुखं दुःखाभावश्च । (३) तत्र फलेच्छां प्रति फलज्ञानं कारणम् । (४) अतएव पुरुषार्थः संभवति । (५) यज्ज्ञाते सत्स्ववृत्तितयेष्यते स पुरुषार्थ इति तल्लक्षणात् । इतरेच्छानधीनेच्छाविषयत्वं फलितोऽर्थः । (६) उपायेच्छां प्रतीष्टसाधनताज्ञानं कारणम् ।

(१) फलेच्छा और उपायेच्छा के भेद से इच्छा दो प्रकार की होती है। (२) सुख और दुःखाभाव फल कहलाता है। (३) फलेच्छा के प्रति फल ज्ञान कारण है। (४) इसी लिये सुख और दुःखाभाव दोनों परुषार्थ हो सकते हैं। (५) क्योंकि जिस के ज्ञान मात्र से सभी को उस की प्राप्ति की इच्छा हो अर्थात् जो इतरेच्छानधीन इच्छा का विषय हो वह पुरुषार्थ (स्वतः पुरुषार्थ) कहा जाता है। (६) उपायेच्छा के प्रति इष्ट साधनता का ज्ञान कारण है।

का० १४७।

चिकार्षा कृतिसाध्यत्वप्रकारेच्छा च या भवेत् ।
तद्धेतुः कृतिसाध्येष्टसाधनत्वमतिर्भवेत् ॥

का० अर्थ।

कृति साध्यत्व प्रकारक इच्छा को चिकीर्षा कहा जाता है। कृति साध्यता का ज्ञान और इष्ट साधनता का ज्ञान उस (चिकीर्षा) का कारण है।

(१) चिकीर्षेति। कृतिसाध्यत्वप्रकारिका कृतिसाध्य विषयिणीच्छा चिकीर्षा पाकं कृत्या साधयामीति तदनुभवात्। (२) चिकीर्षां प्रति कृति साध्यताज्ञान मिष्टसाधनताज्ञानं च कारणम् (३) तद्धेतुरिति। अतएव वृष्ट्यादौ कृतिसाध्यताज्ञानाभावान्न चिकीर्षा।

(१) कृति साध्यत्व प्रकारक जो कृतिसाध्य विषयक इच्छा वह चिकीर्षा कहलाती है। "पाकं कृत्या साधयामि" अर्थात् अपने यत्न से पाक का सम्पादन मैं करूं। इत्याकारक प्रतीति चिकीर्षा को विषय करती है। (२) चिकीर्षा के प्रति "इदंमत्कृति साध्यम्" और "इदम्मदिष्ट साधनम्" इत्याकारक कृति साध्यता ज्ञान और इष्टसाधनता ज्ञान कारण है। (३) यतः कृतिसाध्यता ज्ञान चिकीर्षा के प्रति कारण है अतः वृष्टि में कृति-साध्यता ज्ञान रूप कारण का अभाव रहने के कारण चिकीर्षा नहीं होती।

का० १४८ पूर्वा०।

बलवद्द्विष्ट हेतुत्वमतिः स्यात्प्रतिबन्धिका ।

का० अर्थ।

चिकीर्षा के प्रति बलवद्द्विष्ट साधनता का ज्ञान प्रतिबन्धक है।

(१) बलवदिति। बलवद्द्विष्टसाधनताज्ञानं प्रतिबन्धकम्। अतो मधुविषसंपृक्तान्नभोजने न चिकीर्षा बलवद्द्वेषः प्रतिबन्धक इत्यन्ये।

(१) बलवद्द्विष्ट साधनता के ज्ञान को चिकीर्षा के प्रति प्रतिबन्धक होने के कारण मधु और विष से मिले हुए अन्न के भोजन मे कृति साध्यता ज्ञान और इष्टसाधनता ज्ञान रहने पर भी चिकीर्षा नहीं होती है। किसी का ऐसा भी मत है कि बलवद्द्विष्ट साधनता के ज्ञान से पैदा हुआ जो बलवद्द्वेष वही चिकीर्षा मे प्रतिबन्धक है।

का० १४८ उत्त०

तदहेतुत्वबुद्धेस्तु हेतुत्वं कस्यचिन्मते ॥

का० अर्थ।

एवं किसी के मत से चिकीर्षा के प्रति बलवत् अनिष्ट के अजनकत्व का ज्ञान ही कारण है।

(१) तदहेतुत्वेति। बलवदनिष्टाजनकत्वज्ञानं कारण मित्यर्थः।

(१) इस का अर्थ कारिकार्थ से स्पष्ट है।

द्वेषं निरूपयति = द्वेष का निरूपण करते हैं।

का० १४९ पूर्वा०।

द्विष्टसाधनताबुद्धिर्भवेद्द्वेषस्य कारणम्।

का० अर्थ।

उपाय द्वेष के प्रति बलवद्द्विष्ट साधनता ज्ञान कारण है। एवं दुःख और सुखाभाव रूप फल के द्वेष के प्रति तत्तत्फल का ज्ञान कारण है।

(१) द्विष्टसाधनतेति। दुःखोपायविषयकं द्वेषं प्रति बलवद्द्विष्टसाधनता ज्ञानं कारणमित्यर्थः। (२) बलवदिष्टसाधनता ज्ञानं प्रतिबन्धकम्। तेन नान्तरीयक दुःखजनके पाकादौ न द्वेषः।

(१) कारिकार्थ से स्पष्ट है। (२) एवं उपाय विषयक द्वेष के प्रति बलवत् इष्ट साधनताका ज्ञान प्रतिबन्धक है अतः पाक जनक जिस दुःख के विना पाक नहीं हो सकता है तादृश दुःख के जनक पाक में द्विष्टसाधनता का ज्ञान रूप द्वेष का कारण रहने पर भी भोजन रूप बलवत् इष्ट के प्रति साधनता का ज्ञान रूप प्रतिबन्धक रहने के कारण पाक मे द्वेष नहीं होता है।

प्रयत्नं निरूपयति = प्रयत्न का निरूपण करते हैं

का० १४९, १५० पूर्वा०।

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च तथा जीवन कारणम् ॥
एवं प्रयत्नत्रैविध्यं तान्त्रिकैः परिकीर्तितम्।

का० अर्थ ।

प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवन योनि भेद से प्रयत्न तीन प्रकार का होता है। ऐसा पण्डितों ने कहा है।

(१) प्रवृत्तिश्चेति । प्रवृत्ति-निवृत्ति-जीवनयोनि यत्न भेदात्प्रयत्नस्त्रिविध इत्यर्थः ।

(१) इस का अर्थ कारिकार्थ ही से स्पष्ट है।

का० १५०, १५१ पूर्वा० ।

चिकीर्षा कृतिसाध्येष्टसाधनत्वमतिस्तथा ॥
उपादानस्य चाध्यक्षं प्रवृत्तौ जनकं भवेत् ।

का० अर्थ ।

चिकीर्षा, कृतिसाध्यताज्ञान, इष्टसाधनताज्ञान और प्रवृत्ति का साध्य जो पदार्थ उस के समवायि कारण का प्रत्यक्ष ये प्रवृत्ति के कारण हैं।

(१) चिकीर्षेत्यादि । मधुविषसंपृक्तान्न भोजनादौ बलवदनिष्टानुबन्धित्वेन चिकीर्षाभावान्न प्रवृत्तिरिति भावः । (२) कृतिसाध्यताज्ञानादिवद्बलवदनिष्टाननुबन्धित्वज्ञानमपि स्वतन्त्रान्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रवृत्तौ कारणमित्यपि वदन्ति । (३) कार्यताज्ञानं प्रवर्तकमिति गुरवः ।

(१) मधु और विष से मिले हुये अन्न के भोजन में बलवदनिष्टाननुबन्धित्व का ज्ञान अर्थात् महदनिष्टा प्रयोजकत्व का ज्ञान नहीं रहनेके कारण प्रवृत्ति कारणीभूत चिकीर्षा नहीं होती है इस लिये उस में प्रवृत्ति नहीं होती है। (२) किसी का मत है कि प्रवृत्ति के प्रति स्वतन्त्र अन्वय व्यतिरेक रहने के कारण कृति साध्यता ज्ञानादि जैसे स्वतन्त्र कारण हैं वैसे बलवदनिष्टाननुबन्धित्व ज्ञान को भी प्रवृत्ति के प्रति स्वतन्त्र अन्वय व्यतिरेक रहने के कारण प्रवृति में बलवदनिष्टा ननुबन्धित्व ज्ञान भी स्वतन्त्र कारण है। (३) गुरु प्रभाकर का मत है कि कार्यता का ज्ञान (कृति साध्यता ज्ञान) प्रवृति में कारण है।

(४) तथाहि—ज्ञानस्य प्रवृत्तौ जननीयायां चिकीर्षातिरिक्तं नापेक्षितमस्ति । (५) सा च कृतिसाध्यताज्ञानसाध्या, इच्छायाः स्वप्रकारप्रकारकधीसाध्यत्वनियमात् । चिकीर्षा हि कृतिसाध्यत्वप्रकारिकेच्छा । तत्र कृतिसाध्यत्वं प्रकार स्तत्प्रकारकज्ञानं चिकीर्षायां तद्द्वारा च प्रवृत्तौ हेतुः ।

(४) अर्थात् कृति साध्यता ज्ञान स्वजन्य प्रवृत्ति में चिकीर्षा से अतिरिक्त (इष्ट साधनता ज्ञानादि रूप) किसी की अपेक्षा नहीं करता है। (५) नियम है कि इच्छा समान प्रकारक ज्ञान से जन्य होती है इस लिये चिकीर्षा को कृति साध्यत्व प्रकारक इच्छा रूप होने के कारण चिकीर्षा में कृति साध्यत्व प्रकारक ज्ञान कारण है एवं चिकीर्षा द्वारा प्रवृत्ति में भी कृति साध्यत्व प्रकारक ज्ञान कारण है।

(६) नत्विष्ट साधनता ज्ञानं तत्र हेतुः। कृत्यसाध्येऽपि चन्द्रमण्डलानयनादौ प्रवृत्त्यापत्तेः। (७) ननु कृत्यसाध्यताज्ञानं प्रतिबन्धक मिति चेन्न तदभावापेक्षया कृतिसाध्यताज्ञानस्य लघुत्वात्।

(६) किन्तु इष्ट साधनता ज्ञान प्रवृत्ति में कारण नहीं है। यदि ऐसा हो तो कृत्य साध्य चंद्रमण्डलानयन में भी इष्ट साधनता ज्ञान रहने के कारण प्रवृत्त्यापत्ति हो जायगी। (७) शङ्का—प्रवृत्ति के प्रति कृत्य साध्यता ज्ञान को प्रतिबन्धक मानते हैं अतः कृत्यसाध्यताज्ञान चन्द्रमण्डलानयन में रहने के कारण प्रवृत्ति की आपत्ति नहीं होगी। समा० प्रवृत्ति के प्रति कृत्यसाध्यता ज्ञान प्रतिबन्धक हो तो प्रतिबन्धकाभाव को कारण रूप होने के हेतु कृत्यसाध्यता ज्ञानाभाव को कारणता माननी होगी। तदपेक्षया लाघवात् कृति साध्यता ज्ञान ही को प्रवृत्ति के प्रति कारणत्व मानना युक्त है।

(८)नच द्वयोरपि हेतुत्वं, गौरवात्।

(८) प्रवृत्ति के प्रति कृतिसाध्यता ज्ञान और इष्ट साधनता ज्ञान दोनो कारण नहीं हैं क्योंकि जब कृतिसाध्यता ज्ञान ही को कारणता मानने से निर्वाह हो जाता है तब कृति-साध्यता ज्ञान एवं इष्ट साधनता ज्ञान दोनों ज्ञानों को प्रवृत्ति के प्रति कारणता मानने से गौरव है।

(९) ननु त्वन्मतेऽपि मधुविषसंपृक्तान्नभोजने चैत्यवन्दने च प्रवृत्त्यापत्तिः कार्यताज्ञानस्य सत्त्वादिति चेन्न। (१०) स्वविशेषणवत्ताप्रतिसंधान-जन्यकार्यताज्ञानस्य प्रवर्तकत्वात्। (११) काम्ये हि यागपाकादौ कामना स्वविशेषणम्। (१२) ततश्च बलवदनिष्टाननुबन्धि काम्यसाधनताज्ञानेन कार्यताज्ञानम्। ततः प्रवृत्तिः।

(९) (नैयायिक की शङ्का) प्रवृत्ति के प्रति यदि कृतिसाध्यता ज्ञान ही को कारणता मानी जाय तो मधुविषसंपृक्तान्न भोजन में और बौद्ध के देवता विशेष रूप चैत्य के वन्दन में कृति साध्यता ज्ञान रहनेके कारण प्रवृत्तिकी आपत्ति होजायगी। (१०) (मीमांसक का समा०) प्रवृत्ति के प्रति सामान्यतः कृतिसाध्यता ज्ञान कारण नहीं है किन्तु स्वविशेषण

वत्ता ज्ञानजन्य कार्यता ज्ञान ही को कारणता मानते हैं यहां " स्व " पद का अर्थ प्रवृत्त्याश्रय पुरुषहै। (११)पाक यागादिरूप सकामकार्य विषयक प्रवृत्तिस्थल में स्वविशेषण शब्दसे कामना लेनी चाहिये। एवं कामना रूप"स्वविशेषणवत्ता" स्वविषयसाधनत्ववत्ता सम्बन्ध से विवक्षित है। वह इस सम्बन्ध से इष्ट साधन पदार्थ मात्र में रहती है इसकारण इष्ट साधनता रूप हो सकतीहै। और इष्ट साधनता कार्यतानुमापक वक्ष्यमाण हेतुका घटकहै इसलिये इष्ट साधनता ज्ञान रूप स्वविशेषणवत्ता ज्ञान को हेतु ज्ञान विधया कृतिसाध्यत्वानुमिति रूप ज्ञानमें कारणत्व समझना चाहिये। (१२) अतः काम्य पाक यागादि स्थलमें "मत्कृतिं विना असत्त्वे सति बलवदनिष्टा ननुबन्धित्व विशिष्ट मदिष्ट साधनत्व ज्ञान रूप जो स्वविशेषणवत्ता ज्ञान तादृश ज्ञानजन्य जो पाकादि विशेष्यक कृति साध्यत्वानुमिति अर्थात् " पाकोमत्कृति साध्यः मत्कृतिम्विना असत्त्वे सति बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्ट मदिष्टसाधनत्वात् " इत्याकारक अनुमिति रूप कार्यता ज्ञान वही काम्यस्थलीय प्रवृत्ति के प्रति कारण है। अतः मधु विष संपृक्तान्न भोजन और चैत्यवन्दन में बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्ट इष्ट साधनत्व नहीं रहने के कारण तादृश कार्यता ज्ञान नहीं होता है अतः प्रवृत्त्यापत्ति नहीं होगी।

(१३) तृप्तश्च भोजने न प्रवर्तते तदानीं कामनायाः पुरुष विशेषणत्वा भावात्। (१४) नित्ये च शौचादिकं पुरुष विशेषणम्। (१५) तेन शौचादिज्ञानाधीन कृतिसाध्यताज्ञानात्तत्र प्रवृत्तिः।

(१३) भोजन से तृप्त व्यक्ति को तत्काल में भोजनजन्य तृप्ति की इच्छा नहीं रहने के कारण भोजन में इष्टसाधनता ज्ञान नहीं होता है। अतः " मत्कृतिम्विना असत्त्वे सति बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्ट मदिष्ट साधनत्व ज्ञानजन्य कृतिसाध्यता ज्ञान भोजन में नहीं है अतः तत्काल में भोजन विषयक प्रवृत्ति नहीं होती है। (१४) एवं नित्य कर्मस्थल में "स्वविशेषणवत्ता प्रतिसन्धान " घटक स्वविशेषण शब्द से शौच एवं आदि पद ग्राह्य विहित काल जीवित्वादि रूप अर्थ लिये जाते हैं। तादृश स्वविशेषणवत्त्व स्वरूप सम्बन्धसे विवक्षित है। (१५) अतः शौचादि रूप पुरुष विशेषणवत्ता ज्ञानजन्य जो सन्ध्यावन्दनादि विशेष्यक अनुमिति रूप कृति साध्यता ज्ञान वह सन्ध्या वन्दनादि नित्यकर्म विषयक प्रवृत्तिका कारण है। सन्ध्या वन्दनादि विशेष्यक तादृश कृति साध्यतानुमिति इस प्रकार होती है। यथा - " अह मिदानीं कृति साध्य सन्ध्यावन्दनः विहित काल जीवित्वे सति शौचादि मत्त्वात् " अर्थात् सन्ध्या वन्दनोचित काल में जीते हुए और शौचादि मान् मुझसे सन्ध्या वन्दन करने योग्य है।

(१६) ननु तदपेक्षया लाघवेन बलवदनिष्टाननुबन्धीष्टसाधनता-विषयककार्यताज्ञानत्वेनैव हेतुत्वमस्तु बलवदनिष्टाननुबन्धित्वं चेष्टोत्पत्ति-

नान्तरीयक दुःखाधिक दुःखाजनकत्वं बलवद्द्वेषविषय दुःखाजनकत्वं वेति चेन्न । (१७) इष्टसाधनत्व कृतिसाध्यत्व योर्युग पज्ज्ञातुमशक्यत्वात्साध्यत्व साधनत्वयोर्विरोधात् । (१८) असिद्धस्य हि साध्यत्वं सिद्धस्य च साधनत्वम् । (१९) न चैकमेकेनैकदा सिद्धमसिद्धं चेति ज्ञायते तस्मात्कालभेदादुभयं ज्ञायत इति ।

(१६) नैया० शङ्का०—बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्ट इष्टसाधनता ज्ञानजन्य कार्यता ज्ञानापेक्षया बलवदनिष्टा ननुबन्धित्व विशिष्ट इष्ट साधनता विषयक कार्यता ज्ञान ही को " जन्यत्व और ज्ञानत्व " से अघटित होने के कारण लाघवात् प्रवृत्ति के प्रति कारणत्व मानना उचित है । बलवदनिष्टा ननुबन्धित्व विशिष्ट शब्द का इष्टोत्पत्ति नान्तरीयक दुःखाधिक दुःखाजनकत्व अर्थात् जितने दुःख के बिना इष्टोपत्ति नहीं हो सकती है । तावत् दुःखसे अधिक दुःख का अजनकत्व अथवा बलबद्द्वेष विषय दुःख का अजनकत्व अर्थ है (१७-१९) समा० जब तक कार्य की सिद्धि अर्थात् उत्पत्ति नहीं होती है तब तक उस काय में कृति साध्यता रहती है और कार्य की उत्पत्ति के बाद उसमें इष्ट साधनत्व होता है इससे यह सिद्ध हुआ कि कृति साध्यत्व और इष्ट साधनत्व इन दोनों में कालिक परस्पर विरोध है । अतः एक काल में एक वस्तु को सिद्ध (उत्पन्न) और असिद्ध (अनुत्पन्न) करके एक आदमी नहीं समझता है इसलिये एक वस्तु में एक कालावच्छेदेन इष्टसाधनत्व औरकृत साध्यत्व का ज्ञान एक आदमी को होना असम्भव है । अर्थात् विभिन्न काल ही में हो सकता है । इसलिये बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्ट इष्ट साधनता विषयक कार्यता (कृतिसाध्यता) ज्ञान को नैयायिक कारण नहीं मानसकते हैं ।

(२०) मैवम् । लाघवेन बलवदनिष्टाननुबन्धीष्ट साधनत्वे सति कृति साध्यताज्ञानस्य हेतुत्वात । (२१) नच साध्यत्व साधनत्वयोर्विरोधो यदा कदाचित्साध्यत्वसाधनत्वयोरविरोधादेकदा साध्यत्वसाधनत्वयोश्च ज्ञानात् ।

(२०, २१) (नैया० खण्डन) काम्य, नित्यादि, स्थलीय प्रवृत्ति सामान्य के प्रति बलवदनिष्टाननुबन्धित्व, विशिष्ट इष्ट साधनता विषयक कृतिसाध्यता ज्ञान ही लाघवात् कारण है । इष्ट साधनत्व कृति साध्यत्व इन दोनों में परस्पर कालिक विरोध रहने पर भी काल के भेद से एक वस्तु में इष्टसाधनत्व कृतिसाध्यत्व रह सकता है । इसलिये एक वस्तु में एक कालीन इष्टसाधनत्व, कृतिसाध्यत्व का ज्ञान नहीं होने पर भी सामान्यतः इष्टसाधनत्व कृतिसाध्यत्व का ज्ञान हो सकता है ।

(२२) नव्यास्तु ममेदं कृतिसाध्यमिति ज्ञानं न प्रवर्तक मनागते तस्य ज्ञातुमशक्यत्वात् । (२३) किंतु यादृशस्य पुंसः कृतिसाध्यं यद्दृष्टं तादृशत्वं स्वस्य प्रतिसंधाय तत्र प्रवर्तते । (२४) तेनौदन कामस्य तत्साधनता ज्ञानवत स्तदुपकरणवतः पाकः कृतिसाध्य स्तादृशश्चाहमिति प्रतिसंधाय पाके प्रवर्तत इत्याहुः । (२५) तन्न । स्वकल्पित लिप्यादिप्रवृत्तौ यौवने कामोद्रेकादिना संभोगादौ च तदभावात् ।

(२२) प्रभाकर मतानुयायि मीमांसक विशेष का मत है कि "ममेदं कृतिसाध्यम्" इत्याकारक ज्ञान प्रवृत्ति का कारण नहीं है। क्योंकि अनागतावस्था में "इदम्" पदार्थ का प्रत्यक्ष नहीं होने के कारण तादृश ज्ञान नहीं हो सकता है। (२३) किन्तु यादृश पुरुष के प्रयत्न से यादृश कार्य को सिद्ध होते हुए जिस पुरुष ने देखा है वह पुरुष अपने को तादृश पुरुष के समान समझकर तादृश कार्य में प्रवृत्त होता है। (२४) अतः ओदन की इच्छा करने वाले पाक धर्मिक कृतिसाध्यता ज्ञान वाले और पाकोपकरण वाले व्यक्ति की कृति का साध्य पाक होता है। मैं भी तादृश अर्थात् ओदन की इच्छा करने वाला पाक में धर्मिक कृति साध्यता ज्ञान वाला और पाकोपकरण वाला हूँ। ऐसा समझकर पाक में प्रवृत्त होता है। (२५) मीमांसक का यह मत ठीक नहीं है। क्योंकि स्वकल्पित विजातीयाक्षर में और प्रारम्भिक युवावस्था पन्न पुरुषों की कामातुरता जन्य सम्भोग विशेष में तादृश ज्ञान नहीं रहने के कारण स्वकल्पित विजातीयाक्षर एवं प्रारम्भिक युवावस्थापन्न पुरुषों की कामातुरता जन्य सम्भोग विशेष में उन पुरुषों की जो प्रवृत्ति होती है वह अब इस मत के अनुसार नहीं हो सकेगी।

(२६) इदं तु बोध्यम् । इदानींतनेष्टसाधनत्वादि ज्ञानं प्रवर्तकं तेन भावियौवराज्ये बालस्य न प्रवृत्तिः, तदानीं कृतिसाध्यत्वाज्ञानात् ।

(२६) ऐसा समझना चाहिये कि नैयायिक के मत से प्रवृत्ति के प्रति जो बलवदनिष्टाननुबन्धित्व इष्ट साधनत्व और कृति साध्यत्व के ज्ञान को कारण कहा गया है। वह तत्कालीन प्रवृत्ति के प्रति तत्कालीन बलवदनिष्टाननुबन्धित्वादि ज्ञान कारण है। अतः राजपुत्र को भावि यौवराज्य में तत्कालीन कृति साध्यता ज्ञान नहीं रहने के कारण तत्काल में प्रवृत्ति नहीं होती है।

(२७) एवं तृप्तस्य भोजने नप्रवर्तते तदानीमिष्टसाधनत्वा ज्ञानात् । (२८) प्रवर्तते च रोगदूषितचित्तो विषादिभक्षणे तदानीं बलवदनिष्टानुबन्धित्वाज्ञानात् ।

(२७) एवं भोजन से तृप्त पुरुषों को भोजन में तत्कालीन इष्ट साधनता ज्ञान नहीं रहने के कारण तत्कालीन भोजन में प्रवृत्ति नहीं होती है। (२८) रोगादि जन्य आत्यन्तिक दुःख से दुःखित चित्त वाले पुरुष को विषादि भक्षण में तत्कालीन बलवदनिष्टाननुबन्धित्व ज्ञान रहने के कारण तत्काल में प्रवृत्ति होती है।

(२९) न चास्तिकस्यागम्यागमन शत्रुवधादि प्रवृत्तौ कथं बलवदनिष्टाननुबन्धित्व बुद्धि र्नरकसाधनत्वज्ञानादिति वाच्यम्, उत्कृष्ट रागादिना नरक साधनता धीतिरोधानात्। (३०) वृष्ट्यादौ तु कृतिसाध्यताज्ञानाभावान्न चिकीर्षाप्रवृत्ती किं त्विष्ट साधनता ज्ञानादिच्छामात्रम्। (३१) कृतिश्च प्रवृत्तिरूपा बोध्या। (३२) तेन जीवनयोनियत्नसाध्ये प्राणपञ्चकसंचारे न प्रवृत्तिः। (३३) इत्थं च प्रवर्तकत्वानुरोधाद्विधे रपीष्टसाधनत्वादिकमेवार्थः।

(२९) शङ्का—अगम्या गमन एवं शत्रु वधादि रूप नरक प्रयोजक कर्मों में आस्तिकों को भी क्वचित् प्रवृत्ति होती है। वह बलवदनिष्टाननुबन्धित्व ज्ञान नहीं रहने के कारण कैसे होगी? समा०—उत्कट राग होने से नरक साधनता का ज्ञान तिरोहित हो जाता है इस कारण बलवदनिष्टाननुबन्धित्व का ज्ञान होकर प्रवृत्ति हो सकती है। (३०) वृष्ट्यादिमें कृतिसाध्यता ज्ञान नहीं रहने के कारण तद्विषयक चिकीर्षा और प्रवृत्ति नहीं होती है। किन्तु इष्ट साधनता ज्ञान रहने के कारण वृष्ट्यादि विषयक इच्छा मात्र होती है। (३१,३२) कृति साध्यता ज्ञान घटक कृति पद का प्रवृत्ति अर्थ है अन्यथा जीवनयोनि यत्न साध्य प्राण पंचक संचार में कृतिसाध्यता ज्ञान रह जाने के कारण प्रवृत्त्यापत्ति हो जायगी। (३३) पूर्वोक्त लाघवानुरोध से बलवदनिष्टाननुबन्धित्व ज्ञान इष्टसाधनता ज्ञान और कृति साध्यता ज्ञान इन तीन ही को प्रवृत्ति के प्रति कारणत्व मानने के वजह "यजेत" इत्यादि विधि वाक्यस्थलों में भी प्रवृत्त्यर्थ बलवदनिष्टाननुबन्धित्वादि त्रितय लिङ्, लोट्, तव्यत्, अनीयर् इत्यादि विधि प्रत्ययों का अर्थ माना जाता है।

(३४) इत्थं च 'विश्वजिता यजेत' इत्यादौ यत्र फलं न श्रूयते तत्रापि स्वर्गः फलं कल्प्यते।

(३४) बलवद्दनिष्टा ननु यन्धित्वादि त्रय को विध्यर्थ मानने के कारण ''विश्वजिता यजेत '' इत्यादि विधिवाक्य स्थलों मे जहां फल का श्रवण नहीं है वहां भी स्वर्ग रूप इष्ट फल की कल्पना की जाती है उसी की साधनताके ज्ञान से उक्त यज्ञ में प्रवृत्ति होती है।

(३५) ननु 'अहरहः संध्यामुपासीत' इत्यादा विष्टानुत्पत्तेः प्रवृत्तिः कथम्, (३६) न चार्थवादिकं ब्रह्मलोकादि प्रत्यवाया भावो वा फलमिति वाच्यं, तथा सति काम्यत्वेन नित्यत्वहान्यापत्तेः। कामनाभावे चाकरणापत्तेः (३७) इत्थंच यत्र फलश्रुतिस्तत्रार्थ वादमात्रमिति चेन्न।

(३५) (मीमांसक की शङ्का) ' 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत ' इस विधि वाक्यबोधित सन्ध्योपासन रूप नित्यकर्म से किसी फल विशेष की उत्पत्ति नहीं होने पर भी उस में प्रवृत्ति होती है। अतः इष्ट साधनताज्ञान में प्रवृत्ति कारणत्व मानना युक्त नहीं है तब प्रवर्तक ज्ञान विषय ही को विध्यर्थ होने के कारण इष्टसाधनत्व को जो विधि प्रत्ययार्थ माना जाता है वह कैसे होगा। (३६) यहां ऐसा कहा जा सकता है कि " सन्ध्यामुपासते येतु सततं संशित व्रताः, विधूत पापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् " इत्यादि अर्थ वाद वाक्य से सिद्ध पाप नाश पूर्वक ब्रह्मलोक प्राप्ति रूप ही सन्ध्योपासन का फल है अतः उस फल की साधनता के ज्ञान ही से प्रवृत्ति होगी। एवं इष्ट साधनत्व विधि प्रत्ययार्थ भी होगा परन्तु यह कैसे होगा। क्योंकि कर्मनिष्ठ नित्यत्व और काम्यत्व में परस्पर विरोध रहने के कारण सन्ध्योपासन में " सफलत्वे सति विधिप्रतिपाद्यत्व " रूप काम्यत्व मानने से " निष्फलत्वे सति विधि प्रतिपाद्यत्व" रूप नित्यत्व का अभाव हो जायगा यदि आप इसे इष्ट कर तो फलकामनावत् पुरुष ही को काम्य कर्माधिकार होने के कारण जैसे-पुत्र कामना शून्य पुरुषों को पुत्रेष्टि यज्ञ नहीं करने पर भी उन को प्रत्यवाय नहीं होता है उसी प्रकार ब्रह्मलोक की कामना शून्य द्विज को सन्ध्योपासन नहीं करने पर भी प्रत्यवाय नहीं होना चाहिये। (३७) अतः सन्ध्योपासनादि रूप नित्यकर्मों में निष्फलत्व मान कर '' शौचादि '' रूप स्वविशेषणवत्ता ज्ञानजन्य कृति साध्यता ज्ञान को नित्य कर्म स्थल में प्रवृत्तिका कारण कहना होगा तब '' सन्ध्यामुपासते येतु '' इत्यादि फल बोधक स्मृति को अप्रामाण्य हो जायगा। अतः तादृश फल बोधक स्मृति को प्रशंसा बोधक अर्थ वाद रूप ही मानना उचित है पर यह भी ठीक नहीं है।

(३८) ग्रहण श्राद्धादौ नित्यत्व नैमित्तिकत्वयोरिव नित्यत्वकाम्यत्वयोरप्यविरोधात्।

(३८) क्योंकि ग्रहण निमित्तक श्राद्ध गत नित्यत्व नैमित्तिकत्व एवं भरणी नक्षत्र निमित्तक श्राद्धगत काम्यत्व नैमित्तिकत्व के समान नित्यत्व और काम्यत्व में विरोध नहीं मानते हैं तब सन्ध्योपासन रूप नित्य कर्म में काम्यत्व मानने पर भी नित्यत्वाभाव की आपत्ति नहीं हो सकती है।

(३९) नच कामनाभावेऽकरणापत्तिः, त्रिकालस्तवपाठादाविव कामनासद्भावस्यैव कल्पनात् ।

(३९) शङ्का-सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्म भी यदि काम्य हो तो फलकामनावान् पुरुष को ही काम्यकर्माधिकारी होने के कारण जिस पुरुष को फल की कामना नहीं है। वह पुरुष यदि सन्ध्योपासन नहीं करे तो उसको पापोत्पत्ति होती है वह अब नहीं होगी। समा०– "अकुर्वन् विहितं कर्म नरो भवति किल्विषी" इस वचन के साथ "शुचिकर्म-कुर्वीत" इस विधि वाक्य को एक वाक्यता करने से ज्ञात होता है कि शौचशून्य पुरुष को विहित नित्य कर्माननुष्ठानसे प्रत्यवाय नहीं होता है। एवं शौच विशिष्ट पुरुषको विहित कर्माननुष्ठान से प्रत्यवाय अवश्य होता है। तब त्रिकाल पठनीय सन्ध्योपासनाङ्ग नित्यकर्मात्मक गायत्री कवचके पाठ नहीं करने से पापोत्पाद हो जायगा। अतः गायत्री कवच पाठ में यथा "पापानुत्पाद रूप" फल की कामना अवश्य है तथा सन्ध्योपासनादि रूप नित्य कर्म में भी तत्कर्म करण प्रयुक्त पापानुत्पाद रूप इष्ट की साधनता के ज्ञान ही से नित्य कर्म में प्रवृत्ति होगी।

(४०) न तु वेदबोधितकार्यताज्ञानात्प्रवृत्तिरिति संभवति। (४१) स्वेष्टसाधनत्वमविज्ञाय तादृश कार्यताज्ञान सहस्रेणापि प्रवृत्तेरसंभवात् ।

(४०, ४१) किन्तु नित्यकर्म स्थल में शौचादि रूप स्वविशेषणवत्ता ज्ञानजन्य कार्यता ज्ञान से प्रवृत्ति होती है। यह जो मीमांसकों का कथन है वह नहीं हो सकता है। क्योंकि जब तक अपने इष्ट की साधनता का ज्ञान नहीं होगा तब तक शौचादि रूप स्वविशेषणवत्ता ज्ञानजन्य कार्यता ज्ञान सहस्र से भी प्रवृत्ति होना असम्भव है।

(४२) यदपि षण्डापूर्वं फलमिति तदपि न। कामनाभावेऽकरणापत्तेस्तौल्यात्। (४३) कामनाकल्पने त्वार्थवादिकफलमेव रात्रिसत्रन्यायात्कल्प्यताम्। (४४) अन्यथा प्रवृत्त्यनुपपत्तेः। तेनानुत्पत्ति प्रत्यवायस्यान्ये मन्यन्ते।

(४२) प्रभाकर का मत है कि नित्यकर्मजन्य "षण्ड" (नपुंसक) अर्थात् फल का अजनक अपूर्व (अदृष्ट) रूप फल होता है तादृश फल रूपइष्ट साधनता के ज्ञान ही से नित्यकर्म में प्रवृत्ति होती है। यह भी ठीक नहीं है क्योंकि षण्डापूर्व रूप फल से इष्ट सिद्धि

नहीं होने के कारण तादृश फल की इच्छा प्रायशः किसी को नहीं होगी। अतः उस की कामना से शून्य पुरुष को सन्ध्यावन्दनादि रूप नित्य कर्म नहीं करने पर पापोत्पत्ति होती है वह नहीं होगी। (४३) रात्रि सत्र नामक यज्ञ का विधि वाक्य में फल श्रवण नहीं है। तथापि विश्वजित् यज्ञ के समान स्वर्ग फल की कल्पना नहीं हो सकती है क्योंकि जहां पर विधि वाक्य में अथवा अर्थवाद वाक्य में कहीं भी फल का श्रवण नहीं रहता है। वहीं अश्रुत स्वर्गादि रूप फल की कल्पना की जाती है। क्योंकि नियम है कि जहां श्रुत फल की सम्भावना नहीं हो वहीं अश्रुत फल की कल्पना होती है। विश्वजित् यज्ञ का तो अर्थवाद वाक्य में भी फल का श्रवण नहीं है। अतः अश्रुत स्वर्ग रूप फल की कल्पना की जाती है। किन्तु रात्रि सत्र यज्ञ का तो अर्थवाद वाक्य में प्रतिष्ठा रूप फल का श्रवण है। अतः अश्रुत स्वर्ग रूप फल की कल्पना जैसे नहीं की जाती है वैसे सन्ध्यावन्दनादि रूप नित्य कर्म के प्रत्यवाया भावादि रूप फल का अर्थवाद वाक्य में श्रवण रहने के कारण अश्रुत पापक्षयापूर्वात्मक फल की कल्पना उचित नहीं है। (४४) यदि सन्ध्यावन्दनादि रूप नित्य कर्म का कुछ भी फल नहीं माना जाय तो उन कर्मों में शिष्टों की प्रवृत्ति नहीं होगी अतः नवीन विद्वान् अर्थवाद वाक्यान्तर से सिद्ध प्रत्यवायानुत्पत्ति ही को सन्ध्या वन्दनादि रूप नित्यकर्मों का फल मानते हैं।

(४५) एवम्- ' सन्ध्यामुपासते ये तु सततं शंशितव्रताः। विधूतपापास्तेयान्ति ब्रह्मलोक मनामयम्। (४६) एवम् " दद्यादहरहः श्राद्धं पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ' इति प्रीत्यात्मकमेव फलमस्तु।

(४५) एवं प्राचीन का मत है कि सन्ध्या वन्दन रूप नित्यकर्म का पाप निवृत्ति पूर्वक ब्रह्मलोक प्राप्ति ही फल है जो "सन्ध्या मुपासते" इत्यादि अर्थवाद वाक्य से भी सिद्ध होता है। (४६) एवं " दद्यादहरहः श्राद्धम् " इत्यादि अर्थवाद वाक्य सिद्ध पितृ-प्रीति नित्यकर्मात्मक पितृश्राद्ध का फल है।

(४७) नच पितृप्रीतिः कथं फलं व्यधिकरणत्वादिति वाच्यं, गया श्राद्धादाविवोद्देश्यत्व संवन्धेनैव फलजनकत्वस्य कचित्कल्पनात्। (४८) अत एवोक्तं शास्त्रदर्शितफलं मनुष्ठानकर्तरीत्युत्सर्ग इति।

(४७) शंका—यदि आप कहें कि क्रियात्मक श्रद्धाधिकरण श्राद्धकर्त्ता में पितृ प्रीति नहीं रहने के कारण श्राद्ध का फल पितृ प्रीति कैसे होगी? समा०—ऐसा नहीं कह सकते हैं। क्योंकि उद्देश्यता सम्बन्ध से गया श्राद्ध जैसे-पितृनिष्ठ स्वर्ग प्राप्ति रूप फल का कारण होता है वैसे उद्देश्यता सम्बन्ध से साधारण श्राद्ध भी पितृ प्रीति रूप फल का कारण है। अतः समवायेनपितृ प्रीतिरूप कार्यको उद्देश्यता सम्बन्धसे श्राद्धात्मक कारणके साथ पितृ

रूप एक देश में रहने के कारण श्राद्ध का फल पितृ प्रीति हो सकती है। (४८) जिस हेतु श्राद्ध रूपक्रिया का फल श्राद्ध कर्त्ता को नहीं हो कर केवल पितृ मात्र को होता है अत: शास्त्र प्रतिपादित अनुष्ठान का फल अनुष्ठान कर्ता को होता है। यह (उत्सर्ग) सामान्य नियम है। अर्थात् बहुस्थलाभि प्रायक है किन्तु सार्वत्रिक नहीं है

(४९) पितॄणां मुक्तत्वे तु स्वस्य स्वर्गादि फलं, यावन्नित्य नैमित्तिकानुष्ठानस्य सामान्यतः स्वर्गजनकत्वात्। (५०) पराडा पूर्वार्थ-प्रवृत्तिश्च न संभवति। नहि तत् सुखदुःखाभाववत् स्वतःपुरुषार्थो न वा तत्साधनम्। (५१) प्रत्यवायानुत्पत्तौ कथं प्रवृत्तिरिति चेदित्थम्, यथा हि नित्ये कृते प्रत्यवायाभावस्तिष्ठति तदभावे तद भावः। एवं प्रत्यवाया भावसत्त्वे दुःख प्रागभावसत्त्वं तदभावे तदभाव इति योगक्षेमसाधारणकारणताया दुःखप्राग भावं प्रत्यपि सुवचत्वात्। (५२) एवमेव प्रायश्चित्तस्यापि दुःख प्रागभावहेतुत्वमिति।

(४९) जहां पर गया श्राद्ध से पूर्व ही पितर को मोक्ष हो चुका है वहां पितृनिष्ठ स्वर्ग प्राप्त्यादि रूप फल होना असम्भव है। अत: वहां श्राद्ध कर्ता निष्ठ स्वर्ग प्राप्ति ही गया श्राद्ध का फल मानते हैं। क्योंकि सकल नित्य नैमित्तिकानुष्ठान को सामान्यतः स्वर्ग जनकत्व सिद्धान्त सिद्ध है। (५०) सुख दुःखा भाव और इन दोनों के साधन इन तीन हीं पदार्थों के उद्देश्य से लोगों की प्रवृत्ति होती है किन्तु पराडा पूर्व इन तीनों में एक भी नहीं है। अतः पराडा पूर्व के उद्देश्य से किसी की प्रवृत्ति नहीं होती है। इस लिये पराडा पूर्व किसी भी कर्म का फल नहीं हो सकता है। पूर्व ग्रन्थ में पराडापूर्व रूप फल को श्रुत फल रूप नहीं होने के कारण सन्ध्या वन्दनादि रूप नित्यकर्म का पराडापूर्व फल नहीं है यह कहा गया है। और अब पराडापूर्व के उद्देश्य से किसी की प्रवृत्ति नहीं होती है अत: पराडापूर्व किसी भी कर्म का फल नहीं हो सकता है। यह कहा जाता है। इन दोनों मे प्रकार के भेद रहने के कारण पुनरुक्ति नहीं हो सकती है। (५१;५२) * शङ्का—यदि आप कहें कि पापानुत्पत्ति भी तो पराडापूर्व के समान सुख दुःखाभाव एवं इन दोनो का साधन रूप नहीं है तब पापानुत्पत्ति के लिये शिष्ट जनों की सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्मों में प्रवृत्ति क्यों होगी। समा०-

* दण्डाभावाद्घटाभावः इत्याकारक प्रतीति होने के हेतु यथा दण्डाभाव प्रयोज्य घटाभाव होता है तथा पाप प्राग भावाभावा दुःख प्रागभावाभावः इत्याकारक प्रतीति होने के हेतु पाप प्रागभावाभाव प्रयोज्य दुःख प्रागभावाभाव होता है अतः घटात्मक कार्य के अभाव प्रयोजक दण्डाभाव के प्रतियोगित्व दण्ड में रहने के कारण यथा घट के हेतु दण्ड होता है तथा दुःख प्राग भावात्मक कार्य के अभाव प्रयोजक पाप प्रागभावा भाव के प्रतियोगित्व पाप प्रागभाव में रहने के कारण पाप प्रागभाव दुःख प्राग भाव का कारण है।

जैसे नित्य कर्म करने पर प्रत्यवाय प्रागभाव रहता है और नित्यकर्म नहीं करने से प्रत्यवाय प्रागभाव का ध्वंस (पाप) होता है वैसे प्रत्यवाय प्रागभाव रहने से दुःख प्रागभाव रहता है और प्रत्यवाय प्रागभाव के ध्वंस (प्रत्यवाय) होने से दुःख प्रागभाव का ध्वंस (दुःख) होता है। इस प्रकार दुःख प्रागभाव के प्रति प्रत्यवाय प्रागभाव को एवं दुःख प्रागभाव ध्वंस के प्रति प्रत्यवाय प्रागभाव ध्वंस को प्रयोजकत्व है अतः अनादि दुःख प्रागभाव के प्रति प्रत्यवाय प्रागभाव को अन्यथा सिद्धि शून्यत्वे सति कार्योत्पत्ति प्राक्क्षणावच्छेदेन कार्य-व्यापकत्व रूप कारणत्व नहीं रहने पर भी कार्याभाव प्रयोजकीभूताभावप्रतियोगित्व रूप योगक्षेम साधारण कारणत्व है और इष्टसाधनता ज्ञान का विषय इष्टसाधनत्व भी एतादृश कारणत्व रूप ही विवक्षित है इस लिये दुःख की अनुत्पत्ति रूप इष्ट की क्षैमिक साधनता का ज्ञान प्रत्यवायानुत्पत्ति में रहने के कारण प्रत्यवायानुत्पत्त्यर्थं सन्ध्या वन्दनादि में प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार प्रायश्चित्त को भी पापनाश द्वारा परम्परया अनादि दुःख प्राग भाव के प्रति उक्त योग क्षेम साधारण कारणता है। अप्राप्त की प्राप्ति योग शब्द का एवं प्राप्त का परिरक्षण क्षेम शब्द का अर्थ समझना चाहिये।

(५३) ननु नकलञ्जं भक्षयेदित्यत्र विध्यर्थे कथं नञर्थान्वयः इष्ट साधनत्वाभावस्य कृति साध्यत्वाभावस्य च बोधयितुमशक्यत्वादिति चेन्न ।(५४) तत्र बाधादिष्टसाधनत्वं कृति साध्यत्वं च न विध्यर्थः किंतु बलवदनिष्टाननु बन्धित्व मात्रं तद भावश्च नञा बोध्यते ।(५५) अथवा बलवदनिष्टाननुबन्धित्वविशिष्टेष्ट साधनत्वे सति कृति साध्यत्वं विध्यर्थः । तदभावश्च नञा बोध्यमानो विशिष्टाभावो विशेष्यवति विशेषणाभावेविश्राम्यति,

(५३ ,५४) शङ्का —" न कलञ्जं भक्षयेत् " इस स्थल में कलञ्ज (शुष्क मांस) भक्षण को इष्ट साधन और कृति साध्य होने के कारण उक्त वाक्य से कलञ्ज भक्षण में इष्टसाधनत्वा भाव और कृति साध्यत्वाभाव की प्रतीति नहीं हो सकती है। समा०— कलञ्ज भक्षण में इष्टसाधनत्व और कृति साध्यत्व ही रहने के कारण उक्तस्थल में केवल बलवदनिष्टा ननुबन्धित्व ही विधि प्रत्ययार्थ है और इष्टसाधनत्व कृतिसाध्यत्व नहीं है, अतः बलवदनिष्टाननुबन्धित्वा भाव मात्र की नञ् घटित उक्त वाक्य से प्रतीति होती है। (५५) * अथवा बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्ट इष्टसाधनत्व विशिष्ट कृतिसाध्यत्व ही

---

* विशेष्यवत् में विशिष्टाभाव विशेषणाभाव रूप होता है यथा जल में पृथिवीत्व विशिष्ट द्रव्यत्वाभाव रूप विशिष्टाभाव द्रव्यत्व रूप विशेष्यवद्वृत्ति होने के कारण पृथिवीत्वात्मक विशेषणाभावरूप है। एवं विशेषणवत् में विशिष्टाभाव विशेष्याभाव रूप होता है यथा जल में द्रव्यत्व विशिष्ट पृथिवीत्वा भाव रूप विशिष्टाभाव द्रव्यत्व रूप विशेषणवद् वृत्ति होने के कारण पृथिवीत्वात्मक विशेष्याभाव रूप हैं। कलञ्ज भक्षण में बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्ट, इष्ट साधनत्व विशिष्ट कृति साध्यता भाव रूप विशिष्टाभाव इष्ट साधनत्व विशिष्ट कृति साध्यत्व रूप विशेष्यवद्वृत्ति होने के कारण बलवद निष्टाननुबन्धित्व रूप विशेषणा भावात्मक है।

विध्यर्थ है। नञ् घटित वाक्य से तादृश विशिष्टाभाव की प्रतीति होती है। कलञ्ज भक्षण में इष्ट साधनत्व और कृति साध्यत्व के रहने पर भी बलवदनिष्टा ननु बन्धित्व रूप विशेषणाभाव प्रयुक्त उक्त विध्यर्थाभाव रूप विशिष्टाभाव रहता है।

(५ ६) "ननुश्येनेनाभिचरन् यजेते" त्यादौ कथं बलबदनिष्टाननुबन्धित्वमर्थः, श्येनस्य मरणानुकूलव्यापारस्य हिंसात्वेन नरकसाधनत्वात्, न च वैधत्वान्न निषेध इति वाच्यम्, अभिचारे प्रायश्चित्तोपदेशात्, न च मरणानुकूलव्यापारमात्रं यदि हिंसा तदा खड्गकारस्य कूपकर्तुश्च हिंसकत्वापत्तिर्गललग्नान्न भक्षण जन्यमरणे स्वात्मवधत्वापत्तिश्चेतिवाच्यं, मरणोद्देश्यकत्वस्यापिविशेषणत्वात्, अन्योद्देश्यकक्षिप्तनाराचहतब्राह्मणस्य तु वाचनिकं प्रायश्चित्तम्' इतिचेन्न। (५ ७) श्येनवारणाया दृष्टा द्वारकत्वेन विशेषणात् (५ ८) अत एव काशीमरणार्थंकृतशिवपूजादे रपि न हिंसात्वम्।

(५६) शङ्का—शत्रुवध कामः "श्येनेनाभिचरन् यजेत" इत्याकारक विधि वाक्य से प्रतिपादित मारणात्मक अभिचार कर्म हिंसात्मक होने के कारण नरक का साधन होगा। अतः बलवदनिष्टा ननुवन्धित्व रूप विध्यर्थ को बोध कैसे होगा? यदि आप कहें कि माहिं स्यात् सर्वा भूतानि" इत्याकारक निषेध बचन वैधेतर हिंसा ही का निषेध करता है। अतः वैधहिंसा निषिद्ध नहीं होने के कारण पाप जनक नहीं होगी। तो धर्म शास्त्र में अभिचारात्मक कर्म के प्रायश्चित्त का जो प्रतिपादन किया गया है वह असंगत हो जाय गा। अतः उसको पाप जनक अवश्य मानना होगा। साक्षात् वा परम्परया मरणानुकूल व्यापार मात्र यदि हिंसा हो तो खड्ग (तलवार) बनाने वाले और धर्मार्थ कूप खुदवाने वाले पुरुषों को हिंसा हो जायगी। क्योंकि उक्त खड्ग से जिसका मरण हो गया है और उक्त कूप में जो प्राणी मर गये हैं परम्परया उनके मरण का प्रयोजक व्यापार उन दोनों में रह जायगा। एवं जिस पुरुष को भोजन समय में कण्ठ में अन्न रुक जाने के कारण मृत्यु हो गई है उस पुरुष को भी आत्म हत्या का पाप होना चाहिये। अतः मरणोद्देश्यक मरणानुकूल व्यापार ही हिंसा है। किन्तु मरणानुकूल व्यापार मात्र हिंसा नहीं है। यदि ऐसा कहें कि जहां पर केवल निशान ठीक करने के लिये बाण फेंकने पर दैव वश उसवाण से अज्ञात ब्राह्मण का वध होजाता है वहां उक्त बाण के फेकने वाले पुरुष के लिये सेतुवन्ध स्थानाधिकरणक स्नानादि रूप प्रायश्चित्त का विधान करने से यह स्थिर होता है कि उस पुरुष का उक्त व्यापार भी हिंसा है। किन्तु यदि मरणोद्देश्यक मरणानुकूल व्यपार ही हिंसा मानी जायगी तो उक्त व्यापार को मरणोद्देश्यक नहीं होने के कारण हिंसा रूपता नहीं होगी। अतः उसके लिये प्रायश्चित्त का विधान अनुचित होगा तो उसका यह उत्तर होसकता है कि "माहिंस्यात् सर्वा भूतानि" इस निषेध शास्त्र के रहते हुए भी

"ब्राह्मणं न हन्यात्" इत्याकारक निषेध शास्त्र से ज्ञात होता है कि अज्ञानतः ब्राह्मण मरणानुकूल व्यापार भी पाप का जनक है और उसी का "सेतौ च स्नान मात्रेण ब्रह्म हत्यां व्यपोहति" इत्यादि ग्रन्थ से (वाचनिक) प्रायश्चित्त का विधान है। अत एव मरणोद्देश्यक ब्राह्मण मरणानुकूल व्यापारात्मक ब्रह्म हत्या के प्रायश्चित्ताभाव प्रतिपादक तत्तत् धर्मशास्त्र ग्रन्थों का विरोध इसवाचनिक प्रायश्चित्त प्रतिपादक ग्रन्थ से नहीं होता है। अतः पर्यवसित हुआ कि मरणोद्देश्यक मरणानुकूल व्यापार ही हिंसा है। उक्त पुरुषके उक्त व्यापार को हिंसा रूप न होने पर भी कोई क्षति नहीं है। लेकिन यह कथन ठीक नहीं है। (५७-५८) क्यों कि काशी मरणार्थ शिव की पूजा करने वाले पुरुषों का मरणोद्देश्यक मरणानुकूल व्यापारात्मक शिव पूजन भी हिंसा रूप हो जायगा। अतः अदृष्टा द्वारक मरणोद्देश्यक मरणानुकूल व्यापार ही को हिंसा रूप मानना उचित है। ऐसा मानने पर उक्त शिव पूजन अदृष्ट द्वारा मरणानुकूल व्यापार रूप होने के कारण हिंसा रूप नहीं होगा। इसी प्रकार श्येन याग भी अदृष्ट द्वारा मरणानुकूल व्यापार रूप होने के कारण हिंसा रूप नहीं है।

(५९) न च साक्षान्मरणजनकस्यैव हि हिंसात्वं श्येनस्तु न तथा किंतु तज्जन्यापूर्वमिति वाच्यं, खड्ग घातेन ब्राह्मणे व्रणपाकपरंपरया मृते हिंसात्वानापत्तेः।

(५९) किसी का मत है कि साक्षात् मरण का जनक ही हिंसा है। श्येन याग साक्षात् शत्रुमरण जनक नहीं है किन्तु श्येन याग जन्य अदृष्ट ही साक्षात् शत्रु मरण का जनक है। अतः श्येन याग हिंसा रूप नहीं होगा। लेकिन यह युक्त नहीं है क्यों कि खड्ग घात से व्रण ज्वरादि द्वारा जहाँ ब्राह्मण की मृत्यु हुई है वहां ज्वर ही साक्षात् मरण जनक होने के कारण हिंसा रूप होगा। किन्तु खड्गघात साक्षात् मरण का जनक नहीं है अतः उस में हिंसात्व की अनुपपत्ति हो जायगी।

(६०) केचित्तु श्येनस्य हिंसा फलं न तु मरणम्। (६१) तेन श्येनजन्य खड्गघातादिरूपा हिंसाऽभिचारपदार्थः। तस्य च पापजनकत्वम्। (६२) अतः श्येनस्य वैधत्वात्पापाजनकत्वेऽपि अग्रिम पापं प्रतिसंधाय सन्तो न प्रवर्तन्त इत्याहुः।

(६०,६१) * और किसी का ऐसा भी मत है कि पूर्वोक्त साक्षात् मरण का जनक ही हिंसा है। अतः श्येन यागजन्य खड्ग घातादि साक्षात् मरण का जनक होने के कारण हिंसा रूपहै और श्येनयाग साक्षात् मरण का जनक नहीं होनेके कारण हिंसा नहीं है किन्तु

* शङ्का—नचेत्यादि ग्रन्थ से साक्षात् मरण जनक ही को हिंसा रूप मानने के कारण पौनरुक्त्य क्यों नहीं होगा। समा०—पूर्व साक्षात् मरण जनक श्येनजन्य अदृष्ट ही को हिंसा रूप कहा है और इस मत में तो तादृश अदृष्ट खड्गाघात ही के प्रति कारण माना जाता है मरण के प्रति नहीं। अतः मरण जनक नहीं होने के कारण हिंसा रूप नहीं है इस हेतु दोनो मतों में भेद होने से पौनरुक्त्य नहीं होगा।

हिंसा का जनक है। (६२) अतः श्येन यागजन्य खड्गा घातादि रूप हिंसा ही पाप का जनक है और वैध श्येन याग हिंसा रूप नहीं होने के कारण पाप का जनक नहीं है तो भी श्येन याग से परम्परया पापोत्पत्तिकी सम्भावनासे सज्जन पुरुष श्येन याग में प्रवृत्त नहीं होते हैं।

(६३) आचार्यास्तु आप्ताभिप्रायो विध्यर्थः। 'पाकं कुर्याः' इत्यादावाज्ञादिरूपेच्छा वाचित्ववल्लिङ्मात्रस्येच्छावाचित्वं लाघवात्। (६४) एवं च 'स्वर्गकामो यजेत्' इत्यादौ यागः स्वर्गकामकृतिसाध्यतया आप्तेष्ट इत्यर्थः (६५) ततश्चाप्तेष्टत्वेनेष्टसाधनत्वादिक मनुमाय प्रवर्तते। (६६) कलञ्ज भक्षणे तदभान्न प्रवर्तते।

(६३) उदयनाचार्य का मत है कि वक्ता की इच्छा विध्यर्थ है। क्योंकि "पाकं कुर्याः" इत्यादि स्थल में विधि प्रत्यय को जिस प्रकार आज्ञा रूप इच्छा वाचकत्व मानते हैं उसी प्रकार लिङ् मात्र को लाघवात् इच्छावाचकत्व मानना उचित है। (६४,६५) तब स्वर्ग कामो यजेत्" इत्यादि स्थल में "यागः मम स्वर्ग कामस्य वलवदनिष्टाननु वन्धीष्ट साधनम् मत्कृति साध्यत्वेन आप्तेन इष्यमाणत्वात्" इत्याकारक अनुमित्यात्मक इष्ट साधनता ज्ञान से प्रवृत्ति होती है। (६६) कलञ्ज भक्षण में किसी विधि वाक्य को नहीं रहने के कारण एतादृश अनुमित्यात्मक इष्ट साधनता ज्ञान नहीं रहेगा। अतः प्रवृत्ति नहीं होती है।

(६७) यस्तु वेदे पौरुषेयत्वं नाभ्युपैति तं प्रति विधिरेव तावद्गर्भ इव श्रुति कुमार्याः पुंयोगे मानम्।

(६७) वक्ता की इच्छा को विधि प्रत्ययार्थ मानने पर जो मीमांसकादिवेद को अपौरुषेय अर्थात् किसी से प्रणीत नहीं मानते हैं। उन के मत में बेद घटक विधि प्रत्ययार्थ किसी की इच्छा नहीं मानी जा सकती है। क्योंकि उन के मत से वेद का कर्त्ता कोई नहीं है। किसी दूसरे पुरुष की इच्छा का वोध कराने में विधि प्रत्यय को सामर्थ्य नहीं है तब जिस प्रकार किसी कुमारी का गर्भ पुरुष संयोग का प्रमाण होता है उसी प्रकार वेद वाक्य घटक विधि प्रत्यय श्रुति कुमारी का स्वकर्तृ पुरुष योग में प्रमाण होता है। अर्थात् यदि बेद निर्माता पुरुष नहीं माना जाय तो किसकी इच्छा वेद घटक विधि प्रत्यय का अर्थ होगा? अतः वेद में पौरुषेयत्व मानना उचित है।

(६८) नच कर्त्रस्मरणं बाधकं, कपिल कणादादिभिरद्यपर्यन्तं कर्तृस्मरणस्यैव प्रतीयमानत्वात्। (६९) अन्यथा स्मृतीनामप्यकर्तृकत्वापत्तेः। तत्रैव कर्तृस्मरणमस्तीति चेद्वेदेऽपि 'छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्' इत्यादि कर्तृस्मरणमस्त्येव। (७०) एवं 'प्रतिमन्वन्तरं चैषाश्रुतिरन्या विधीयते' इत्यपि द्रष्टव्यम्।

(६८,७०) यदि आप कहें कि वेद कर्त्ता का किसी को स्मरण नहीं है तव वेद में अस्मर्यमाण कर्तृकत्व रहनेके कारण "वेदः अपौरुषेयः अस्मर्यमाण कर्तृकत्वात् आकाशवत्" इस अनुमान से अपौरुषेयत्व की सिद्धि होने पर वेद में पौरुषेयत्व की सिद्धि नहीं होगी। यह युक्त नहीं है क्योंकि कपिल कणादादि महर्षियों से वेद में सकर्तृकत्व बोधक स्मृति प्रणयन होने के कारण ज्ञात होता है कि उन लोगों को वेदकर्त्ता का स्मरण अवश्य था। यदि आप शंका करें कि वेद कर्त्ता ईश्वर को जव किसी ने न देखा तव उन का स्मरण किसी को होही कैसे सकता। यह आप का कथन युक्त नहीं होगा क्योंकि वेद कर्त्ता का प्रत्यक्ष नहीं होने पर भी "वेदः पौरुषेयः वाक्य समूहत्वात् महाभारतादिवत्" इस अनुमान से वेद कर्त्ता की अनुमिति होने के वाद उन का स्मरण हो सकता है। यदि आप उक्त अनुमान को अप्रयोजक मान कर वेद में पौरुषेयत्व का अनंगीकार करें तो उक्त रीतिसे मन्वादि स्मृतियों में भी सकर्तृकत्व सिद्ध नहीं होगा। अगर ऐसा कहें कि तत्तत् मन्वादि स्मृति में तत्तत् स्मृति कर्त्ता का नाम प्रतिपादन होने के कारण स्मृति कर्ता का अस्मरण नहीं है अतः स्मृतियों में सकर्तृकत्व माना जाता है। तो इस का उत्तर यह है कि श्रुति में भी "छन्दांसि यज्ञिरे तस्मात्" इत्यादि मन्त्रों से तत्तत् स्थल विशेष में वेद कर्त्ता का भी प्रतिपादन होने के कारण वेद को भी अपौरुषेय नहीं कह सकते हैं। एवं "प्रतिमन्वन्तरं चैषा श्रुतिरन्या विधीयते" इत्यादि स्मृति भी प्रतिमन्वन्तर में विभिन्न श्रुतियां वनाई जाती हैं इस का स्पष्ट प्रमाण है। अतः आप उस को अपौरुषेय नहीं मान सकते हैं।

(७१) 'स्वयंभूरेष भगवान्वेदो गीतस्त्वया पुरा' शिवादिऋषिपर्यन्ता स्मर्तारोऽस्य न कारकाः'। (७२) इति तु वेदस्य स्तुति मात्रम्। न च पौरुषेयत्वे भ्रमादिसंभवादप्रामाण्यं स्यादिति वाच्यं नित्यसर्वज्ञत्वेन निर्दोषत्वात्। (७३) अतएव पुरुषान्तरस्य भ्रमादिसंभावान्न कपिलादेरपि कर्तृत्वं वेदस्य। (७४) किंच वर्णानामेवानित्यत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात्सुतरां तत्संदर्भस्य वेदस्यानित्यत्वमिति संक्षेपः।

(७१-७४) महाभारतमें व्यास देव ने ईश्वरसे कहा है कि हे ईश्वर अनादि वेद रूप भगवान् आप से पूर्व उच्चारित हैं। शिवादि ऋषि पर्यन्त वेद के स्मरण कर्त्ता हैं नकि प्रणेता हैं। यह व्यास देव का वचन वेद की स्तुति रूप होने के कारण अपौरुषेयत्व का प्रमाण नहीं हो सकता है। शङ्का—यदि वेद में पौरुषेयत्व माना जाय तो पुरुष मात्र को भ्रम होने के कारण निर्माण कर्त्ता पुरुष के भ्रम से वेद में अप्रामाण्य हो जायगा। समा०—

ईश्वर को सर्व विषयक नित्य ज्ञानवान् होने के कारण भ्रम होने की सम्भावना नहीं है। अतः वेद में ईश्वर कर्तृकत्व मानने पर भी अप्रामाण्य नहीं होगा। अतएव ईश्वर से भिन्न पुरुषों को भ्रम की सम्भावना अवश्य होने के कारण कपिलादि ऋषियों में भी वेद कर्तृत्व मानना युक्त नहीं है। और वेद में अनित्यत्व की यह भी युक्ति है कि वक्ष्यमाण (का० १६७) प्रतिपादित हेतु से जब प्रत्येक वर्णों को अनित्य मानना होगा। तब सुतरां वर्ण समुदायात्मक वेद को आप नित्य नहीं मान सकते हैं।

(७५) उपादानस्येति। उपादानस्य समवायिकारणस्याध्यक्षं प्रत्यक्षं प्रवृत्तौ कारणमिति।

(७५) उपादान (समवायि कारण) का प्रत्यक्ष प्रवृत्ति में कारण है।

का० १५१ उत्त०।

निवृत्तिस्तु भवेद्द्वेषाद्द्विष्टसाधनताधियः॥

का० अर्थ उत्त०।

द्वेष और द्वेष विषय जोदुःखादितत्साधनता ज्ञान से दुःखोपाय विषयक निवृत्ति होती है।

(१) निवृत्तिरिति। द्विष्टसाधनता ज्ञानस्य निवृत्तिंप्रति जनकत्वमन्वय व्यतिरेकाभ्यामवधारितमिति भावः।

(१) निवृत्ति के साथ द्विष्ट साधनता ज्ञान का अन्वय व्यतिरेक रहने के कारण निवृत्ति के प्रति द्विष्ट साधनता ज्ञान को भी कारणत्व माना जाता है।

का० १५२।

यत्नो जीवनयोनिस्तु सर्वदातीन्द्रियो भवेत्।
शरीरे प्राणसंचारे कारणं परिकीर्तितम्॥

का० अर्थ।

प्राणियों के जीवन पर्यन्त रहनेवाला जीवनयोनि नाम का यत्न अतीन्द्रिय है और वह शरीर में प्राण संचार का कारण माना जाता है।

(१) यत्न इति। जीवनयोनियत्नो यावज्जीवनमनुवर्तते स चातीन्द्रियः। (२) तत्र प्रमाण माह। (३) शरीर इति। प्राणसंचारो हि अधिक श्वासादिः यत्न साध्यः। (४) इत्थं च प्राणसंचारस्य सर्वस्य यत्नसाध्यत्वानुमानात्प्रत्यक्षयत्नबाधाच्चातीन्द्रिय यत्नसिद्धिः। स एव जीवनयोनिर्यत्नः।

(१) इस का अर्थ कारिकार्थ ही से स्पष्ट है। (२) जीवनयोनि यत्न में प्रमाण कहते हैं। (३) व्यायामादि कालिक दीर्घ श्वास प्रश्वास रूप प्राण संचार प्रयत्न साध्य है। यह सर्वानुभव सिद्ध है। (४) इस से प्राणसञ्चार सामान्य में यत्न साध्यत्व की अनुमिति होती है और तादृश यत्न का प्रत्यक्ष नहीं होने के कारण वह अतीन्द्रिय सिद्ध होता है जो जीवनयोनियत्न के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरुत्वं निरूपयति = गुरुत्व का निरूपण करते हैं।

का० १५३,१५४ पूर्वा०।

अतीन्द्रियं गुरुत्वं स्यात्पृथिव्यादिद्वये तु तत्।
अनित्ये तदनित्यं स्यान्नित्ये नित्यमुदाहृतम्॥
तदेवासमवायि स्यात्पतनाख्ये तु कर्मणि।

का० अर्थ।

गुरुत्व पृथ्वी और जल मे रहता है और अतीन्द्रिय है परमाणुगत गुरुत्व नित्य और तदन्यगत गुरुत्व अनित्य है और वही गुरुत्व आद्य पतन का असमवायि कारण है।

(१) अतीन्द्रियमिति। अनित्य इति। अनित्ये द्व्यणुकादौ तद्गुरुत्वमनित्यम्। नित्ये परमाणौ नित्यम्। गुरुत्व मित्यनु वर्तते। तद्गुरुत्वमसमवायि असमवायि कारणम्। पतनाख्य इति। आद्यपतनइत्यर्थः।

(१) कारिकार्थ में ही स्पष्ट है।

द्रवत्वं निरूपयति = द्रवत्व का निरूपण करते है।

का० १५४,१५५।

सांसिद्धिकं द्रवत्वं स्यान्नैमित्तिकमथापरम्॥
सांसिद्धिकं तु सलिले द्वितीयं क्षितितेजसोः।
परमाणौ जले नित्यमन्यत्रा नित्यमुच्यते॥

का० अर्थ।

सांसिद्धिक नैमित्तिक भेद से द्रवत्व दो प्रकार के होते हैं। उन में सांसिद्धिक द्रवत्व जल में और नैमित्तिक द्रवत्व पृथ्वी और तेज में रहता है। जल परमाणु में रहने वाला द्रवत्व नित्य और पार्थिव तैजस परमाणवादि एवं जलीय द्व्यणुकादि में रहने वाला द्रवत्व अनित्य है।

(१) सांसिद्धिकमिति। द्रवत्वं द्विविधं सांसिद्धिकं नैमित्तिकं चेति। द्वितीयं नैमित्तिकम्। (२) परमाणाविति जल परमाणौ द्रवत्वं नित्यमित्यर्थः। अन्यत्र पृथिवी परमाणवादौ जलद्व्यणुकादौ च द्रवत्व मनित्यम्। (३) कुत्रचित्तेजसि कुत्रचित्पृथिव्यां च नैमित्तिकं द्रवत्वम्। तत्र को वा नैमित्तिकार्थ स्तद्दर्शयति।

(१,२) कारिकार्थ में स्पष्ट है। (३) सुवर्णादि रूप किसी तेज में एवं घृतादि रूप किसी पृथ्वी में रहने वाला द्रवत्व नैमित्तिक द्रवत्व है। नैमित्तिक होने का कारण (नैमित्तिकमित्यादि कारिका से) बतलाते हैं।

का० १५६।

नैमित्तिकं वह्नियोगात्तपनीयघृतादिषु।
द्रवत्वं स्यन्दने हेतुर्निमित्तं संग्रहे तु तत्॥

का० अर्थ।

सुवर्णादि रूप तेज में और घृत लाक्षादि रूप पृथिवी मे रहने वाला द्रवत्व वह्नि संयोग रूप निमित्त से पैदा होने के कारण नैमित्तिक कहा जाता है। द्रवत्व स्यन्दन का असमवायि कारण और संग्रह का निमित्त कारण है।

(१) नैमित्तिकमिति। वह्नीति। अग्निसंयोगजन्यं नैमित्तिकं द्रवत्वम्। तच्च सुवर्णादिरूपे तेजसि घृतजतु प्रभृतिपृथिव्यां च वर्तत इत्यर्थः। (२) द्रवत्वमिति। हेतुरिति। असमवायिकारण मित्यर्थः। (३) संग्रहे सक्तुकादि संयोगविशेषे तत् द्रवत्वं स्नेहसहित मिति बोद्धव्यम्। तेन द्रुतसुवर्णादिना न संग्रहः।

(१,२) कारिकार्थ में स्पष्ट है। (३) सक्तु वगैरह का पिण्डीभाव रूप संयोग विशेषात्मक संग्रह में स्नेह और द्रवत्व अर्थात् सांसिद्धिक द्रवत्व ये दोनों निमित्त कारण

हैं अतः द्रुत सुवर्णादि में उन दोनों को नहीं रहने के कारण उस से संग्रह नहीं होता है। शङ्का—संग्रह के प्रति केवल स्नेह को कारणत्व मानने से भी किसी दोष की सम्भावना नहीं है तब सांसिद्धिक द्रवत्व को कारणत्व मानना व्यर्थ है। समा०—विनिगमना विरह हो जाने के कारण संग्रह के प्रति स्नेह और सांसिद्धिक द्रवत्व दोनों को कारणत्व मानना आवश्यक होगा।

स्नेहं निरूपयति = स्नेह का निरूपण करते है।

का० १५७।

स्नेहो जले स नित्योऽणावनित्योऽवयविन्यसौ।
तैलान्तरे तत्प्रकर्षाद्दहनस्यानुकूलता ॥

का० अर्थ।

जल मात्र में रहने वाला स्नेह नित्य, अनित्य के भेद से दो प्रकार का है। जल परमाणु में नित्य और जन्य जल में अनित्य स्नेह रहता है। तैल में जल रहने पर भी उस जल में अधिक स्नेह रहने के कारण वह जल अग्नि के अनुकूल ही होता है।

(१) स्नेह इति। जल इति। जल एवेत्यर्थः। असौ स्नेहः। (२) ननु पृथिव्यामपि तैले स्नेह उपलभ्यते, न चासौ जलीयः, तथा सति दहनप्रातिकूल्यं स्यादत आह—तैलान्तर इति। तत्प्रकर्षात्, स्नेह प्रकर्षात् तैले उपलभ्यमानः स्नेहोऽपि जलीय एव तस्यप्रकृष्टत्वा दग्नेरानुकूल्यम्। अपकृष्टस्नेहं हि जलं वह्निं नाशयतीति भावः।

(१) स्पष्ट है। (२) शङ्का करते हैं कि तैलादि रूप पृथ्वी में स्नेह उपलब्ध होने के कारण स्नेह जल मात्र में रहता है। यह कैसे हो सकता है। यदि आप कहें कि तेल में भी जल ही का स्नेह उपलब्ध होता है तो यह युक्त नहीं है क्योंकि तेल के भीतर यदि जल माना जाय तो तैल भी अग्नि के अनुकूल नहीं होगा प्रत्युत जल युक्त होने के कारण प्रतिकूल हो जायगा। इस शङ्का का निराकरण "तैलान्तर" इत्यादि कारिका से करते हैं कि तैल में जो स्नेह पाया जाता है वह भी जल ही का है। परन्तु तैलान्तर्गत जल में अधिक स्नेह रहने के कारण वह जल अग्नि के अनुकूल ही होता है। अल्प स्नेह जिसमें रहता है वही जल अग्नि का नाशक होता है।

संस्कार निरूपयति = संस्कार का निरूपण करते है।

का० १५८

संस्कारभेदो वेगोऽथ स्थितिस्थापकभावने।

मूर्त मात्रे तु वेगः स्यात्कर्मजो वेगजः क्वचित्॥

का० अर्थ।

वेग स्थितिस्थापक और भावना के भेद से संस्कार तीन प्रकार का होता है वेग मूर्त मात्र में रहता है और कर्मज तथा वेगज के भेद से दो प्रकार का होता है।

(१) संस्कारेति। वेग स्थितिस्थापक भावना भेदात्संस्कारस्त्रिविध इत्यर्थः। (२) मूर्तमात्र इति। कर्मज वेगज भेदाद्वेगो द्विविध इत्यर्थः। (३) शरीरादौ हि नोदन जनितेन कर्मणा वेगो जन्यते। (४) तेन च पूर्व कर्म नाशस्तत उत्तरं कर्म। एवमग्रेऽपि।

(१,२) कारि कार्थ ही से स्पष्ट है। (३) शरीरादि गत नोदन संयोगजन्य कर्म से शरीर में वेग उत्पन्न होता है। (४) उस वेग से पूर्व कर्म का नाश और तव उत्तर कर्म की उत्पत्ति होती है। पुनः उत्तर कर्म से पूर्व बेग का नाश और उत्तर वेग की उत्पत्ति होती है इस प्रकार समझना चाहिये।

(५) विना च वेगं कर्मणः कर्मप्रतिवन्धकत्वात्पूर्वकर्मनाश उत्तरकर्मोत्पत्तिश्च न स्यात्। (६) यत्र वेगवता कपालेन जनिते घटे वेगो जन्यते स वेगजो वेगः।

(५) यदि वेग नहीं माना जाय तो नाशक के अभाव के कारण पूर्व कर्म का नाश नहीं होगा। और जब तक पूर्व कर्म का नाश नहीं होगा तव तक उत्तर कर्म की उत्पत्ति नहीं होगी। क्योंकि कर्मोत्पत्ति मे कर्म प्रतिवन्धक है अतः पूर्व कर्म नाशार्थ वेग मानना आवश्यक है यही वेग कर्मजं कहलाता है। (६) वेग विशिष्ट कपाल से उत्पन्न घट में जो वेग उत्पन्न होता है वह वेगज वेग का उदाहरण है क्योंकि उस घटगत वेग का असमवायि कारण कपालगत वेग ही है।

का० १५९।

स्थितिस्थापक संस्कारः क्षितौ केचिच्चतुर्ष्वपि।

अतीन्द्रियोऽसौ विज्ञेयः क्वचित्स्पन्देऽपि कारणम्॥

का० अर्थ ।

स्थितिस्थापक संस्कार पृथ्वी में माना जाता है और किसी के मत से वह पृथिव्यादि चारों में माना जाता है। वह संस्कार अतीन्द्रिय है और कहीं २ आकृष्ट शाखादि में जो स्पन्द होता है उस का भी कारण वही है।

(१) स्थितिस्थापकेति । आकृष्ट शाखादीनां परित्यागे पुनर्गमनस्य स्थितिस्थापक साध्यत्वात् । (२) केचिदिति । चतुषु क्षित्यादिषु स्थितिस्थापकं केचिन्मन्यन्ते तदप्रमाणमिति भावः । (३) असौ स्थितिस्थापकः । क्वचिदाकृष्ट शाखादौ ।

(१) आकृष्ट शाखा आदि का जो परित्यागानन्तर पुनः पूर्व देश में गमन होता है उस का कारण जो गुण विशेष उसी का नाम स्थितिस्थापक संस्कार है। (२) किसी का मत है कि स्थितिस्थापक संस्कार पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चारों में मानना चाहिये, परन्तु उस में प्रमाण नहीं रहने के कारण वह मत श्रद्धास्पद नहीं है। (३) अर्थ स्पष्ट है।

का० १६० ।

भावनाख्यस्तु संस्कारो जीववृत्तिरतीन्द्रियः ।
उपेक्षानात्मकस्तस्य निश्चयः कारणं भवेत् ॥

का० अर्थ ।

जीवात्मा में रहनेवाला भावनाख्य संस्कार अतीन्द्रिय है। और उपेक्षानात्मक निश्चय उस का कारण होता है।

(१) भावनाख्य इति । तस्य संस्कारस्य । (२) उपेक्षात्मक ज्ञानात्संस्कारानुत्पत्तेरुपेक्षानात्मक इत्युक्तम् । (३) तत्संशयात्तस्यानुत्पत्तेर्निश्चय इत्युक्तम् । (४) तेनोपेक्षान्यनिश्चयत्वेन संस्कारं प्रति हेतुतेति भावः ।

(१) अर्थ स्पष्ट है। (२-४) उपेक्षात्मक ज्ञान से भावनाख्य संस्कार की उत्पत्ति नहीं होती है। अतः उपेक्षानात्मक कहा गया। उपेक्षानात्मक संशय से उस संस्कार की उत्पत्ति नहीं होती है। अतः तादृश संस्कार के प्रति उपेक्षानात्मक निश्चय को कारणता मानी जाती है।

(५) ननु स्मरणं प्रत्युपेक्षान्यनिश्चयत्वेन हेतुत्वं तेनोपेक्षादिस्थले न स्मरणम् । (६) इत्थं च संस्कारं प्रति ज्ञानत्वेनैव हेतुतास्त्विति चेन्न । (७) विनिगमनाविरहेणापि संस्कारं प्रति उपेक्षान्यनिश्चयत्वेन हेतुतायाः सिद्धत्वात् ।

(५-७) शङ्का है कि संशय से एवं उपेक्षात्मक निश्चय से स्मरण नहीं होता है अतः स्मरण के प्रति उपेक्षान्य निश्चयत्वेन कारणता मानना आवश्यक है। तब संस्कार के प्रति यदि ज्ञानत्वेन कारणता मान ली जाय तो हानि क्या है? क्योंकि संशय एवं उपेक्षात्मक निश्चय से संस्कारोत्पत्ति होने पर भी स्मरण का कारण जो उपेक्षान्य निश्चय, वह नहीं हैं। अतः स्मरण की आपत्ति नहीं होगी। समा०– विनिगमनाविरहात् संस्कार ही के प्रति उपेक्षान्य निश्चयत्वेन कारणता माने और स्मरण के प्रति यदि ज्ञानत्वेन कारणता मानें तो भी संशय एवं उपेक्षात्मक निश्चय के बाद संस्कार रूप व्यापार की अनुत्पत्ति होने के कारण स्मरण की आपत्ति नहीं होगी। तो इसी प्रकार कारणता क्यों नहीं मानी जाय इत्याकारक विनिगमना विरह से संस्कार एवं स्मरण दोनों हीं के प्रति उपेक्षान्य निश्चयत्वेन कारणता माननी होगी ।

(८) किंचोपेक्षास्थले संस्कारकल्पनाया गुरुत्वात्संस्कारं प्रति चोपेक्षान्यनिश्चयत्वेन हेतुतायाः सिद्धत्वात् ।

(८) यदि वास्तविक रूप से विचार किया जाय तो संस्कार ही के प्रति उपेक्षान्य निश्चय को कारणता मानने में विनिगमक प्रतीत होता है। क्योंकि संस्कार के प्रति यदि ज्ञानत्वेन कारणता मानी जाय तो संशय और उपेक्षात्मक निश्चय स्थल में भी संस्कार की कल्पना प्रयुक्त गौरव होगा ।

का० १६१

स्मरणे प्रत्यभिज्ञाया मप्यसौ हेतुरुच्यते।

"स एवायं देवदत्तः" इत्यादि प्रत्यभिज्ञा और स्मरण का कारण भावनाख्य संस्कार है।

(१) असौ संस्कारः । (२) तत्र प्रमाणं दर्शयति स्मरण इति । (३) यतः स्मरणं प्रत्यभिज्ञानं च जनयत्यतः संस्कारः कल्प्यते । (४) विना व्यापारं पूर्वानुभवस्य स्मरणादिजननासामर्थ्यात्स्व स्वव्यापारान्यतराभावे कारणत्वासंभवात् ।

(१) कारिका में "असौ" पद से भावनाख्य संस्कार का ग्रहण होता है। (२) स्मरण इत्यादि कारिका से संस्कार में प्रमाण बतलाते हैं। (३) पूर्वानुभव आशुविनाशी है। किन्तु कालान्तर भावी स्मरण और प्रत्यभिज्ञा को उत्पन्न करता है यह सर्व सम्मत है अतः संस्कार रूप व्यापार की कल्पना की जाती है। (४) पूर्वानुभव को पूर्व ही नष्ट हो जाने के कारण संस्कार रूप व्यापार के विना पूर्वानुभव को स्मरणादि जनकत्व नहीं हो सकता है। कार्याव्यवहित पूर्व क्षण में कारण अथवा कारण का व्यापार इस अन्यतर के नहीं रहने से उसको कारणत्व नहीं हो सकता है जिस हेतु कार्याव्यवहित पूर्वक्षण वृत्तिस्वस्वव्यापारान्यतर कत्व ही कारणता का स्वरूप है।

(५) नच प्रत्यभिज्ञां प्रति तत्तत्संस्कारस्य हेतुत्वे प्रत्यभिज्ञायाः संस्कारजन्यत्वेन स्मृतित्वापत्तिरिति वाच्यम् अप्रयोजकत्वात्। (६) परे त्वनुद्बुद्धसंस्कारात्प्रत्यभिज्ञा नुदयादुद्बुद्ध संस्कारस्य हेतुत्वापेक्षया तत्तस्मरणस्यैव प्रत्यभिज्ञां प्रति हेतुत्वं कल्प्यत इत्याहुः।

(५) शङ्का —प्रत्यभिज्ञा के प्रति तत्तत् संस्कार को कारणता मानने पर प्रत्यभिज्ञा में संस्कार जन्यत्व होने के कारण स्मृतित्वापत्ति हो जायगी। समा०–यह नहीं कह सकते हैं। क्योंकि संस्कारजन्यत्व स्मृतित्व का प्रयोजक है, इसमें कोई अनुकूल तर्क नहीं है। (६) चिन्तामणिकार का मत है कि अनुद्बुद्ध संस्कार से प्रत्यभिज्ञा नहीं होती है। अतः प्रत्यभिज्ञा के प्रति उद्बुद्ध संस्कार ही को कारणता माननी होगी। तदपेक्षया लाघवात् तत्तत् पदार्थ के स्मरण ही को तत्तत् पदार्थ प्रत्यभिज्ञा के प्रति कारणत्व मानना युक्त है। अर्थात् तत्तत् पदार्थ का स्मरण होने पर ही तत्तत् पदार्थ की प्रत्यभिज्ञा होती है। अतः प्रत्यभिज्ञा में संस्कार जन्यत्व नहीं रहने के कारण स्मृतित्वापत्ति नहीं होगी।

अदृष्टं निरूपयति = अदृष्ट का निरूपण करते हैं।

का० १६१,१६२ पूर्वा०

धर्माधर्मावदृष्टं स्याद्धर्मः स्वर्गादिसाधनम्॥
गङ्गास्नानादियागादि व्यापारः स तु कीर्तितः।

धर्म, अधर्म दोनों अदृष्ट शब्द के अर्थ हैं। उन में धर्म स्वर्ग का कारण है। और वह धर्म गङ्गा स्नानादि यागादि रूप क्रिया का व्यापार है।

(१) धर्माधर्माविति। स्वर्गादीति। स्वर्गादिसकलसुखानां स्वर्गसाधनीभूतशरीरादीनां च साधनं धर्म इत्यर्थः। (२) तत्रप्रमाणं दर्शयितु माह-

यागादीति, यागादिव्यापारतया धर्मः कल्प्यते । (३) अन्यथा यागादीनां चिरविनष्टतया निर्व्यापारतया च कालान्तरभाविस्वर्गजनकत्वं न स्यात् । (४) तदुक्त माचार्यैः–'चिरध्वस्तं फलायालं न कर्मातिशयं विना' इति ।

(१) स्वर्गादि सकल सुखों का एवं स्वर्ग साधनीभूत स्वर्गीय शरीर का कारण धर्म है । (२) धर्म में प्रमाण बतलाने के लिये कहते हैं । यागादि के व्यापार रूप में धर्म की कल्पना होती है । (३) यदि याग का व्यापार धर्म नहीं माना जाय तो व्यापार शून्य याग को स्वर्गादि फल से बहुत पूर्व ही नष्ट हो जाने के कारण चिरकालोत्तर भावी स्वर्गादि के प्रति जनकत्व नहीं होगा । (४) इसी बात को "चिरध्वस्तम्" इत्यादि कारिकासे उदयनाचार्य ने कहा है ।

(५) ननु यागध्वंस एव व्यापारः स्यात्, न च प्रतियोगितद्ध्वंसयोरेकत्राजनकत्वं, सर्वत्र तथात्वे मानाभावात्, न च त्वन्मते फलानन्त्यं मन्मते चरमफलस्यापूर्वनाशकत्वान्न तथात्वमिति वाच्यं, कालविशेषस्य सहकारित्वादित्यत आह—(६) गङ्गास्नानेति । गंगास्नानस्य हि स्वर्ग जनकत्वेऽनन्तानां जलसंयोगध्वंसानां व्यापारत्वमपेक्ष्यैकमपूर्वमेव कल्प्यते लाघवादिति भावः ।

(५) शंका करते हैं कि यागादि के व्यापार रूप में एक अद्भुत धर्म रूप पदार्थ की कल्पना करना व्यर्थ है । क्योंकि याग ध्वंस को याग का व्यापार मान लेनेसे भी सामंजस्य हो जाता है । यदि आप कहें कि एक कार्य के प्रति प्रतियोगी और उस के ध्वंस दोनों को जनकत्व कहीं सिद्ध नहीं है तो ऐसा नहीं कह सकते हैं क्योंकि एक कार्य के प्रति प्रतियोगी और उस के ध्वंस इन दोनों को कारणता नहीं हो सकती है इस नियम में कोई प्रमाण नहीं है। यदि आप ऐसा कहें कि धर्म को नहीं मान कर यागध्वंस ही को याग का व्यापार मानें तो यागध्वंस रूप व्यापार का कभी नाश नहीं होने के कारण स्वर्गादि रूप फल का भी कभी अन्त नहीं होगा और हमारे (धर्म रूप व्यापार वादी के) मत से तो चरम फल से धर्म के नाश हो जाने के कारण स्वर्गादि रूप फल का अवसान हो जायगा । किन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि काल विशेष को यागध्वंस रूप व्यापार का सहकारी मानने के कारण काल विशेष के नष्ट हो जाने पर स्वर्गादि रूप फल का अवसान अवश्य हो जायगा । अतः कहते हैं कि–(६) स्वर्ग जनक जो अनन्त जल संयोगात्मक गङ्गा स्नान उस का व्यापार अनन्त तत्तज्जल संयोग ध्वंस को मानना होगा, तदपेक्षया एक धर्म ही को लाघवात् व्यापारत्व मानना युक्त है ।

(७) ननु ध्वंसोऽपि न व्यापारोऽस्तु नच निर्व्यापारस्य चिरध्वस्तस्य कथं कारणत्वमिति वाच्यम्, अनन्यथासिद्धनियतपूर्ववर्तित्वस्य तत्रापि सत्त्वात्। (८) अव्यवहितपूर्ववर्तित्वं हि चक्षुस्संयोगादेः कारणत्वे, न तु सर्वत्र, कार्यकालवृत्तित्वमिव समवायि कारणस्य कारणत्वे इत्यत आह—

(७,८) शंका करते हैं कि गंगा स्नानादि क्रिया के ध्वंस में भी यदि उक्त क्रिया का व्यापारत्व नहीं मानें तो हानि ही क्या है? यदि कहें कि व्यापार रहित चिरध्वस्त गंगा स्नानादि रूप क्रिया स्वर्ग से अव्यवहित पूर्वक्षण में नहीं है और न उसका कोई व्यापार ही है तब वह स्वर्ग का कारण कैसे होगा तो इस का उत्तर यह किया जा सकता है कि जैसे समवायि कारण मात्र का कार्यक्षण में रहना आवश्यक है वैसे ही चक्षुः संयोग रूप प्रत्यक्षादि कारण ही को कार्याव्यवहित पूर्व क्षण में रहना आवश्यक है। और अन्य कारणों में केवळ कार्य पूर्व काल वृत्तित्व ही आवश्यक है। अतः गंगास्नानादि रूप क्रियाओं को स्वर्गाव्यवहित पूर्वक्षण में नहीं रहने पर भी कारणत्व होने में कोई बाधा नहीं। इस लिये कहते हैं कि "कर्मनाशा" इत्यादि।

का० १६२ उत्त०।

कर्मनाशाजलस्पर्शादिना नाश्यस्त्वसौ मतः॥

का० अर्थ।

कर्मनाशा नदी के जल स्पर्शादि से धर्म का नाश होता है।

(१) कर्मनाशेति। यदि ह्यपूर्वं न स्यात्तदा कर्मनाशा जलस्पर्शादिना नाश्यत्वं धर्मस्य न स्यात्, नहि तेन यागादेर्नाशः प्रतिबन्धो वा कर्तुं शक्यते तस्य पूर्वमेव वृत्तत्वादिति भावः।

(१) यदि धर्म नहीं माना जाय तो कर्मनाशा नदी के जल स्पर्शादि से नाश किस का होगा? यागादि क्रिया का नाश वा अनुत्पाद उस के जल स्पर्शादि से नहीं हो सकता है। क्योंकि यागादि क्रिया तो पूर्व ही नष्ट हो गई है।

(२) एतेन देवताप्रीतेरेव फलत्व मित्यपास्तम्। (३) गंगास्नानादौ सर्वत्र देवताप्रीतेरसंभवाच्च। (४) देवतायाश्चेतनत्वेऽपि तत्प्रीतेरनुद्देश्यत्वात्। (५) प्रीतेः सुखस्वरूपत्वेन विष्णुप्रीत्यादौ तदसम्भवात् जन्यसुखादेस्तत्राभावात्। (६) तेन विष्णुप्रीतिजन्यत्वेन पराभिमतस्वर्गादिरेव विष्णुप्रीतिशब्देन लक्ष्यते।

(२) किसी का मत है कि यागादि क्रिया का देवताप्रीति ही फल है अतः धर्म मानना व्यर्थ है। यह भी पूर्वोक्त ही उत्तर से खण्डित हो गया। क्योंकि यदि धर्म नहीं माना जाय तो उक्त जल स्पर्श से नाश किस का होगा। देवता की प्रीति जल स्पर्श का अधिकरण है इस कारण उस से देवता प्रीति का नाश होना असम्भव है। (३) एवं गंगास्नानादि क्रिया से देवता की इष्टसिद्धि कुछ नहीं होने के कारण उनकी प्रीति होना असम्भव है। (४) और दूसरी यह भी युक्ति है कि देवता को चेतन मानने पर भी देवता प्रीति उद्देश्य नहीं रहने के कारण उसे क्रिया का फल कैसे मान सकते हैं। (५) एवं प्रीति सुख विशेष रूप है। ईश्वरात्मक विष्णु में यदि सुख माना भी जाय तथापि उन में जन्यसुख की सम्भावना नहीं है। अतः उनका नित्यसुख यागादि क्रिया का फल किस प्रकार हो सकेगा! (६) अतः विष्णुप्रीति शब्द से लक्षणया विष्णुप्रीति जन्य मीमांसकाभिमत स्वर्गादि ही का बोध होगा।

का० १६३।

अधर्मो नरकादीनां हेतुर्निन्दितकर्मजः ।

प्रायश्चित्तादिनाश्योऽसौ जीववृत्ती त्विमौ गुणौ ॥

का० अर्थ।

श्रुति स्मृति निषिद्ध कर्म से उत्पन्न होने वाला अधर्म नरकादि सकल दुःखों का कारण है और प्रायश्चित्तादि से नाश्य है। एवं धर्म अधर्म दोनों जीवात्मा में रहते हैं।

(१) अधर्म इति। नरकादिसकलदुःखानां नारकीयशरीरादीनां च साधनमधर्म इत्यर्थः।

(१) अधर्म नरकादि सकल दुःख एवं नारकीय शरीर का कारण है।

तत्र प्रमाण माह = अधर्म में प्रमाण कहते हैं।

(१) प्रायश्चित्तेति। यदि ह्यधर्मो न स्यात्तदा प्रायश्चित्तादिनाश्यत्वं न स्यात। (२) नहि तेन ब्रह्महननादीनां नाशः प्रतिबन्धो वा विधातुं शक्यते। तस्य पूर्वमेव विनष्टत्वादिति भावः। (३) जीवेति। ईश्वरस्य धर्मा धर्मा भावादिति भावः।

(१) यदि अधर्म नहीं माना जाय तो प्रायश्चित्तादि कर्मों से नाश किस का हो। अतः अधर्म मानना आवश्यक है। (२) ब्रह्म हननादि रूप पापोत्पादक क्रियाओं का नाश वा अनुत्पाद प्रायश्चित्त से नहीं हो सकता है क्योंकि वह पूर्व ही नष्ट हो गया है। (३) धर्म तथा अधर्म ईश्वर में नहीं रहने के कारण जीव मात्र में रहता है।

का० १६४ पूर्वा०।

इमौ तु वासनाजन्यौ ज्ञानादपि विनश्यतः ।

का० अर्थ ।

धर्म और अधर्म, मिथ्याज्ञानजन्य वासना से उत्पन्न होते हैं और तत्वज्ञान से नष्ट होते हैं।

(१) इमौ धर्मा धर्मौ । वासनेति । अतो ज्ञानिना कृते अपि सुकृत दुष्कृतकर्मणी न फलायालमिति भावः ।

(१) धर्म तथा अधर्म मिथ्या ज्ञानजन्य वासना से उत्पन्न होते हैं अतः तत्त्वज्ञानियों को वासना का अभाव रहने के कारण उन से किये हुए यागादि रूप सुकृत एवं गो वधादि रूप दुष्कृत कर्मों से धर्मा धर्म नहीं उत्पन्न होते हैं।

(२) ज्ञानादपीति । अपिना भोगपरिग्रहः । (३) ननु तत्त्वज्ञानस्य कथं धर्माधर्मनाशकत्वं 'नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि' इति वचन विरोधात्, इत्थं च तत्त्वज्ञानिनां झटिति कायव्यूहेन सकलकर्मणां भोगेन क्षय इति चेन्न । तत्र भोगस्य वेदबोधितनाशकोपलक्षकत्वात् । कथमन्यथा प्रायश्चित्तादिना कर्मणां नाशः । तदुक्तम् । 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि' इत्यादिना । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे' । इति ।

(२) "ज्ञानादपि" इस वाक्य में आया हुआ "अपि शब्द भोग का बोधक है। (३) यहां कुछ लोग ऐसी शंका करते हैं, कि तत्त्व ज्ञान में यदि "धर्मा धर्म नाशकत्व मानें तो भोग के विना धर्माधर्म का नाश नहीं होता है इस बात को बताने वाला "नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटि शतैरपि" यह वचन विरुद्ध हो जायगा। अतः तत्त्वज्ञानियों के कायव्यूह (सकल धर्माधर्मजन्य भोगार्थ एक कालावच्छेदेन उत्पादित बहु शरीरों) से अति शीघ्र सकल कर्मों का भोग द्वारा नाश होता हैं। परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि "ना भुक्तं क्षीयते कर्म" इत्यादि वचन में आया हुआ भुज धातु वेदबोधित अदृष्ट नाशक

अन्य वस्तुओं का भी बोधक है । तब तत्त्व ज्ञान को भी वेदबोधित अदृष्ट नाशक वस्तु विशेष रूप होने के कारण तत्त्व ज्ञान से धर्माधर्म का नाश मानने पर भी उक्त वचन का विरोध नहीं हो सकता है । यदि भोग मात्र ही से धर्माधर्म का नाश माना जाय तो प्रायश्चित्तादि को भी पाप नाशकत्व नहीं होगा । अतएव भगवद्गीता में तत्त्वज्ञान को धर्माधर्म नाशकत्व प्रतिपादन करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुन के प्रति कहा है कि "ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन" एवं श्रुति में भी "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि" इत्यादि वाक्य से ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त करने वाले पुरुषों के धर्माधर्म नष्ट हो जाते हैं । यह कथन भी संगत हो जाता है ।

(४) ननु तत्त्वज्ञानिनस्तर्हि शरीरावस्थानं सुखदुःखादि च न स्याज्ज्ञानेन सर्वेषां कर्मणां नाशादिति चेन्न । प्रारब्धेतरकर्मणामेव नाशात् । (५) तत्तच्छरीरभोगजनकं हि यत्कर्म तत्प्रारब्धं तदभिप्रायकमेव नाभुक्तमिति वचनमिति ।

(४) यदि आप शंका करें कि तत्त्वज्ञानिओं के तत्त्व ज्ञान से सकल धर्माधर्म नष्ट हो जाने के कारण शरीर की स्थिति नहीं रहेगी और सुख दुःख भी नहीं होंगे । लेकिन यह ठीक नहीं है । क्योंकि तत्त्वज्ञान से प्रारब्धेतर कर्म ही का नाश हो सकता है । (५) तत्तत् शरीर के द्वारा भोग के जनक कर्म ही को प्रारब्ध कर्म कहते हैं । प्रारब्ध कर्म का नाश भोग के विना नहीं होता है । इसी में "नाभुक्तं क्षीयते कर्म" इत्यादि वचन का तात्पर्य है । "ज्ञानाग्नि रित्यादि" "क्षीयन्ते' चास्यकर्माणि इत्यादि दोनों वचनों में कर्म पद प्रारब्धेतर कर्म का बोधक है । अतएव इन दोनों वचनों का नाभुक्तं क्षीयते कर्म इत्यादि वचन से विरोध नहीं होता है ।

शब्दं निरूपयति = शब्द का निरूपण करते हैं ।

का० १६४, १६५, १६६ पूर्वा० ।

शब्दो ध्वनिश्च वर्णश्च मृदंगादि भवो ध्वनिः ॥
कण्ठसंयोगादिजन्या वर्णास्ते कादयो मताः ।
सर्वः शब्दो नभोवृत्तिः श्रोत्रोत्पन्नस्तु गृह्यते ॥
वीचीतरंगन्यायेन तदुत्पत्तिस्तु कीर्तिता ।

का० अर्थ ।

ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक के भेद से शब्द दो प्रकार के होते हैं । उन में मृदंगादिजन्य शब्द ध्वन्यात्मक है और कण्ठ संयोगादिजन्य ककाराद्यात्मक शब्द वर्णात्मक

है। ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक दोनों प्रकार के शब्द आकाश में समवेत हैं और श्रोत्रेन्द्रिय में उत्पन्न होने पर ज्ञात होते हैं। वीचीतरंगन्याय से शब्द की उत्पत्ति होती है।

(१) शब्द इति। नभोवृत्ति राकाशसमवेतः। दूरस्थशब्दस्याग्रहणादाह श्रोत्रेति। (२) ननु मृदंगाद्यवच्छेदेनोत्पन्ने शब्दे श्रोत्रे कथमुत्पत्तिरत आह वीचीति। (३) आद्यशब्दस्य बहिर्दशदिग वच्छिन्नोऽन्यः शब्दस्तेनैव शब्देन जन्यते। (४) तेन चापरस्तद्व्यापकः। एवं क्रमेण श्रोत्रोत्पन्नो गृह्यत इति।

(१) दूरस्थित शब्दों का ज्ञान नहीं होने के कारण कहा गया है कि श्रोत्र में उत्पन्न होने पर शब्द ज्ञात होते हैं। (२) मृदंगाद्यवच्छेदेन उत्पन्न शब्दों की उत्पत्ति श्रोत्रमें किस प्रकार होगी? अतः "वीचीत्यादि" शब्द से कहते हैं कि (३) अभिघातादिजन्य प्रथम शब्द से बाह्यं दश दिग् देशावच्छेदेन व्यापक द्वितीय शब्द उत्पन्न होता है। (४) एवं द्वितीयादि शब्दों से भी दश दिशाओं में तत्तद्व्यापक शब्दान्तर की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जो शब्द श्रोत्रेन्द्रिय में उत्पन्न होता है वह ज्ञात होता है।

का० १६६ उत्त०।

कदम्बगोलकन्यायादुत्पत्तिः कस्यचिन्मते ॥

का० अर्थ।

किसी के मत से कदम्बगोलक न्याय से शब्द की उत्पत्ति होती है।

(१) कदम्बेति। आद्यशब्दाद्दशदिक्षु दशशब्दा उत्पद्यन्ते। तैश्चान्ये दश शब्दा उत्पद्यन्त इति भावः। (२) अस्मिन्मते गौरवादुक्तं-कस्यचिन्मत इति।

(१) अभिघातादि जन्य प्रथम शब्द से दशो दिशाओंमें दश शब्द उत्पन्न होते हैं। और उन दश शब्दों के प्रत्येक २ शब्द से दश २ शब्द दशो दिशाओं में उत्पन्न होते हैं। (२) इस पक्ष में बहु शब्दों की कल्पना प्रयुक्त कल्पना गौरव होने के कारण इस पक्ष में अस्वरस सूचन करने के लिये कारिका में "कस्यचिन्मते" इस पद का उल्लेख किया गया है।

ननु शब्दस्य नित्यत्वादुत्पत्तिकथनमसंगतमत आह =

शब्द को नित्य होने के कारण उस की उत्पत्ति का कथन असंगत है अतः कहते हैं।

का० १६७ ।

उत्पन्नः को विनष्टः क इति बुद्धेरनित्यता ।
सोऽयं क इति बुद्धिस्तु साजात्यमवलम्बते ॥

का० अर्थ ।

ककारादि शब्दों के उत्पाद विनाश की प्रतीति होने के कारण शब्द में अनित्यता मानी जाती है। यह वही ककार है जिस को पूर्व में सुन चुका हूँ यह प्रतीति पूर्व श्रुत ककार के सजातीय ककार को विषय करती है।

(१) उत्पन्न इति । शब्दानामुत्पादविनाश प्रत्ययशालित्वादनित्यत्वमित्यर्थः (२) ननु स एवायं ककार इत्यादि प्रत्यभिज्ञानाच्छब्दानां नित्यत्वम्, इत्थं चोत्पादविनाशबुद्धिर्भ्रमरूपैवेत्यत आह । (३) सोऽयंकइति । साजात्यमिति । तत्र प्रत्यभिज्ञानस्य तत्सजातीयत्वंविषयो न तु तद्व्यक्त्यभेदो विषयः । उक्त प्रतीतिविरोधात् । इत्थं च द्वयोरपि प्रतीत्योर्न भ्रमत्वमिति ।

(१) कारिकार्थ ही से स्पष्ट है। (२) यहां ऐसी, शंका होती है कि " स एवायं ककारः " इत्यादि प्रत्यभिज्ञा होने के कारण शब्द को नित्य मानना होगा। अतः शब्द में उत्पाद विनाश की प्रतीति भ्रम रूप ही है इस के उत्तर में कहते हैं कि- (३) "सोऽयंककारः' इत्यादि प्रत्यभिज्ञा, पूर्वश्रुत ककार के सजातीय अन्य ककार को विषय करती है। किन्तु पूर्व श्रुत ककारको विषय नहीं करती है क्योंकि उक्त प्रतीति मेंपूर्व श्रुत ककार को विषय मानने पर ककारादि शब्दों में उत्पाद विनाश की प्रतीति विरुद्ध हो जायगी। पूर्व श्रुत ककार के सजातीय ककार को विषय मानने पर " सोऽयं ककारः " और "उत्पन्नः ककारः" इन दोनों प्रतीतियोंमें किसी को भी भ्रम रूप नहीं मानना पड़ता है।

ननु सजातीये सोऽयमिति प्रत्यभिज्ञा कुत्र दृष्टेत्यत आह =

पूर्वानुभूत व्यक्ति के सजातीय को विषय करने वाली " सोऽयम् इत्याकारक प्रत्यभिज्ञा आपने कहां देखी है। इस प्रश्न का समाधान करते हैं।

का० १६८ ।

तदेवौषधमित्यादौ सजातीयेऽपि दर्शनात् ।
तस्मादनित्या एवेति वर्णाः सर्वे मतं हि नः ॥

का० अर्थ ।

जिस औषध को मैंने किया था वही औषध दूसरे से किया गया है। इत्यादि स्थल में अन्यकृत औषध को स्व कृत औषध से भिन्न रहने पर भी उस की प्रत्यभिज्ञा होने के कारण उस प्रत्यभिज्ञा को सजातीय विषयक अवश्य मानना होगा। अतः ध्वन्यात्मक एवं वर्णात्मक सभी शब्द अनित्य ही हैं। यह हम नैयायिकों का सिद्धान्त है।

(१) तदेवेति। यदौषधं मयाकृतं तदौषधमन्येनापि कृतमित्यादि दर्शनादिति भावः।

इति सिद्धान्त मुक्तावली समाप्ता ॥

(१) कारिकार्थ से स्पष्ट है।

इति श्री चन्द्रधारिसिंहकृता चन्द्रिका टीका समाप्ता

पदार्थ ७ हैं।

- (१) द्रव्य — नवप्रकार
  - (१) पृथ्वी (२) जल (३) तेज (४) वायु (५) आकाश (६) काल (७) दिशा (८) आत्मा (९) मन
- (२) गुण — चौबीस प्रकार
  - (१) रूप (२) रस (३) गन्ध (४) स्पर्श (५) संख्या (६) परिमाण (परिमिति) (७) पृथक्त्व (८) सँयोग (९) विभाग (१०) परत्व (११) अपरत्व (१२) बुद्धि (१३) सुख (१४) दुःख (१५) इच्छा (१६) द्वेष (१७) कृति (यत्न) (१८) गुरुत्व (१९) द्रवत्व (२०) स्नेह (२१) संस्कार (२२) धर्म (२३) अधर्म (२४) शब्द
- (३) कर्म — पांचप्रकार
  - (१) उत्क्षेपण (२) अपक्षेपण (३) आकुञ्चन (४) प्रसारण (५) गमन (गमन ही में भ्रमण, रेचन, स्पन्दन, उर्ध्वज्वलन, तीर्यगमन ये पांचभी गृहीत हैं।
- (४) सामान्य (जाति) द्रव्य, गुण, कर्म पर रहता है।
  - त्रिविध अथवा द्विविध
  - (१) पर (सत्ता) (२) अपर (घटत्वादिक) (३) परापर (द्रव्यत्वादि)
- (५) विशेष — अनन्त
  - परमण्वादि नित्य द्रव्यों के परस्पर भेदक धर्म विशेष
- (६) समवाय — एकमात्र
  - नित्य सम्बन्ध रूप।
- (७) अभाव — दो प्रकार
  - संसर्गाभाव — त्रिविध
    - (१) प्रागभाव (अनित्य)
    - (२) प्रध्वंसाभाव (अनित्य)
    - (३) अत्यन्ताभाव (नित्य)
  - अन्योन्याभाव (नित्य)

चि० २ क   का० १६-२३

कार्यकारण विचार

- अन्यथासिद्ध भिन्न नियत पूर्ववर्ती कारण है।
  - १ समवायि — द्रव्यमात्र समवायि कारण होता है। (कपालादि)
  - (२) असमवायि — गुणकर्म से भिन्न नहीं होता है। (कपालद्वय संयोग)
  - (३) निमित्त — अणु परिमाण, आत्माद्यतिरिक्त के परम महत्परिमाण, अतिन्द्रिय सामान्य विशेष इन चार से भिन्न पदार्थमात्र निमित्त कारण होते हैं। (व्यापारवत् असाधारण कारण करण यथा दण्डादि)
- प्रागभाव प्रतियोगी कार्य है — घटादि

चि० २ ख

अन्यथा सिद्ध, कार्य विचार।

- अन्यथा सिद्धि
  - (१) दण्डत्व
  - (२) दण्ड रूप
  - (३) आकाश
  - (४) कुलाल पिता
  - (५) गर्दभादि (यह पांचवा आवश्यक है)
- कार्य — घट

का० १०४।

(१) पृथ्वीमात्र, वृत्ति काठिन्य और सुकुमार स्पर्श दोनो हैं।

का० १०५।

(२) पाकज, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, ये चार केवल पृथ्वी में रहते हैं। किन्तु सकल पृथ्वी में नहीं।

(गन्ध का समवायि कारण) क्षिति है।

पाकज अनुष्णाशीत स्पर्शादि, वेग, रूप (सप्तविध नैमित्तिक द्रवत्व, गुरुत्व, रस (षड्विध) गन्ध (द्विविध) और स्थितिस्थापक संस्कार, ये समवाय सम्बन्ध से पृथ्वी में रहते हैं।

- (१) नित्य (परमाणु रूप)
  - (२) पृथ्वी परमाणु में रूप नित्य नहीं है
  - (३) वैशेषिक मत से परमाणुमात्र में पाक और न्याय मत से अवयवीमें भी पाक का० १०५ १०६.
- (२) अनित्य (परमाणु से भिन्न यही अवयववती कहाती है) द्व्यणुकादि ही कार्य रूप पृथ्वी हैं
  - (१) शरीर द्विविध
    - (१) योनिज
      - [१] जरायुज (मनुष्यादि)
      - [२] अण्डज (पक्षी प्रभृति)
    - (२) अयोनिज
      - [१] स्वेदज (मशकादि)
      - [२] उद्भिज्ज (वृक्ष के अङ्कुरादि)
  - (२) इन्द्रिय { घ्राण गन्धकग्राहक है }
  - (३) विषय { द्व्यणुकादि से ब्रह्माण्ड पर्यन्त }

चि० ४ का० ३९-४०

(स्नेह का समवायि कारण)

जल है

[१] अभास्वर शुक्ल रूप [२] मधुर रस [३] शीतस्पर्श [४] संख्या [५] परिमाण [६] पृथक्त्व [७] संयोग [८] विभाग [९] परत्व [१०] अपरत्व [११] गुरुत्व [१२] सांसिद्धिक द्रवत्व [१३] स्नेह [१४] वेग ये १४ गुण समवाय सम्बन्ध से जल में रहते हैं।

- [१] नित्य [परमाणु रूप]
- [२] अनित्य [परमाणु से भिन्न]
  - [१] शरीर — { अयोनिज और वरुण लोकमें प्रसिद्धहै }
  - [२] इन्द्रिय — { रस ग्राहक रसना }
  - [३] विषय — { हिमादि जलमात्रहै }

चि० न० ५ का० ४१-४२

(उष्णस्पर्श का समवायिकारण)

तेज है।

[१] भास्वर शुक्ल रूप [२] उष्णस्पर्श [३] संख्या [४] परिमाण [५] पृथक्त्व [६] संयोग [७] विभाग [८] परत्व [९] अपरत्व [१०] नैमित्तिक द्रवत्व [११] वेग ये ११ गुण समवाय सम्बन्ध से तेज में रहते हैं।

- [१] नित्य [परमाणु रूप]
- [२] अनित्य [परमाणु से भिन्न]
  - [१] शरीर — अयोनिज सूर्य लोक में प्रसिद्ध है
  - [२] इन्द्रिय — रूप ग्राहक आंख
  - (३) विषय
    - (१) भौम (वह्न्यादि)
    - (२) दिव्य (विद्युदादि)
    - (३) औदार्य (उदरस्थ अग्नि)
    - (४) आकरज (सुवर्णादि)

चि० न० ६ का० ४२-४४

अपाकज अनुष्णाशीतस्पर्श का समवायि कारण वायु है।

(१) अपाकज अनुष्णाशीत विलक्षण स्पर्श (२) संख्या (३) परिमाण (४) पृथक्त्व (५) संयोग (६) बिभाग (७) परत्व (८) अपरत्व (९) वेग।

ये ९ गुण समवाय सम्बन्ध से पवन में रहते हैं।

(१) नित्य — परमाणु रूप

(२) अनित्य — (परमाणु से भिन्न

(१) शरीर — { अयोनिज शरीर पिशाचादि का }

(२) इन्द्रिय — { स्पर्श ग्राहक त्वक् }

(३) विषय — { प्राणादि ५महा वायु पर्यन्त }

चि० न० ७ का० ४४-४५

(शब्द का समवायि कारण) आकाश है।

(१) आकाश एक है।
(२) किन्तु उपाधि भेद से नाना प्रतीत होता है।
(३) नित्य है।
(४) परममहत् परिमाणवत् है।
(५) इस का इन्द्रिय श्रोत्र है।

(१) संख्या (२) परिमाण (३) पृथक्त्व (४) संयोग (५) विभाग (६) शब्द ये ६ गुण समवाय सम्बन्ध से आकाश में रहते हैं।



चि० नं० ८ का० ४५-४६

(अतीतादि व्यवहार का असाधारण कारण) काल है।

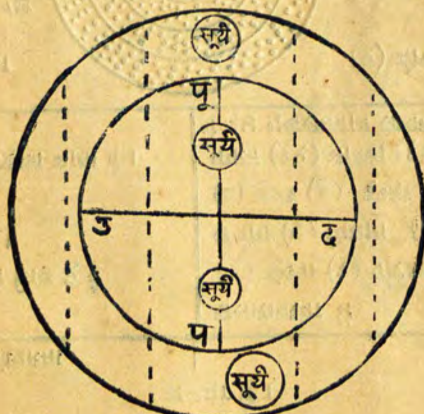
(१) जन्य मात्र का जनक है।
(२) कालिक सम्बन्धेन संसार का आश्रय है।
(३) विभु है।
(४) नित्य है।

यह एक होने पर भी उपाधि भेद से नाना प्रतीत होता है।

(१) संख्या (२) परिमाण (३) पृथक्त्व
(४) संयोग (५) विभाग।
ये ५ गुण समवायेन काल में रहते हैं।

(१) भूत (२) भविष्यत् (३) वर्त्तमान

दक्षिणायन उत्तरायण



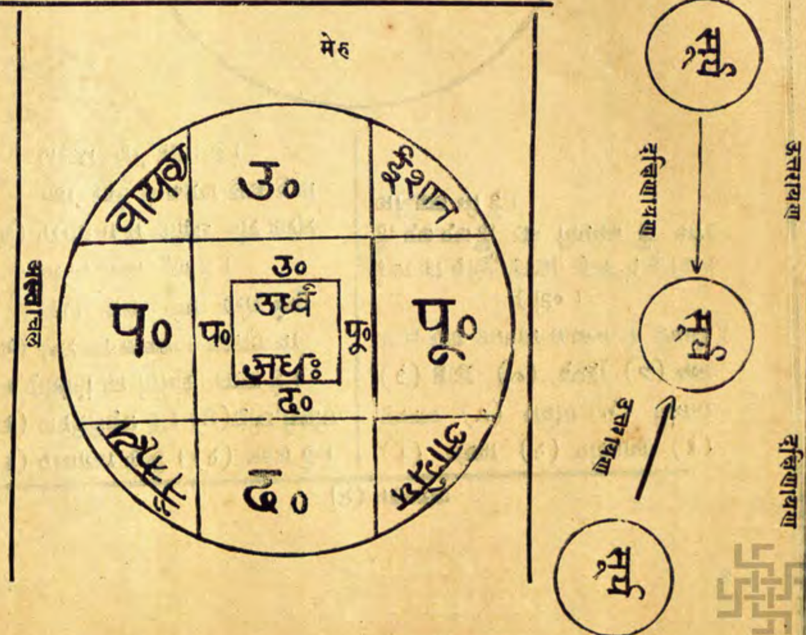
टि० (२) विन्दु पंक्ति सूर्य-मार्ग प्रदर्शक है।
(१) सूर्य के परिस्पन्द से क्षणादि व्यवहार होता है।

चि० नं० ९ का० ४६-४७

(दूरादि व्यवहार का हेतु)
दिक् है।

(१) नित्य है।
(२) एक है।
(३) किन्तु उपाधि भेद से नाना ज्ञात होता है।
(४) परम महत् परिमाणवत् है।

संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, और विभाग ये ५ गुण समवाय सम्बन्धेन दिग्वृत्ति है।



चि० न० १० का० ४७-५१

(ज्ञानाधि करण)

आत्मा है।

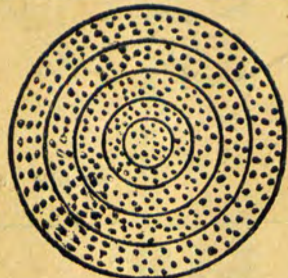
(१) जीवात्मा

(क) संसारी है
(ख) शरीर भेद से भिन्न २ है
(ग) अपरिच्छिन्न है।
(घ) नित्य है
(ङ) बन्ध और मोक्षका भागी है।

संसारावस्था में
(१) संख्या (२) परिमाण (३) पृथक्त्व (४) संयोग (५) विभाग (६) बुद्धि (७) सुख (८) दुःख (९) इच्छा (१०) द्वेष (११) प्रयत्न (१२) भावना (१३) धर्म (१४) अधर्म ये १४ गुणसमवाय सम्बन्धसे जीवात्मामें रहतेहैं

(१) संसारा वस्था

जीवात्मा अनन्त है



(२) मोक्षावस्था

(१) सुख दुःख का सम्बन्ध संसारावस्था है।
(२) आत्माही चैतन्याश्रय है। शरीर इन्द्रिय, मन नहीं है।
(३) क्षणिक विज्ञान नहींहै नित्य विज्ञान नहीं हैं प्रकृति कर्त्री नहीं है। दूसरे की आत्मा उसकी प्रवृत्ति से अनुमेय है। किन्तु अपनी आत्मा "अहम्" इत्याकारक मानस प्रत्यक्ष विषय है।

(१) शरीर से रहित मुक्तावस्था होती है
(२) उस समय आत्मा में संख्यादि ५ गुण मात्र रहते हैं।
(३) आत्यन्तिक दुःख निवृत्तिमोक्ष है।
(४) यह मोक्ष जीव शरीर के भेद प्रत्यक्ष ही से प्राप्य है।

टि० विन्दु आनन्त्य सूचक है।

(२) परमात्मा

(१) परमात्मा एकहै। (२) सर्वज्ञ है। (३) अपरिच्छिन्न है। (४) सृष्टि, स्थिति लय इनतीनों का निमित्त कारण है।
(५) ईश्वर का तत्वज्ञान साक्षात या पुण्य द्वारा जीव शरीर भेद प्रत्यक्ष मे उपयुक्त है।
(६) परमात्मा मे अद्रिष्ट और शरीर नहीं रहने के कारण सुख दुःख उत्पन्न नहीं होता है।

(१) संख्या (२) परिमाण (३) पृथक्त्व (४) संयोग (५) विभाग (६) बुद्धि (७) इच्छा (८) यत्न ये ८ गुण समवाय सम्बन्ध से ईश्वरमे हैं

(टि०)

ईश्वर की बुद्धि, इच्छा कृति ये ३ नित्य हैं, एक एक हैं, सर्व विषयक हैं और अविकल भी हैं।



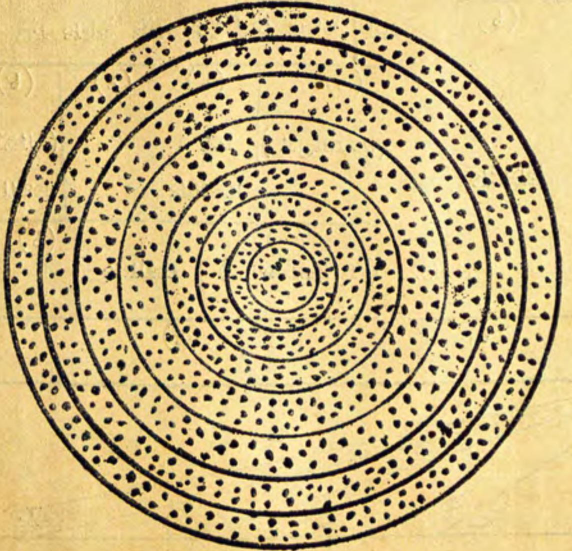
चि० न० ११

सुखादि के उपलब्धि का साधन कर्त्ता इन्द्रिय मन है।

(१) अणु रूप है।
(२) अनन्त है।
(३) आत्म भेद से भिन्न २ है।
(४) नित्य है।

(१) संख्या (२) परिमाण (३) पृथक्त्व (४) सँयोग (५) विभाग (६) परत्व (७) अपरत्व (८) बेग।

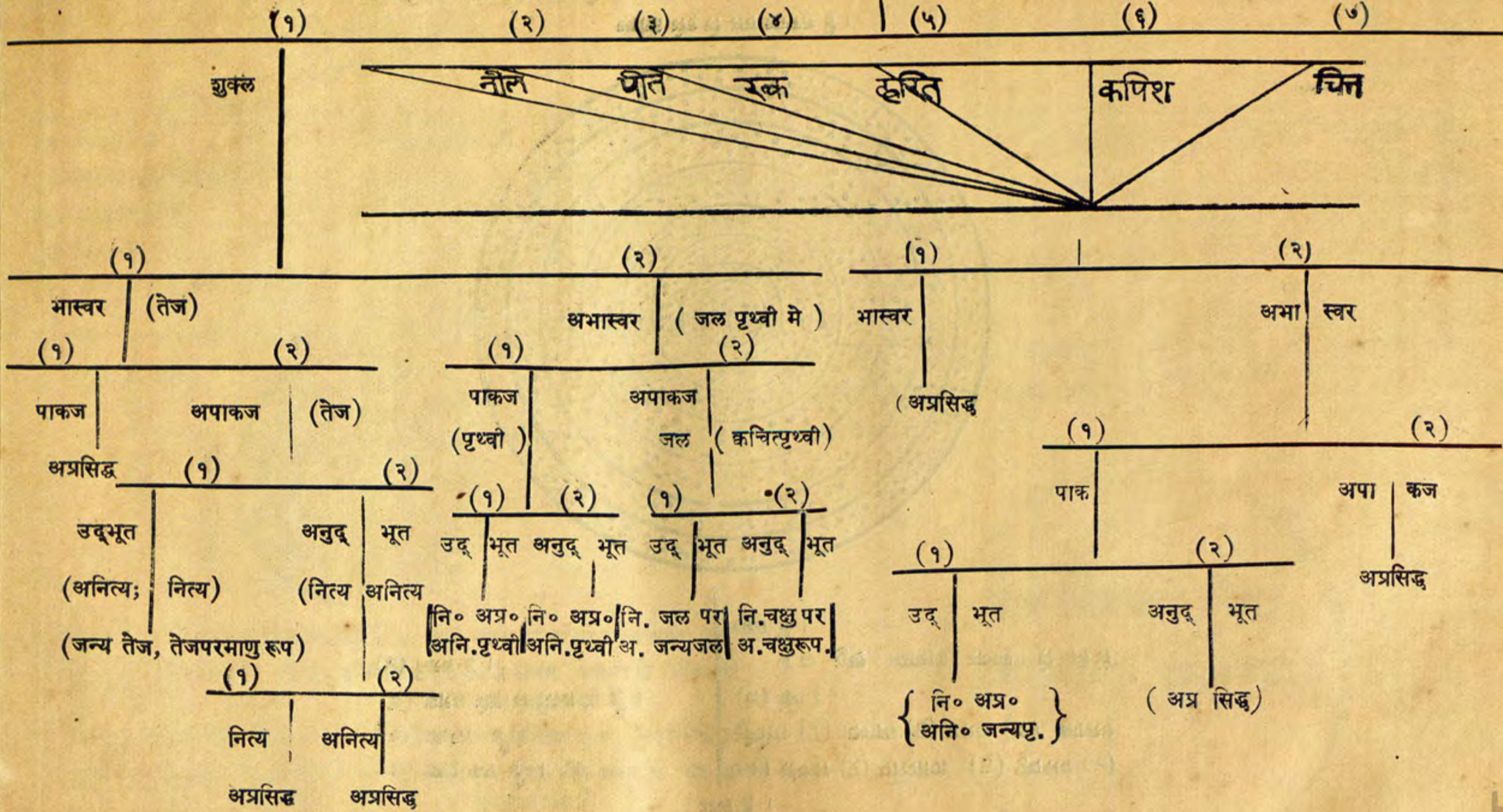
ये ८ गुण समवाय सम्बन्ध से मन में रहते हैं।



व्यक्ति भेद से मन अनन्त है।

टि० विन्दु आनन्त्य सूचक है।

चक्षुर्मात्र ग्राह्यगुण रूप है ।



रूप पर विचार ।

(१) पृथ्वी, जल और तेज के प्रत्यक्ष मे कारण है ।
(२) चक्षुरिन्द्रिय ग्राह्य है ।
(३) चक्षु का सहकारी है ।
(४) पृथ्वी, जल और तेज मे रहता है ।
(५) विशेष गुण है ।
(६) पृथ्वो मे पाकज और जल तेजों मे अपाकज रूप रहते हैं ।
(७) असमवायि एवं निमित्त कारण हैं ।
(८) नित्य अनित्य दोनो हैं पाकाश्रय पृथ्वी मे अनित्य अन्यत्र नित्यगत नित्य तद्भिन्न अनित्य हैं ।
(९) शुक्लादि सात प्रकार के हैं ।
(१०) अपाकज रूप कारण गुणपूर्वक है ।
(११) पाकज अकारण गुणपूर्वक है ।
(१२) पृथिव्यादि ३से जन्य है ।
(१३) पृथ्वी, जल और तेज वृत्ति गुणादि का समानाधिकरण है
(१४) उक्त द्रव्य मे अवृत्ति गुणादि के साथ वैयधिकरण्य है ।
(१५) चक्षुःसंयुक्तसमवाय से ग्राह्य है ।
(१६) समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१७) रूपत्वप्रतियोगिक मवायानुयोगी हैं ।
(१८) रूपाश्रयनिष्ठ समवायादि का प्रतियोगी है ।
(१९) अकर्मज है ।
(२०) व्याप्यवृत्ती है (किसी के मत से अव्याप्यवृत्ती है) ।
(२१) पृथिव्यादि ३ का साधारण धर्म है ।
(२२) इन तीनों से भिन्न मे नहीं रहता है ।
(२३) द्रव्यादि प्रत्यक्ष मे कारण है । का० १००
(२४) का० ३५ के उत्तरार्ध मुक्तावली मे "नच यत्र" इत्यादि ग्रन्थ और अपर परिष्कृत लक्षण से स्वरस आता है कि अपाकज पृथ्वी भी लभ्य है ।

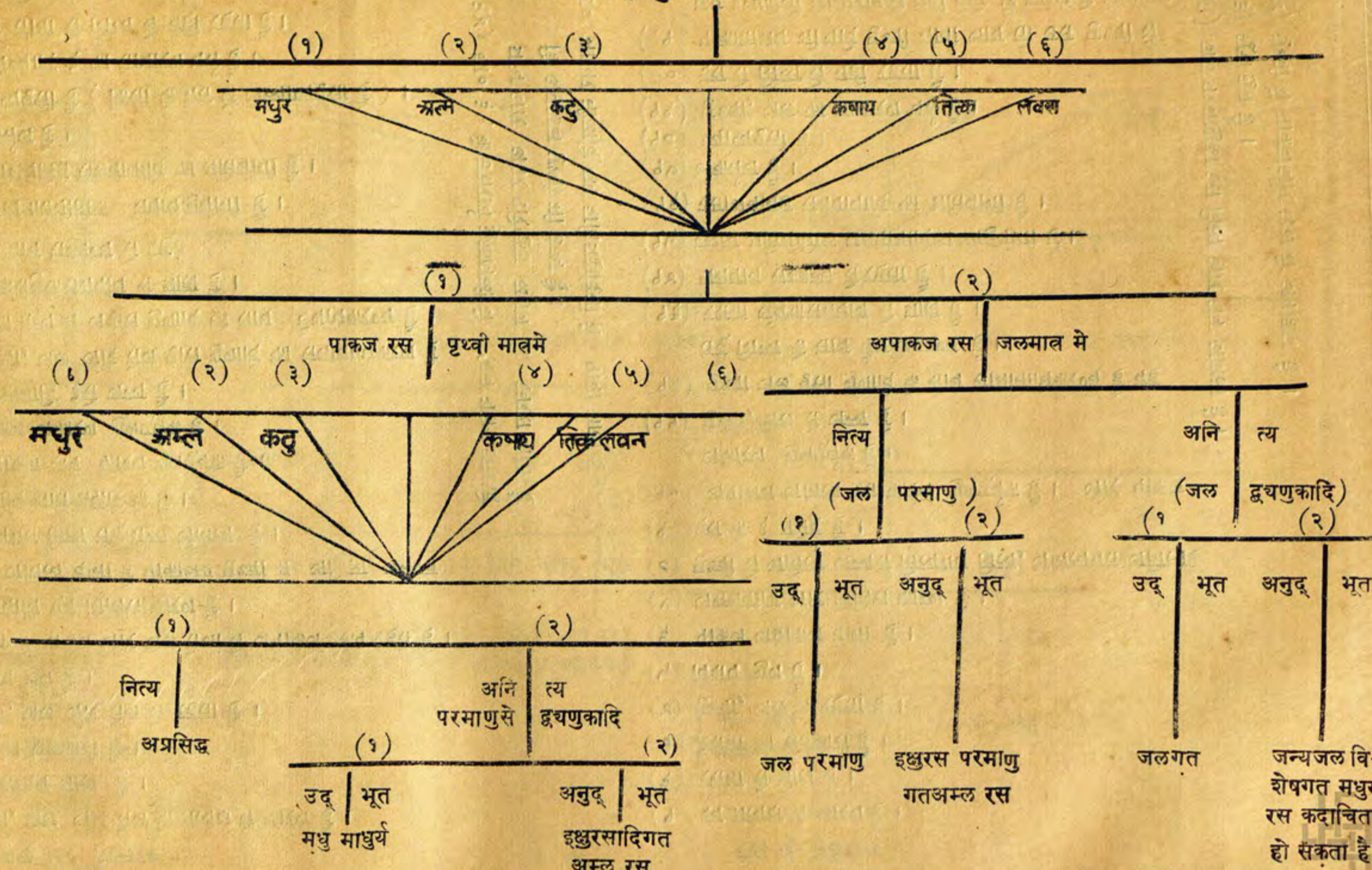
टि० भास्वर नीलादि रूप शानिग्रहादियों मे पाया जाता है ।

रस पर विचार ।

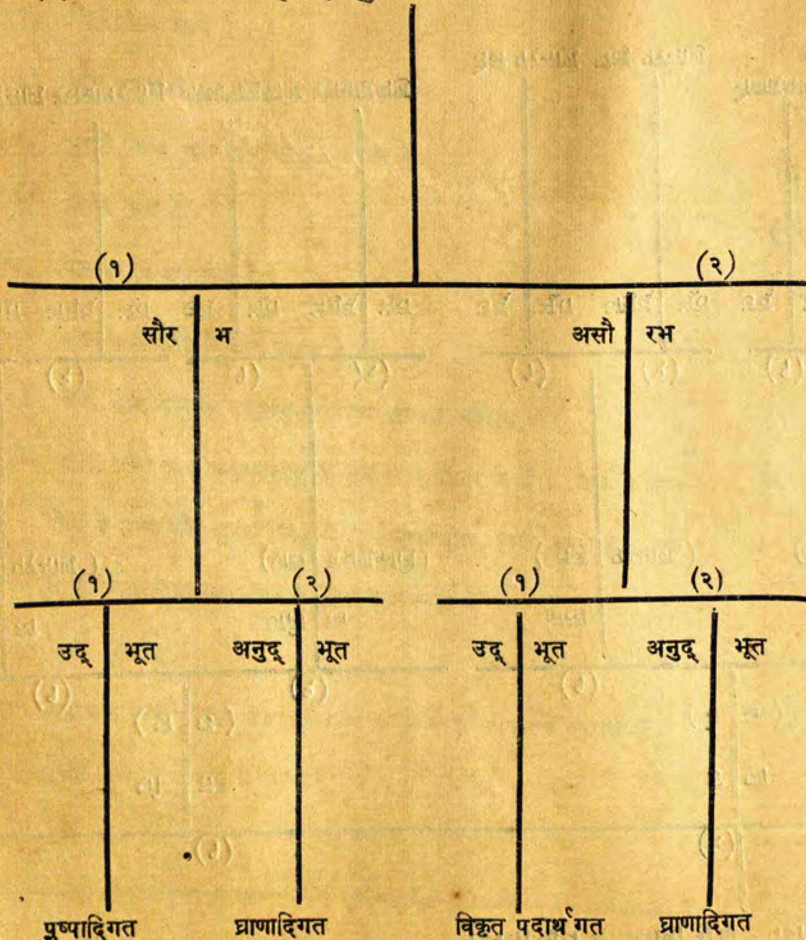
(१) स्व प्रत्यक्ष मे कारण है ।
(२) रसना से ग्राह्य है ।
(३) रसना का सहकारी है ।
(४) पृथ्वी, जल मे रहता है ।
(५) विशेष गुण है ।
(६) पाकज अपाकज दोनो है ।
(७) असमवायि और निमित्त कारण है ।
(८) पृथ्वी मे अनित्य अन्यत्र नित्यगत नित्य, अनित्यगत अनित्यहै
(९) इस के ६ प्रभेद हैं ।
(१०) अपाकज अनित्य रस कारण गुणपूर्वक है । और पाकज अकारण गुणपूर्वक है ।
(११) पृथ्वी, जल से जन्य है ।
(१२) पृथ्वी जल वृत्ती गुणादि के साथ सामानाधिकरण्य है वह तद् भिन्न के साथ वैयधिकरण्य है ।
(१३) रसना संयुक्तसमवाय से ग्राह्य है ।
(१४) समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१५) रसत्व प्रतियोगिक समवायादिका अनुयोगी है ।
(१६) रसाश्रयनिष्ठ समवायादि का प्रतियोगी है ।
(१७) अकर्मज है ।
(१८) व्याप्यवृत्ती है ।
(१९) पृथ्वी, जल का साधारण धर्म है ।
(२०) इस से भिन्न मे नहीं रहता है ।
(२१) पाकानाश्रय भी यदि पृथ्वी मानी जाय तो उस पृथ्वी मे रूप रसादियों की परावृत्ति नहीं होने के कारण वे अपाकज होंगे ।
(२२) जल परमाणुका रस नित्य और सब अनित्य है ।
(२३) मूर्त्तो गुण है ।
(२४) पृथ्वी मे पाकज और जल मे अपाकज है ।

चि० नं० १३

रसना ग्राह्य गुण रस है।



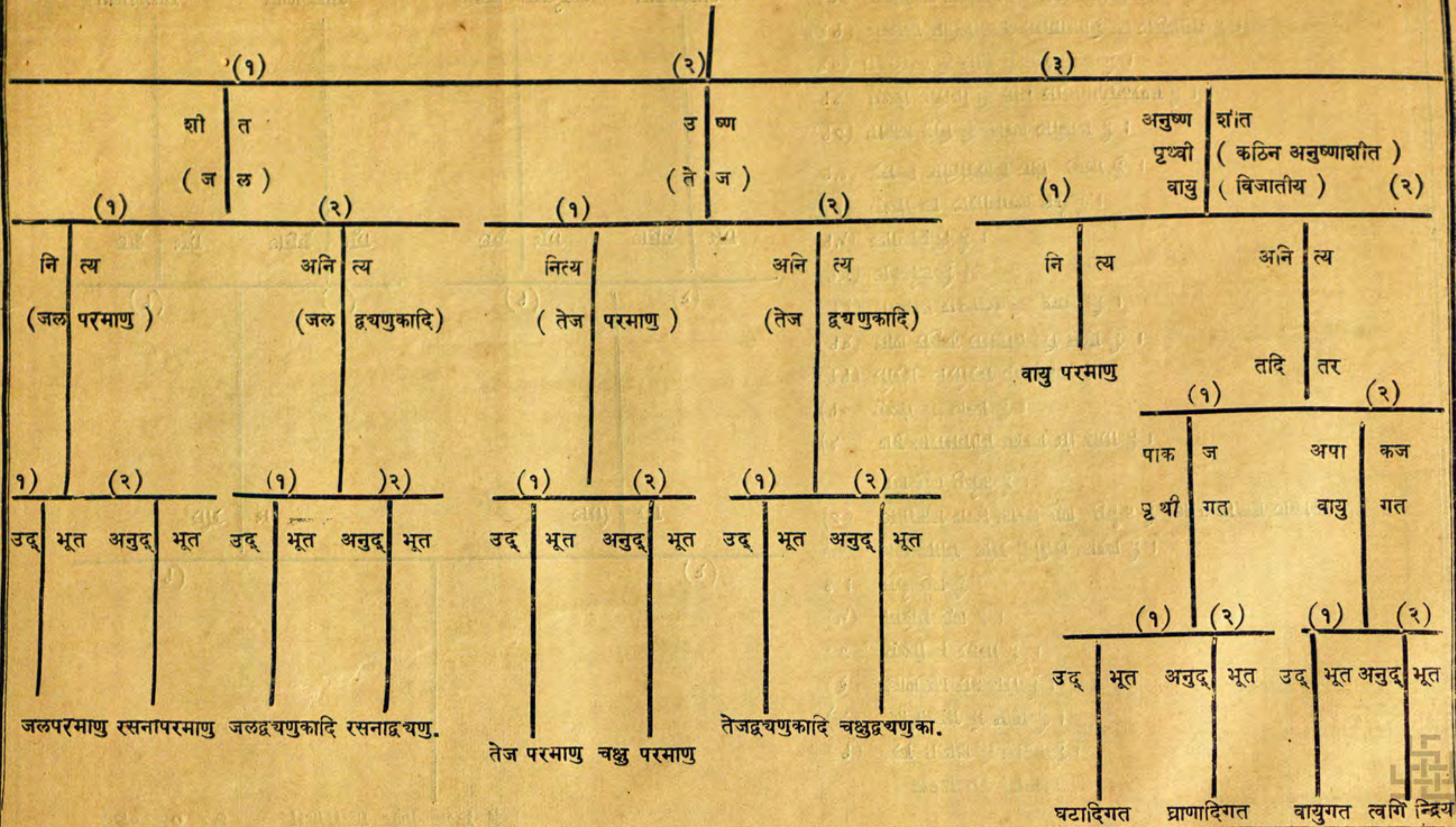
चि० न० १४ घ्राणग्राह्य गुण गन्ध है ।



गन्ध पर बिचार।

(१) स्व प्रत्यक्ष मे कारण है ।
(२) घ्राणेन्द्रिय से ग्राह्य है ।
(३) घ्राण का सहकारी है ।
(४) पृथ्वी में रहता है ।
(५) विशेष गुण है ।
६ । मूर्त गुण है ।
(७) असमवायि और निमित्त कारण है ।
(८) अपाकज गन्ध कारण गुण पुर्वक है और पाकज अकारण गुण पुर्वक है ।
(९) यह असमवायि कारण भी होता है ।
(१०) पृथ्वी से जन्य है ।
(११) सौरभ असौरभ दो प्रभेद हैं ।
(१२) घ्राण संयुक्त समवाय से ग्राह्य है ।
(१३) समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१४) अकर्मज है ।
(१५) व्याप्यवृत्ति है ।
(१६) पृथ्वी का असाधारण धर्म है ।
(१७) इस से अतिरिक्त मे नहीं रहता है ।
(१८) पाकज होने के कारण अनित्य है ।
(१९) पृथ्वी वृत्तियों के साथ सामानाधिकरण्य है ।
(२०) तद्भिन्नों के साथ वैयधिकरण्य है ।
(२१) गन्धत्व प्रतियोगिक समवायादि का अनुयोगी है ।
(२२) पृथ्वीनिष्ठ समवाय का प्रतियोगी है ।

त्वगिन्द्रिय मात्रग्राह्य गुण स्पर्श है ।



(१) त्व प्रत्यक्ष मे कारण है।

(२) त्वगिन्द्रिय ग्राह्य है।

(३) त्वक् सहकारी है।

(४) पृथ्वी, जल, तेज और वायु मे रहता है।

(५) विशेष गुण है।

(६) पाकज एवं अपाकज है।

(७) असमवायि और निमित्त कारण है।

(८) जल, तेज, वायु के परमाणुगत नित्य अन्यत्र अनित्य हैं।

(९) शीत, उष्ण और अनुष्णाशीत के भेद से ३ प्रकार के हैं। जल मे शीत तेज मे उष्ण और पृथ्वी वायु मे अनुष्णाशीत स्पर्श रहते हैं। उस मे भी पृथ्वी मे पाकज और वायु मे अपाकज स्पर्श है।

(१०) मूर्त्त गुण है।

(११) अपाकज स्पर्श कारण गुणपूर्वक और अन्य स्पर्श अकारण गुणपूर्वकहै।

(१२) पृथ्वी जल, तेज वायु से जन्य है।

(१३) त्वक् संयुक्त समवाय से ग्राह्य है।

(१४) स्पर्शत्व प्रतियोगिक समवाय का अनुयोगी है।

(१५) पृथिव्यादि ४के समवाय का प्रतियोगी है।

(१६) अकर्मज है।

(१७) व्याप्य वृत्ती है।

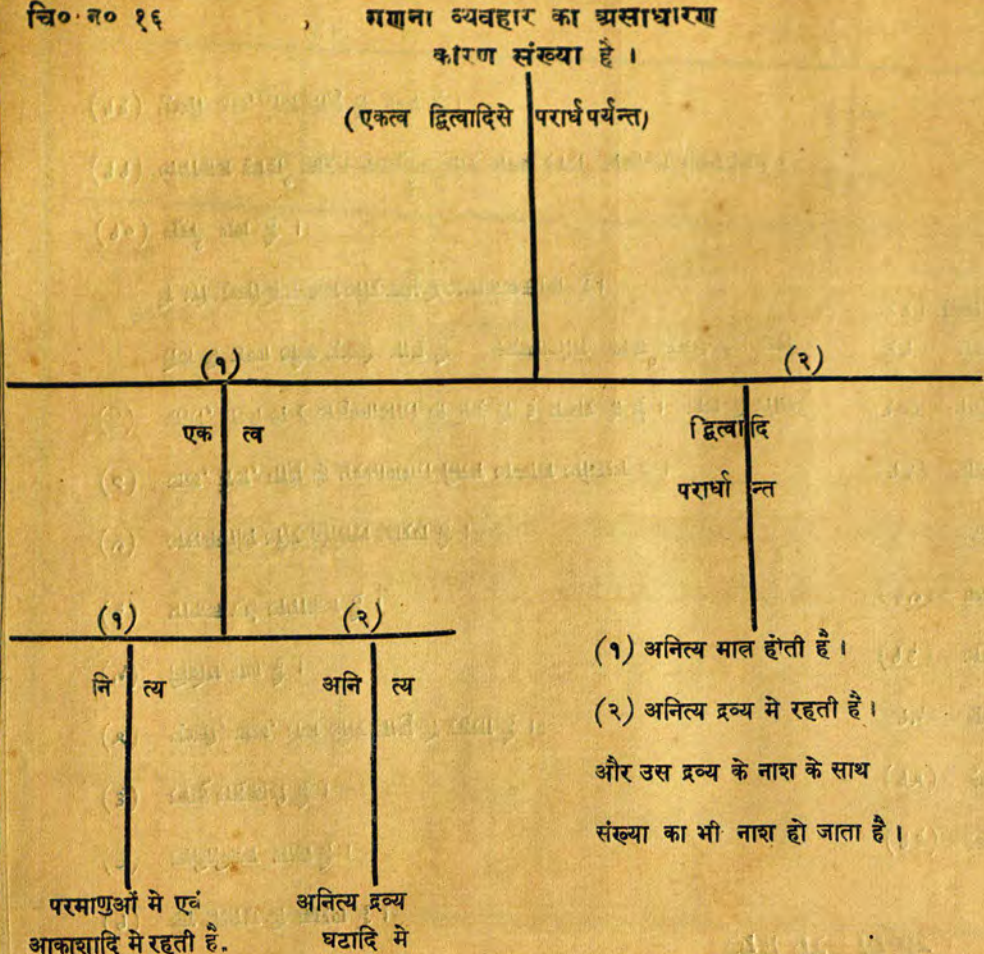
(१८) कठिन और सुकुमार स्पर्श पृथ्वी मात्र वृत्ती है।

(१९) जल, तेज, वायु के परमाणु का स्पर्श नित्य है अन्यत्र अनित्य है।

(२०) अपाकज स्पर्श असमवायि कारण होता है।

(२१) उष्ण स्पर्श असमवायि और निमित्त कारण भी होते हैं।

(२२) पृथ्वी, जल, तेज वायु अन्यतमानुयोगिकसमवायका प्रतियोगीहै.



(१) स्वकीय प्रत्यक्ष मे कारण है।

(२) चक्षु और त्वचासे ग्राह्य है।

(३) चक्षु त्वचा का सहकारी है।

(४) नव द्रव्य मे रहता है।

(५) सामान्य और मूर्त गुण है।

(६) अपाकज है।

(७) असमवायि निमित्त कारण है।

(८) एकत्व संख्या, असमवायि और निमित्तदोनोंकारणहै द्वित्वादिअनित्यहैं

(९) अनन्त है।

(१०) एकत्व कारण गुणपूर्वकहै और द्वित्वादि अकारणगुणपूर्वक हैं

(११) द्रव्य से जन्य है।

(१२) परिमाण का जनक है।

(१३) सकल गुण से सामानाधिकरण्य है।

(१४) गुणत्वादि के साथ वैयधिकरण्य है।

(१५) त्वक् संयुक्त चक्षु-संयुक्त समवाय दोनोसे ग्राह्य है।

(१६) समवाय सम्बन्ध से रहता है।

(१७) संख्यात्व प्र० समवाय का अनुयोगी है।

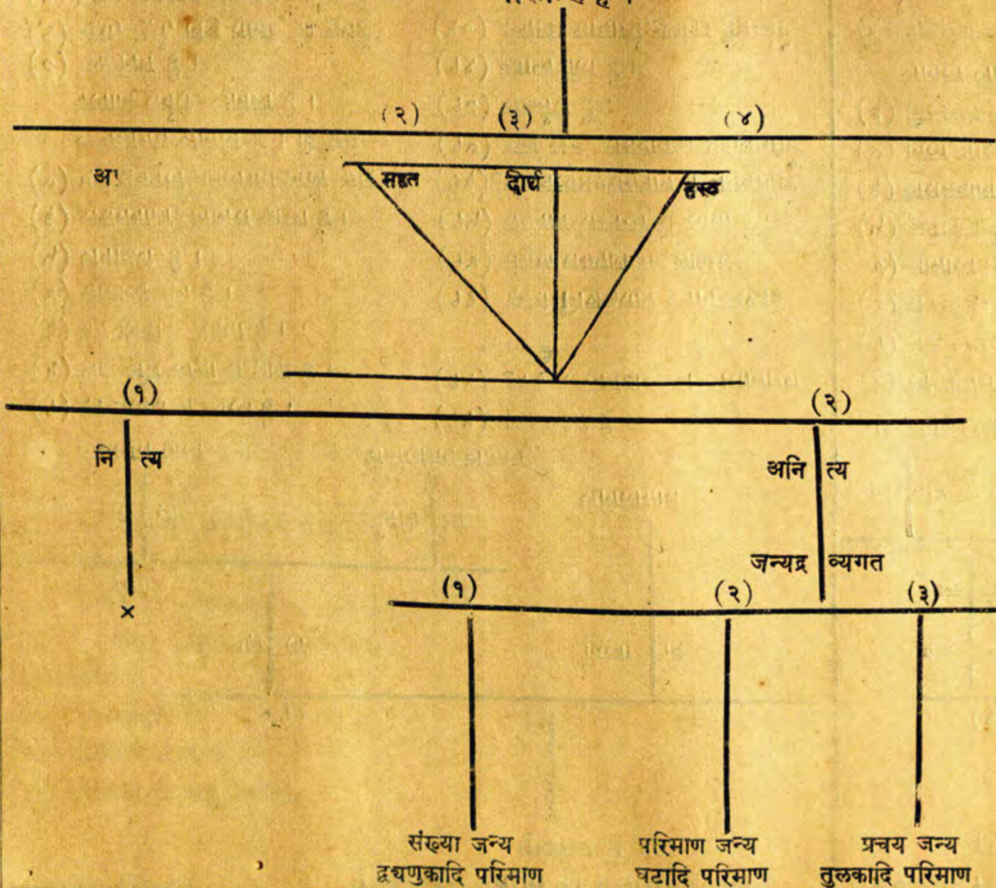
(१८) द्रव्यानुयोगिक समवाय का प्रतियोगी है।

(१९) गणना व्यवहार का असाधारण कारण है।

(२०) नित्यगत एकत्व नित्य और अनित्यगत एकत्व अनित्य है।

(२१) व्यासज्यवृत्ति [धर्मद्वय समनियतवृत्ति] द्वित्वादि संख्यारूप धर्म अपेक्षा बुद्धिसे उत्पन्न होता है। एकाश्रय मे समवाय से अनेकाश्रय मे समवाय अन्यतर पर्याप्ति सम्बन्ध से रहती हैं और अपेक्षा बुद्धि एवं आश्रयके नाशसे नष्ट होतीहैं।

चि० न० १७ मान व्यवहार का असाधारण कारण परिमाण है ।



परिमाण पर विचार ।

(१) स्व प्रत्यक्ष मे कारण है ।
(२) चक्षु और त्वचा दोनो से ग्राह्य है ।
(३) नवो द्रव्यों मे रहता है
(४) सामान्य गुण है ।
(५) अपाकज है ।
(६) असमवायि निमित्त कारण है
(७) नित्यगत नित्य, अनित्यगत अनित्य है ।
(८) अणुत्व, दीर्घत्व, महत्व ह्रस्वत्व भेद से चतुर्विध है ।
(९) भूत, मूर्त, विभु तीनों का गुण है ।
(१०) कारण गुणपूर्वक है ।
(११) संख्या, परिमाण प्रचयजन्य है ।
(१२) अनित्य परिमाण परिमाण का जनक है ।
(१३) गुण, कर्म जाति के साथ सामानाधिकरण्य है !
(१४) इन से भिन्नके साथ वैयधिकरण्य है ।
(१५) संयुक्त समवाय से प्रत्यक्ष होता है और समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१६) परिमाणत्व प्र० समवाय का अनुयोगी है.
(१७) द्रव्य अनु. समवाय का प्रतियोगी है.
(१८) अकर्मज है ।
(१९) व्याप्यवृत्ति है ।
(२०) द्रव्यों का धर्म है ।
(२१) गुणों मे नहीं रहता है ।
(२२) अनुमान से ग्राह्य है ।

टि० प्रचय = शिथिलाख्य संयोग ?

चि० न० १८

पृथक्त्व इस प्रतीति का असाधारण कारण पृथक्त्व है ।

(१) एकत्व

(१) नित्य — नित्यगत नित्य

(२) अनित्य — अनित्यगत अनित्य

(२) द्वित्वादि — अनित्यमात्र

(१) स्व प्रत्यक्ष मे कारण है ।
(२) चक्षु और त्वचा से ग्राह्य है ।
(३) नव द्रव्यों मे रहता है ।
(४) सामान्य गुण है ।
(५) अपाकज है ।
(६) असमवायि, निमित्त कारण है ।
(७) एक पृथक्त्व नित्यगत नित्य और अनित्यगत अनित्य है । द्वि पृथ—क्त्वादि सर्वत्र अनित्य है ।
(८) एक विध है ।
(९) भूत, मूर्त, विभु तीनों का गुण है
(१०) एक पृथक्त्व कारण गुणपूर्वक है द्वि पृथक्त्वादि अकारण गुणपूर्वक है
(११) द्रव्य जन्य है ।
(१२) पृथक् २ व्यवहार का असाधारण कारण है ।
(१३) इनसे भिन्नकेसाथ वैयधिकरण्य है
(१४) संयुक्त समवाय से ग्राह्य है ।
(१५) समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१६) पृथक्त्वत्वप्र०समवायका अनुयोगी है
(१७) द्रव्य अनु. समवायका प्रतियोगी है
(१८) अकर्मज है ।
(१९) व्याप्यवृत्ति है ।
(२०) द्रव्योंका साधार्म्य;गुणोंका वैधर्म्य है

चि० न० १९

दो द्रव्य पदार्थों के मेल का नाम संयोग है ।

(१) एक कर्मज — श्येन शैलसंयोग

[१] अभिघात (शब्दजनक)

[२] नोदन (शब्दकाअनुत्पादक)

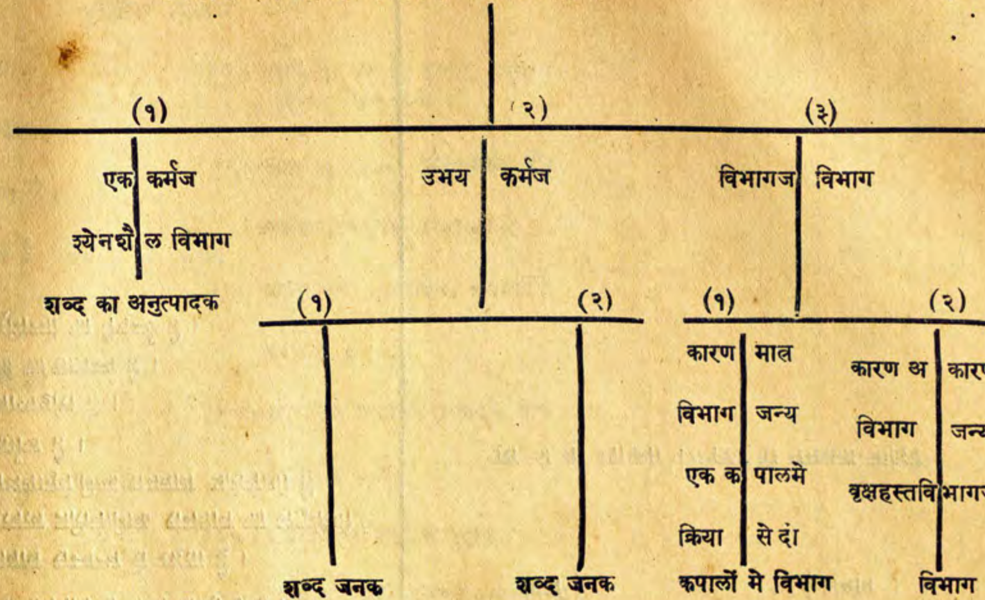
(२) उभय कर्मज — टक्कर

(३) संयोगज संयोग — कपाल वृक्ष संयोग से जो घट वृक्ष संयोग

(१) स्व प्रत्यक्ष मे कारण है ।
(२) चक्षु और त्वचा से ग्राह्य है ।
(३) सकल द्रव्यों मे रहता है ।
(४) सामान्य गुण है ।
(५) अपाकज है ।
(६) असमवायि निमित्त कारण है ।
(७) नित्य और अनित्य है ।
(८) नित्यगत नित्य और अनित्यगत अनित्य और अनन्त है ।
(९) अकारण गुणपूर्वक है ।
(१०) द्रव्यजन्य है ।
(११) संयोगज संयोग का जनक है ।
(१२) द्रव्यत्व के साथ समानाधिकरण्य है
(१३) संयुक्त समवाय से ग्राह्य है ।
(१४) समवाय सम्बन्ध से रहता है :
(१५) संयोगत्व प्र० समवाय का अनुयोगी है ।
(१६) कर्मज है ।
(१७) अव्याप्यवृत्ति है ।
(१८) द्रव्यों का धर्म है ।
(१९) गुणादियों मे नहीं रहता है ।
(२०) कोई विभुओं का परस्पर संयोग नहीं मानते हैं ।
(२१) गजादि के आकार का चक्षु और त्वक् संयुक्त समवायसे प्रत्यक्ष होता है । वह [आकार] अवयवों का आरम्भक संयोग रूप है ।

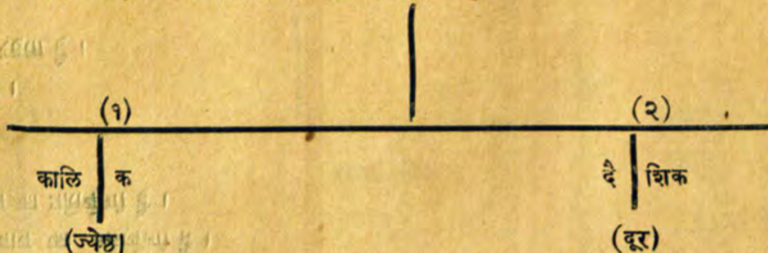
विभक्ति प्रत्यय का निमित्त विभाग है।

(१) स्व प्रत्यक्ष मे कारण है।
(२) चक्षु और त्वचा से ग्राह्य है।
(३) सकल द्रव्यों मे रहता है।
(४) सामान्य गुण है।
(५) अपाकज है।
(६) असम्वायि और निमित्त कारण है।
(७) नित्यगत नित्य और अनित्यगत अनित्य है।
(८) अनन्त है।
(९) सकल द्रव्यों का गुण है।
(१०) द्रव्य जन्य है।
(११) अकारण गुणपूर्वक है।
(१२) विभागज विभाग आदि का जनक है।
(१३) द्रव्यत्व के साथ सामानाधिकरण्य और गुणत्वादि के साथ वैयधिकरण्य हैं।
(१४) संयुक्त समवाय सम्बन्धसे ग्राह्य है।
(१५) समवाय सम्बन्ध से रहता है।
(१६) विभागत्व प्र० समवाय का अनुयोगी है।
(१७) द्रव्य अनु. समवाय का प्रतियोगी है।
(१८) कर्मज है।
(१९) अव्याप्यवृत्ति है।
(२०) द्रव्यों मे रहता है।
(२१) गुणादियों मे नहीं रहता है।



चि० न० २१

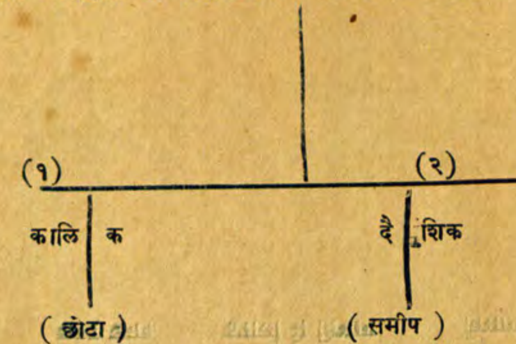
परव्यवहार का असाधारण कारण परत्व है ।



(१) स्व प्रत्यक्ष मे कारण है ।
(२) दैशिक परत्व चक्षु और त्वचा से ग्राह्य है ।
(३) कालिक परत्व अतीन्द्रिय है ।
(४) दैशिक परत्व, चाक्षुष, त्वाच ज्ञान सहकारी है ।
कालिक परत्व सहकारी नहीं है ।
(५) मूर्त मे रहता है ।
(६) सामान्य गुण है ।
(७) अपाकज है ।
(८) असमवायि और निमित्त कारण है ।
(९) नित्यगत नित्य, अनित्यगत अनित्य है ।
(१०) द्विविध है ।
(११) भूत, मूर्त दोनो का गुण है ।
)१२) अकारण गुणपूर्वक है ।
(१३) मूर्त द्रव्य जन्य है ।
(१४) परत्व व्यवहार का असाधारण कारण है ।
(१५) मूर्त द्रव्यनिष्ठ धर्म्मों के साथ सामानाधिकरण्यहै
(१६) इन से भिन्न के साथ वैयधिकरण्य है ।
(१७) संयुक्त समवाय सम्बन्ध से ज्ञेय है ।
(१८) समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१९) परत्वत्व प्रतियोगिक समवाय का अनुयोगी है
(२०) स्वाश्रयानुयोगिक समवाय प्रतियोगी है ।
(२१) अकर्मज है ।
(२२) व्याप्यवृत्ति है ।
(२३) मूर्त्तों का साधर्म्य है ।
(२४) तद्भिन्नों का वैधर्म्य है ।

चि० न० २२

अपर व्यवहार का असाधारण कारण अपरत्वहै ।



इस की भी व्याख्या परत्ववत् ही समझना चाहिये ।

(१) बुद्धि का समवायि कारणआत्मा है

(२) असमवायि कारण आत्ममनःसंयोग है

(३) निमित्त कारण त्वङमनः संयोग है।

(४) निमित्त कारणचर्ममनः संयोग है

(पक्षधर भिश्र का मत)

(५) साधारण कारण ईश्वरज्ञान ईश्वरेच्छा

ईश्वर प्रयत्न काल अदृष्ट हैं।

(६) विषयमात्र के प्रत्यक्षमे कारण है।

(७) निर्विकल्पक अतीन्द्रिय है। और

सविल्पक मनोग्राह्य है।

(८) वह आत्माका सहकारी कारण है।

(९) आत्मा मे रहता है। परमात्मामे

नित्य जीवात्मा मे अनित्य।

(१०) विशेष ण है।

(११) इसके दो भेद हैं, स्मृति, अनुभव
(विस्तर चित्र देखो)

(१२) कारण गुणपूर्वक जीवात्मामे और

अकारण गुणपूर्वक परमात्मा मे

(१३) आत्म वृत्ति गुणादिका समानाधि

करण है।

(१४) आत्मेतर द्रव्यनिष्ठ गुणादिके साथ

वैयधिकरण्य है।

(१५) समवाय सम्बन्ध से रहता है।

(१६) ज्ञानत्वप्रतियोगिकसमवायानुयोगी है

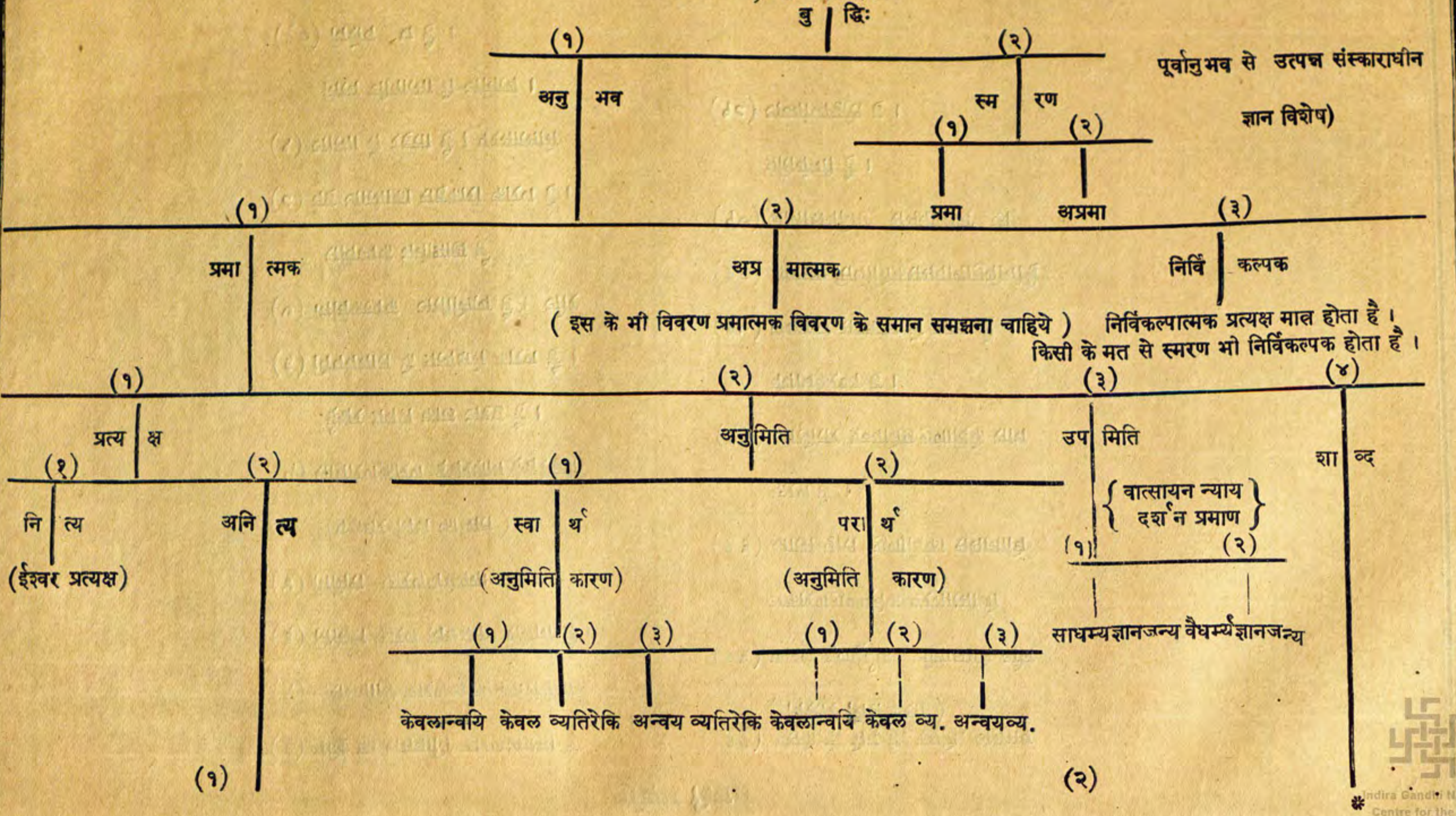
(१७) ज्ञांनाश्रयनिष्ठ समवायादि का

प्रतियोगी है।

(१८) अव्याप्यवृत्ति ह।

चि० न० २३

का० ५०,५१,५२,५३,५७



१ लौकिक

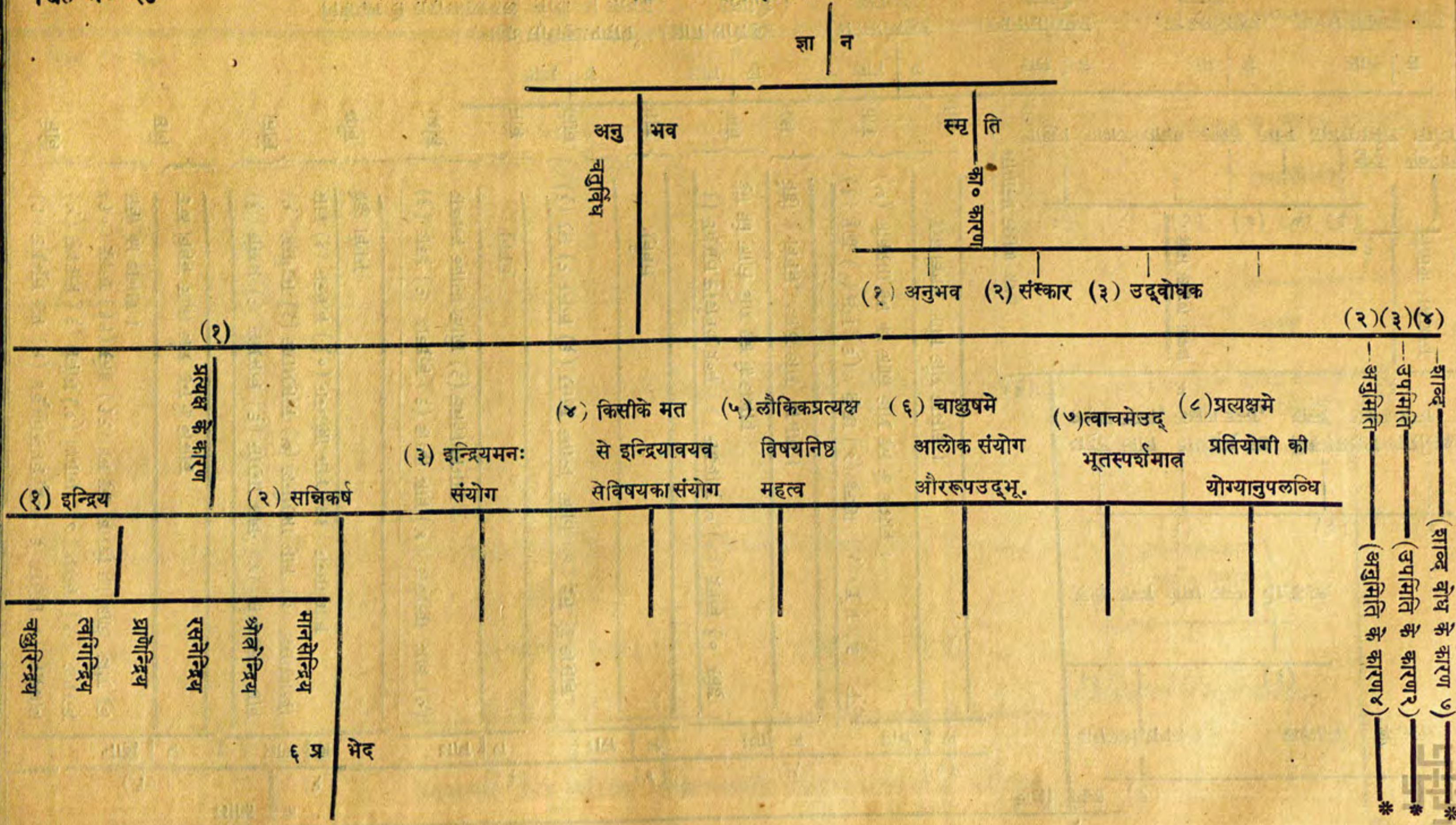
- (१) चाक्षुष
  - निर्वि: (१) उद्भूत रूप (२) उद्भूतरूपवद्द्रव्य (३ संख्या ४) परिमाण (५) पृथक्त्व (६) संयोग (७) विभाग (८) परत्व (९) अपरत्व (१०) द्रवत्व (११) स्नेह (१२) वेग इन बारहों की जाति और इन सबों का अभाव।
  - सवि: उक्त विषय जाति और उन के अभाव
- (२) घ्राणज
  - निर्वि: (१) सौरभ (२ सौरभत्व (३) सौरभा भाव (४) सौरभत्वा भाव (५) असौरभ (६) असौरभत्व (७) असौरभा भाव (८) असौरभत्वा भाव (९) गन्धत्व (१०) गन्धत्वा भाव (११) गन्धा भाव
  - सवि: येही विषय
- (३) श्रावण
  - निर्वि: (१) शब्द (२ शब्दत्व (३) शब्दा भाव (४) शब्दत्वा भाव (५) शब्दत्व व्याप्य जाति (६) उनका अभाव।
  - सवि: पूर्ववत्
- (४) रासन
  - निर्वि: (१) रस (२ रसत्व (३) रसत्व व्याप्य जाति (४) इन के अभाव
  - सवि: पूर्ववत्
- (५) त्वाच
  - निर्वि: (१) उद्भूत स्पर्शवत् द्रव्य (२) संख्यादि ७ (९) द्रवत्व १० स्नेह इन की जाति और इन के अभाव
  - सवि: येही २ विषय, जाति और अभाव।
- (६) मानस
  - निर्वि: (१) बुद्धि (२) सुख (३) दुःख (४) इच्छा (५) द्वेष (६) यत्न (७) जीवात्मा इन की जाति और इन के अभाव।
  - सवि: उक्त विषय जाति और अभाव।

२ अलौकिक

- (१) शक्यार्थ विषयक
  - (१) रूढि जन्य
  - (२) योग जन्य
  - (३) यो.रू.ज.
- (२) लक्ष्यार्थ विषयक
  - (१) जहत् स्वार्थ लक्षण जन्य,
  - (२) अजहत् स्वा. लक्षण जन्य,
  - (३) निरूढलक्षण जन्य
  - (४) स्वारसिक लक्षण जन्य,

- (१) सामान्य लक्षण जन्य
  - चाक्षुष (चक्षुः सन्निकृष्ट पदार्थ विशेषण से तदाश्रयसकल व्यक्ति का प्रत्यक्ष)
  - घ्राणज (घ्राण सन्निकृष्ट इत्यादि.)
  - श्रावण (श्रोतसन्निकृष्ट इत्यादि.)
  - रासन (रसनासन्निकृष्ट इत्यादि.)
  - त्वाच (त्वक्सन्निकृष्ट इत्यादि)
  - मानस (म०सन्निकृष्टइत्यादि
- (२) ज्ञान लक्षण जन्य
  - (१) चाक्षुष (२ घ्राणज (३) श्रावण (४) रासन (५) त्वाच (६) मानस
- (३) योगज धर्मजन्य
  - १ युक्त धर्मज.
  - युञ्जान धर्मज.

ज्ञान के कारणता का चित्र।



* * *

(१) चक्षु

आलोक संयोगाव. महत्वाव. उ.भू.रू.व.

सन्निकर्ष	विषय
१.संयोगसे	घटादिद्रव्य का प्र.
२.संयुक्त समवायसे	द्र.समवेतगुणादिकाप्र०
३.संयुक्त समवेत समवायसे	द्रव्यसमवेतगुणादिगतजातिप्र०
४.संयुक्तविशेषणतादि से	चाक्षुषप्रत्यक्षविषय अभा. प्र०

यह दिग्दर्शन मात्र है (विशेषण विशेषणता सन्निकर्ष घटाभावमे घटाभाव का प्रत्यक्ष इत्यादि स्थलों मे होता है) इत्यादि।

(२) त्वक्

उद्भूत स्पर्शावच्छिन्न महत्वावच्छिन्न

सन्निकर्ष	विषय
१.संयोगसे	घटादिद्रव्य का प्र०
२. संयुक्त समवायसे	द्रव्यगत
३.संयुक्तसमवेतसमवाय से	गुणादि ३ काप्र० द्रव्यवृत्तीगुणादिगतजातिका प्र०
४.संबुक्त विशेषण तादि से	द्र.ग.अ.प्र.

यह दिग्दर्शन मात्र है (विशेषण विशेषणता सन्निकर्ष अभावगत अभाव का प्र. इत्वादि।

(३) घ्राण

महत्वावच्छिन्न, उद्भूत गन्धावच्छिन्न

सन्निकर्ष	विषय
१. संयुक्त समवायसे	द्रव्यगतगन्धका प्र०
२.संयुक्तसमवेत समवाय से	द्रव्यवृत्तीगन्धगतजातिका प्र०
३. संयुक्त विशेषण तादि से	द्रव्यगत अभावादिका प्र०

यह दिग्दर्शन मात्र है (विशेषण विशेषणता सन्निकर्ष अभावगत अभाव का प्र०) इत्यादि।

(४) रसना

महत्वावच्छिन्न उद्भूत रसावच्छिन्न

सन्निकर्ष	विषय
१.संयुक्तसमवाय से	द्रव्यगत रसकाप्र०
२. संयुक्त समवेत समवायसे	द्रव्यनिष्ठ रसगतजातिका प्र०
३ संयुक्त विशेषणता से	द्रव्यनिष्ठ अभावका प्र०

यह दिग्दर्शन मात्र है (विशेषण विशेषणता सन्निकर्ष अभावगत अभाव का प्र०) इत्यादि।

(५) श्रोत्र

श्रोत्र

सन्निकर्ष	बिषय
१. समवायसे	शब्दकाप्र०
२.समवेत समवाय से	शब्दसमवेतशब्दत्व का प्र०
३.समवेत विशेषणतादिसे	शब्दगत अभावादि का प्र०

यह दिग्दर्शन मात्र है (विशेषणविशेषणता सन्नि कर्ष अभावगत अभाव का प्र०) इत्यादि।

(६) मन

मन:

सन्निकर्ष	विषय
१.संयोगसे	आत्माका प्र०
२.संयुक्त समवायसे	आत्मसमवेतगुणका
.३ संयुक्त समवेतसमवाय से	अ त्मसमवेत२ गुणत्वादिकाप्र
४.संयुक्तविशेषणतादि से	आत्मवृत्ती. अभावका

यह दिग्दर्शन मात्र है (विशेषण विशेषणता सन्निकर्ष आत्मवृत्ति अभावगत अभाव का प्र०) इत्यादि।

(१) व्याप्ति ज्ञान
(२) परामर्श ज्ञान
(३) पक्षता
(४) प्रतिवन्धका भाव

(१) सादृश्यादि ज्ञान
(२) अतिदेशवाक्यार्थ स्मृति

(१) पदज्ञान
(२) वृत्तिज्ञान
(३) पदार्थोपस्थिति
(४) आकांक्षाज्ञान
(५) योग्यताज्ञान
६ आसत्तिज्ञान
७ तात्पर्यज्ञान

सन्निकर्ष

संयोग (१)	संयुक्त समवाय (२)	संयुक्तसमवेत समवाय (३)	समवाय (४)	समवेत समवाय (५)	विशेषणता (६)

संयोग (१)

(१ चक्षु+विषय	(२) त्वक्+विषय	(३) मनः+विषय
आलोकसंयोगावच्छिन्न, महत्वावच्छिन्न, उदभूतरूपावच्छिन्न, चक्षुर्घटादि विषय संयोग।	उद्भूतस्पर्शावच्छिन्न, महत्वावच्छिन्न त्वक् घटादि विषय संयोग।	आत्ममनः संयोग।

(चक्षु+विषय, त्वक्+विषय): जन्य पृथ्वी, जन्य जल, जन्य तेज

(१) जन्य पृथ्वी (२) जन्य जल (३) जन्यतेज (४) जन्य वायु (अर्वाचीन मत से

संयुक्त समवाय (२)

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
आलोकसंयोगावच्छिन्न, महत्वावच्छिन्न, उद्भूतरूपावच्छिन्न, चक्षु संयुक्तसमवाय द्रव्य समवेत गुणजाति प्र०	उ.भू. स्पर्शाव. महत्वाव. त्वक्संयुक्तसमवायसे द्रव्य समवेत १गुण २क्रिया ३जाति का प्र,यक्ष होता है।	घ्राण संयुक्त समवायसेगन्धका प्रत्यक्ष होता है।	रसना संयुक्त समवाय से द्रव्य समवेत रसका प्रत्यक्ष होता है।	+	मनः संयुक्त समवाय से आत्मसमवेत बुद्धयादिगुणों का प्रत्यक्ष होता है।

संयुक्तसमवेत समवाय (३)

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	
आलोकसंयोगावच्छिन्न, महत्वाव. उद्भूतरूपाव. चक्षुः संयुक्त समवेत समवायसेद्रव्य समवेतगुणकर्म स०जातिकाप्र०	उद्भूतस्पर्शावच्छिन्न,महत्वाव. त्वक्संसमवेतसमवायसे द्रव्यसमवेत गुणसमवेतजातिका प्र० होता है।	घ्राण संयुक्त समवेत समवायसे द्रव्यसमवेतगन्धजमवेत जाति प्रत्यक्ष होता है।	रसना संयुक्त समवेतसमवायसे रसगत जातिकाप्र० होता है।	+	मनः संयुक्त समवेत समवाय से आत्म समवेत गुणसमवेत जातिका प्र० होताहै

विशेषणता (६)

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
आलोकसंयोगावच्छिन्नमहत्वाव.उदभूतरू० व. चक्षुसंयुक्त विशेषणता से द्रव्यगतअभाव का चाक्षुष प्र० होता है।	उद्भूतस्पर्शावच्छिन्न, महत्वावच्छिन्न त्वक्संयुक्तविशेषणतासेद्रव्यगत अभावका स्पार्शन प्रत्यक्ष होता है।	घ्राण संयुक्त विशेषणता से द्रव्यगतगन्धाभावादि का घ्राणज प्रत्यक्ष होता है।	रसनासंयुक्त विशेषणता से द्रव्यनिष्ठरसाभावादि का रासन प्रत्यक्ष होता है।	श्रोत्रविशेषणतासेशब्दाभावादि काश्रावण प्रत्यक्ष होता है	मनः संयुक्त विशेषणता से आत्मगतअभावोंका मानस प्रत्यक्ष होताहै

चि० न० २६

संसार के अनुकूल कामना विषय का नाम सुख है।

(१) ऐ | हिक
(अनित्य)

(२) राप | लौकिक
(अनित्य)

(१) स्वकीय प्रत्यक्ष मे कारण है।
(२) मन से ग्राह्य है।
(३) मन का सहकारी है।
(४) आत्मा मे रहता है।
(५) विशेष गुण है।
(६) अपाकज है।
(७) निमित्त कारण है।
(८) अनित्य है।
(९) एकही भेद है।
(१०) विभु का गुण है।
(११) अकारण गुणपूर्वक है।
(१२) धर्मजन्य है।
(१३) स्वकीय ध्वंसादि का जनक है।
(१४) आत्मवृत्ति धर्मो से सामानाधि-करण्य है।
(१५) इस से भिन्न से वैयधिकरण्यहै।
(१६) संयुक्त समवाय से ग्राह्य है।
(१७) समवाय सम्बन्ध से रहता हैं।
(१८) सुखत्वादि प्रतियोगिक समवायादि का अनुयोगी है।
(१९) आत्मादिनिष्ठ समवायादिका प्रतियोगीहै
(२०) अकर्मज है।
(२१ अव्याप्यवृत्ति है।
(२२) आत्मा का साधर्म्य है।
(२३) इस से भिन्न का वैधर्म्य है।

चि० न० २७

संसार के प्रतिकूल कामना विषय का नाम दुःख है।

(१) ऐ | हिक
(अनित्य)

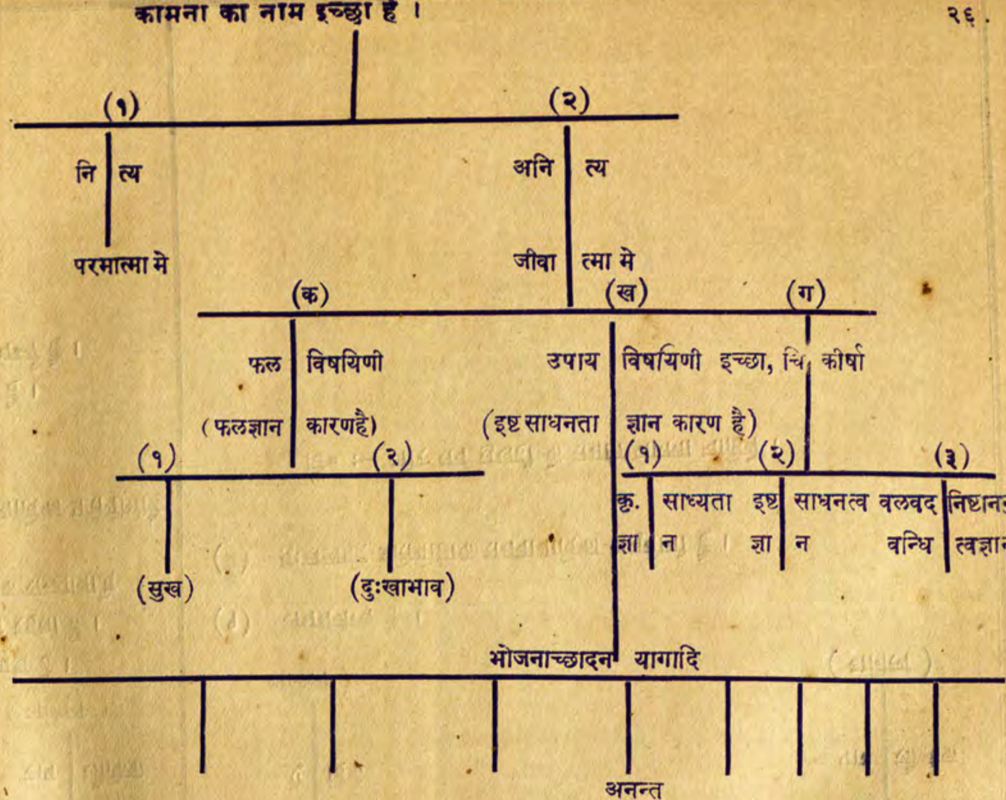
(२) पार | लौकिक
(अनित्य)

(१) अधर्मजन्य है।
(२) दुःखत्वादि प्रतियोगिक समवायादिका अनुयोगी है।

टि० :- और सब सुखही के समान जानना चाहिये।

चि० न० २८

(१) स्वकीय प्रत्यक्ष मे कारण है ।
(२) मन से ग्राह्य है ।
(३) मन का सहकारी है ।
(४) आत्मा मे रहता है ।
(५) विशेष गुण है ।
(६) अपाकज है ।
(७) निमित्त कारण है ।
(८) जीवात्मा मे अनित्य है ।
(९) परमात्मा मे नित्य है ।
(१०) फलविषयिणी, उपाय विषयिणीं दो प्रकार की है ।
(११) विभुका गुण है ।
(१२) अकारण गुणपूर्वक है ।
(१३) आत्मा से जन्य है ।
(१४) ज्ञान का जनक है ।
(१५) आत्मवृत्तियों के साथ सामानाधिकरण्य है ।
(१६) आत्मा मे अवृत्तियों के साथ वैयधिकरण्य है ।
(१७) मनः संयुक्त समवाय से ग्राह्य है ।
(१८) समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१९) इच्छात्व प्रतियोगीक समवायादि का अनुयोगी है ।
(२०) आत्मादिनिष्ठ समवायादि का प्रतियोगी है ।
(२१) अकर्मज है ।
(२२) अव्याप्यवृत्ति है ।
(२३) आत्मा मे रहता है ।
(२४) आत्म भिन्न मे नहीं रहता है ।



चि० न० २९

द्वेष।

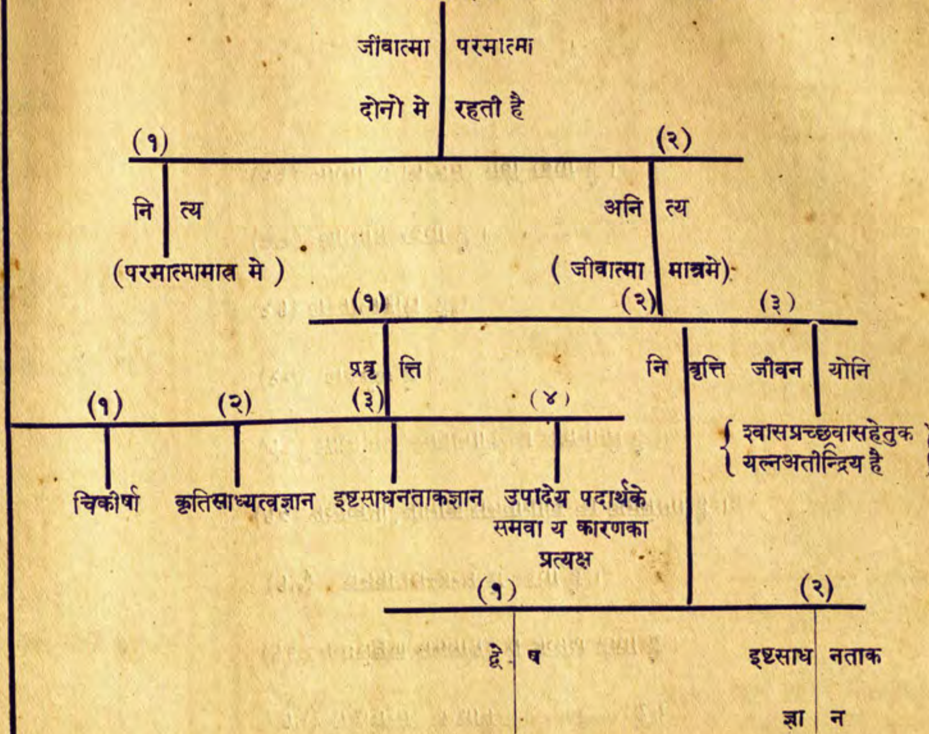
द्विष्टसाधनताज्ञान द्वेष का निमित्त कारण है

अनि | त्य है

जीवात्मा मे रहता है।

(१) स्वकीय प्रत्यक्ष मे कारण है।
(२) मन से ग्राह्य है।
(३) मन का सहकारी है।
(४) आत्मा मे रहता है।
(५) विशेष गुण है।
(६) अपाकज है।
(७) निमित्त कारण है।
(८) सर्वत्र अनित्य है।
(९) एकही प्रभेद है।
(१०) विभुका गुण है।
(११) अकारण गुणपूर्वक है।
(१२) द्विष्टसाधनता ज्ञान से जन्य है।
(१३) आत्मवृत्तिकेसाथ सामानाधिकरण्यहै
(१४)आत्मामेअवृत्तियोकेसाथवैयधिकरण्यहै
(१५) मनःसंयुक्त समवाय से ग्राह्य है।
(१६) द्वेषत्व प्रतियोगिक समवाय का अनुयोगी हैं।
(१७) आत्मादिनिष्ठ समवायादिकाप्रति-योगी है।
(१८) अकर्मज है।
(१९) अव्याप्यवृत्ति है।
(२०) आत्मा मे रहता है।
(२१) आत्मभिन्नमे नहीं रहता है। परमात्मा मे भी नहीं रहता है।

चि० न० ३०



(१), स्वीय प्रत्यक्ष मे कारण है ।

(२) मन से ग्राह्य है ।

(३) मन का सहकारी है ।

(४) आत्मा मे रहता है ।

(५) विशेष गुण है ।

(६) अपाकज है ।

(७) निमित्त कारण है ।

(८) नित्य गत नित्य अनित्यगत अनित्यहैं ।

(९) तीन प्रकारका है ।

(१०) विभुकागुण है ।

(११) अकारण गुणपूर्वक है ।

(१२) चिकीर्षा जन्य है ।

(१३) कार्यमात्र का जनक है ।

(१४) आत्मवृत्ति गुणोंके साथ सामानाधिकरण्य है ।

(१५) तद्भिन्न के साथ वैयधिकरण्य है ।

(१६) मनःसंयुक्त समवाय से प्रत्यक्ष होता है ।

(१७) समवायसम्बन्ध से रहता है ।

(१८) यत्नत्वप्रतियोगिक समवायादि का अनुयोगी है ।

(१९) आत्मनिष्ठ समवायादि का प्रतियोगी है ।

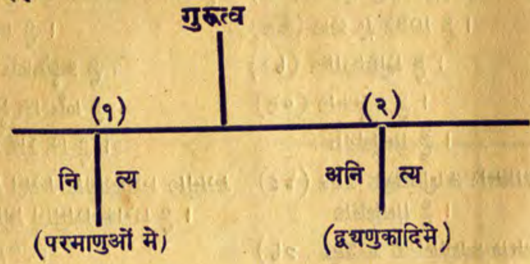
(२०) अकर्मंज है ।

(२१) अव्याप्यवृत्ति है ।

(२२) आत्मामे रहता है ।

(२३) आत्मा से भिन्नमे नहीं रहता है ।

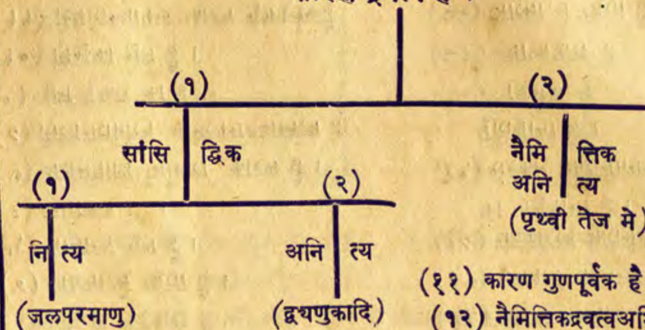
चि० नं० ३१



(१) किसीके प्रत्यक्षमे कारण नहीं है ।
(२) किसी इन्द्रिय से ग्राह्य नहीं है ।
(३) पतन का सहकारी है ।
(४) पृथ्वी जल मे रहता है ।
(५) सामान्य गुण है ।
(६) अपाकज है ।
(७) असमवायि, निमित्त कारण है ।
(८) नित्य तथा अनित्य है ।
(९) एकही तरह का हैं ।
(१०) कारण गुणपूर्वक है ।
(११) आद्यपतनस्वकीयध्वंसादि का जनकहै ।
(१२) पृथ्वी जलवृत्तियोंके साथ सामा–नाधिकरण्य है ।
(१३) पृथ्वी जल मे अवृत्तियोंके साथ वैयधिकरण्य है ।
(१४) अतीन्द्रिय है। अतएव प्रत्यक्षकाअविषयहै
(१५) समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१६) गुरूत्वत्व प्रतियोगिक समवायका अनुयोगी है ।
(१७) गुरूत्व प्रतियोगिक समवाय का प्रतियोगी है ।
(१८) अकर्मज है ।
(१९) व्याप्य वृत्ती है ।
(२०) पृथ्वी जल, मे रहता हैं ।
(२१) उस से भिन्न मे नहीं रहता है ।

चि० नं० ३२

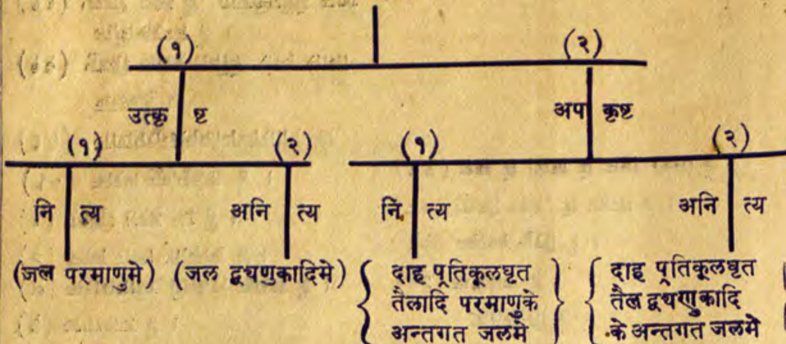
स्यन्दन क्रिया का असमवायि कारण द्रवत्व है ।



(१) स्वीय प्रत्यक्ष मे कारण है ।
(२) चक्षु त्वचा से ग्राह्य है ।
(३) चक्षु त्वचा का सहकारी है ।
(४) पृथ्वी जलमे रहता हैं ।
(५) सांसिद्धिक द्रवत्व विशेषगुण है । नैमित्तिक द्रवत्व सामान्य गुण है ।
(६) पाकज अपाकज दोनों है ।
(७) असमवायि, निमित्त दोनों है ।
(८) पाकज सब जगह नित्य है और अपाकज नित्यगत नित्य, अनित्य गतअनित्य है ।
(९) दो प्रभेद का है ।
(१०) भूतमूर्त्त दोनों का गुण है ।
(११) कारण गुणपूर्वक है ।
(१२) नैमित्तिकद्रवत्वअग्निसंयोगसेजन्य है
(१३) स्यन्दन का जनक है ।
(१४) पृथ्वी जल तेज वृत्तियों के साथ सामानाधिकरण्य है ।
(१५) उस से भिन्नों के साथ वैयधिकरण्य है ।
(१६) संयुक्त समवाय सन्निकर्षसेग्राह्यहै
(१७) द्रवत्वत्वपृतियोगिक समवाय का अनुयोगी है ।
(१८) द्रवत्व पृतियोगिक समवाय का पृतियोगी है ।
(१९) अकर्मज है ।
(२०) व्याप्यवृत्ति है ।
(२१) पृथ्वी जल तेज मे रहता है ।
(२२) उस से भिन्न मे नहीं रहता है ।

चि० न० ३३

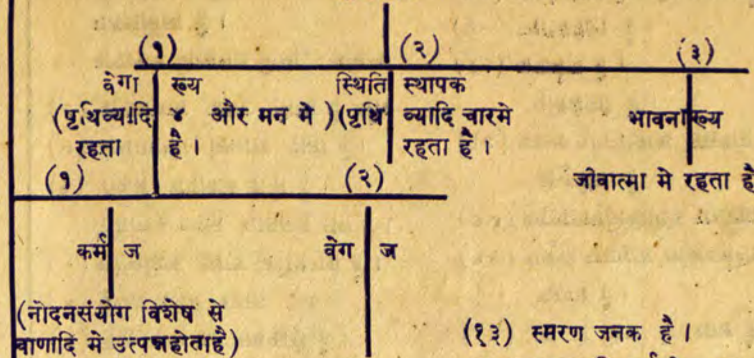
चूर्णादि पिण्डीभाव का कारण स्नेह है ।



(१) स्वीय प्रत्यक्ष में कारण है ।
(२) त्वचासे ग्राह्य है ।
(३) त्वचा का सहकारी है ।
(४) जल में रहता है ।
(५) विशेष गुण है ।
(६) अपाकज है ।
(७) असमवायि निमित्त कारण है ।
(८) नित्यगत नित्य अनित्यगत अनित्य
(९) एकही पूकार का है ।
(१०) भूतमूर्त का गुण है ।
(११) कारण गुणपूर्वक है ।
(१२) जलजन्य है ।
(१३) चूर्णादि पिण्डी भाव का कारण है
(१४) जलवृत्तियों के साथ सामानाधि-करण्य है ।
(१५) उससेभिन्नकेसाथ वैयधिकरण्यहै ।
(१६) संयुक्तसमवायसे ग्राह्य है ।
(१७) समवाय सम्बन्ध से रहताहै ।
(१८) स्नेहत्व प्रतियोगिक समवायादिका अनुयोगी है ।
(१९) स्नेह प्रतियोगिक समवायादिका पूतियोगी है ।
(२०) अकर्मज है ।
(२१) व्याप्यवृत्ति है ।
(२२) जल में रहता है ।
(२३) उससे भिन्न में नहीं रहता है ।

चि० न० ३४

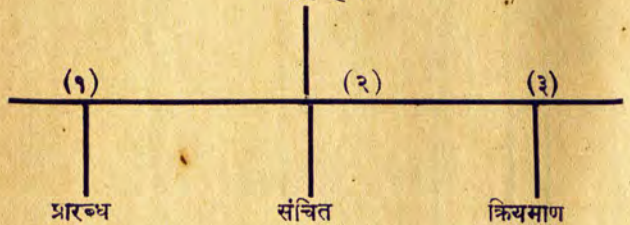
संस्कार



(१) स्वकीय पूत्यक्ष मे कारण है ।
(२) मनसे ग्राह्य है ।
(३) मन का सहकारी है ।
(४) आत्मा मे रहता है ।
(५) सामान्य गुण है ।
(६) अपाकज है ।
(७) असमवायि निमित्त कारण है ।
(८) नित्यगतनित्य अनित्यगतअनित्य है
(९) तीन पूकार का है ।
(१०) विभुका गुण है ।
(११) स्थितिस्थापक कारण गुणपूर्वकहै इससे भिन्न अकारण गुणपूर्वकहै
(१२) अनुभव जन्य है ।
(१३) स्मरण जनक है ।
(१४) आत्मवृत्ति धर्म से सामानाधि-करण्य है ।
(१५) तद्वृति धर्मसे वैयधिकरण्य है ।
(१६) संयुक्त समवाय से ग्राह्य है ।
(१७) समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१८) संस्कारत्व प्रतियोगिकसमवायादि का अनुयोगी है ।
(१९) संस्कार प्रतियोगिक समवायका पूतियोगी है ।
(२०) अकर्मज है ।
(२१) व्याप्यवृत्ति है ।
(२२) आत्मा मे रहता है ।
(२३) इस से भिन्नमे नहीं रहता है ।
(२४) अतीन्द्रिय है ।

चि० न० ३५

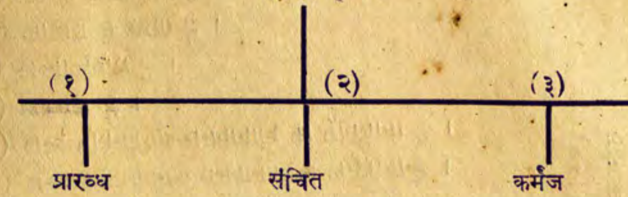
विहित कर्म जन्य
धर्म है।



(१) यागादिरूप करण से अदृष्टरूप व्यापार द्वारा स्वर्गादि रूप कार्य होता है। एवं सुखसाधक शरीरादि का भी कारण धर्म हीं है।
(२) कर्मनाशा नदी इत्यादि से धर्म का नाश होता है।
(३) प्रारब्ध कर्मका नाश भोग के विना नहीं होता है। तत्त्व ज्ञान से सञ्चित और क्रियमाण कर्म का नाश होता है।

चि० न० ३६

निषिद्ध कर्म जन्य
अधर्म है।

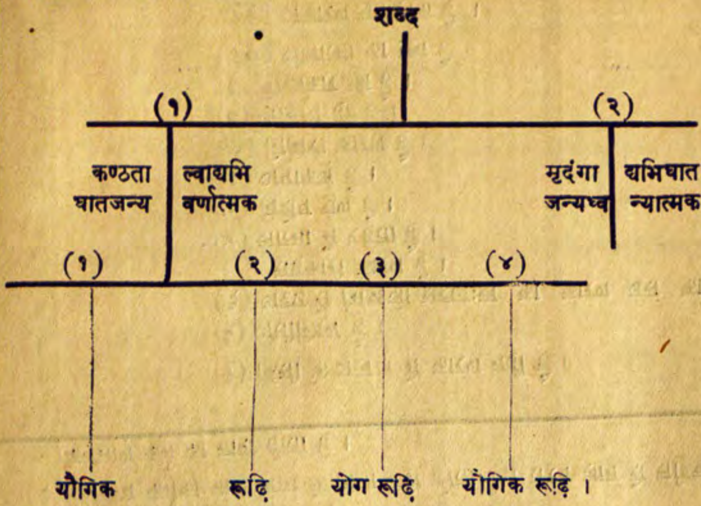


(१) निषिद्ध कर्म और नित्यकर्म का त्याग इन दोनों के आचरण से नरकादि और नरकादि साधन शरीर होता है।
(२) प्रारब्ध पापकर्म का भी नाश भोग के विना नहीं होता है।
(३) एवं तत्वज्ञान से सञ्चित क्रियमाण पापकर्म का भी नाश हो जाता है।

अदृष्टः = (धर्म अधर्म

(१) किसी के प्रत्यक्ष मे कारण नहीं है।
(२) अतीन्द्रिय हैं।
(३) अदृष्ट से भिन्न जो सुखदुःख का कारण उस का अदृष्ट सहकारी कारण है।
(४) आत्मा मे रहता है।
(५) विशेष गुण है।
(६) अपाकज है।
(७) निमित्त कारण है।
(८) अनित्य ही है।
(९) दो प्रकार का है।
(१०) जीवात्मा का गुण है।
(११) अकारण गुणपूर्वक है।
(१२) विहित और निषिद्ध कर्मजन्य है।
(१३) सुख दुःख का जनक है।
(१४) आत्मवृत्ति धर्मसे सामानाधि करण्य है।
(१५) आत्मामे अवृत्ति धर्मोसे वैयधिकरण्य है।
(१६) समवाय सन्बन्ध से रहता है।
(१७) अदृष्टत्व प्रतियोगिक समवायादिका अनुयोगी है।
(१८) अदृष्ट प्रतियोगिक समवायादिका प्रतियोगी है।
(१९) अकर्मज है।
(२०) अव्याप्यवृत्ति है।
(२१) जीवात्मा मे रहता है।
(२२) इस से भिन्न मे नहीं रहता है।

चि० न० ३७



(१) स्वीय प्रत्यक्ष मे कारण है ।
(२) श्रवणेन्द्रिय ग्राह्य है ।
(३) श्रोत्र का सहकारी है ।
(४) आकाश मे रहता है ।
(५) विशेष गुण है ।
(६) अपाकज है ।
(७) निमित्त और समवायि कारण है ।
(८) अनित्यही है ।
(९) दो प्रभेद है (वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक)
(१०) विभु का गुण है ।
(११) अकारण गुणपूर्वक है ।
(१२) अभिघात जन्य है ।
(१३) शब्द ज्ञानादि का जनक है ।
(१४) गगनत्वादि के साथ सामानाधिकरण्य है ।
(१५) इससे भिन्न के साथ वैयधिकरण्य है ।
(१६) समवाय सन्निकर्ष से ग्राह्य है ।
(१७) समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१८) शब्दत्वप्रतियोगिक समवायादिका अनुयोगी है ।
(१९) शब्द प्रतियोगिक समवायादि का प्रतियोगी है ।
(२०) अकर्मज है ।
(२१) अव्याप्यवृत्ति है ।
(२२) आकाश मे रहता है ।
(२३) इस से भिन्न मे नहीं रहता है ।

(२४) शब्द की उत्पत्ति " कदम्बगोलकन्याय " और " वीची तरंग न्याय " से मानते हैं (२५) कोई कोई शब्द को नित्य भी मानते हैं ।

वि० = विशेष गुण।
रिक्त कोष्ठसे "नहीं" समझना

नम्बर	का०	पदार्थ	वि०गु० स्पर्श	संख्या	परिमिति	पृथक्त्व	संयोग	विभाग	परत्व	अपरत्व	वेग	वि० रूप	वि० नैमित्तिक द्रवत्व	गुरुत्व	वि० रस	वि० स्नेह	वि० गन्ध	वि० बुद्धि	वि० सुख	वि० दुःख	वि० इच्छा	वि द्वेष	वि० यत्न	वि० भावना	वि० धर्म	वि अधर्म	वि० शब्द
			१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५
१	३०	वायु ९	है	है	है	है	है	है	है	है	है																
२	३०	तेज ११	है	है	है	है	है	है	है	है	है	है	है														
३	३१	जल १४	है	है	है	है	है	है	है	है	है	है	सां.है	है	है	है											
४	३२	पृथ्वी १४	है	है	है	है	है	है	है	है	है	है	है	है	है		है										
५	३२, ३३	आत्मा १४		है	है	है	है	है										है	है	है	है	है	है	है	है	है	
६	३३	काल ५		है	है	है	है	है																			
७	३३	दिशा ५		है	है	है	है	है																			
८	३३	आकाश ६		है	है	है	है	है																			है
९	३४	ईश्वर ८		है	है	है	है	है										है			है		है				
१०	३४	मन ८		है	है	है	है	है	है	है	है																

खि० न० ३८

का० ८, १४-१५,२४-२९ जो जिसका साधर्म्य है उससे भिन्नों का वह वैधर्म्य है।

साधर्म्य निरूपण।

*परममहत्परिमाण अतीन्द्रिय सामान्य इनसे भिन्नोंका

नम्बर	का०न.	पदार्थ	१ सत्ता	२ ज्ञेयत्व	३ वाच्यत्व	४ प्रमेयत्व	५ अनेकत्वे सति भावत्व	६ समवायित्व	७ निर्गुणत्व	८ निः क्रियत्व	९ सामान्य शून्यत्व	१० कारणत्व	११ आश्रितत्व	१२ द्रव्यत्व	१३ गुणवत्व	१४ परत्व	१५ अपरत्व	१६ मूर्त्तत्व	१७ क्रियावत्व	१८ वेगवत्व	१९ सर्वगतत्व	२० परममहत्परिमाणवत्व	२१ भूतत्व	२२ स्पर्शवत्व	२३ द्रव्यसमवायिकारणत्व	२४ अव्याप्यवृत्तिवि० गुणवत्व	२५ क्षणिक विशेष गुणवत्व	२६ रूपवत्व	२७ द्रवत्ववत्व	२८ प्रत्यक्ष विषयत्व	२९ गुरुत्ववत्व	३० रसवत्व	३१ नैमित्तिक द्रवत्ववत्व	३२ विशेष गुणवत्व
१	८ प०	द्रव्यादित्रय	सा.																															
२	१३प०	सप्त पदार्थ		सा.	सा.	सा.																												
३	१४	द्रव्यादि पञ्च					सा.	सा.																										
४	१४प०	गुणादि ६							सा.	सा																								
५	१५	सामान्यादि-४									सा.																							
६	१५	अणुपरिमाणआत्मासेभिन्न*										सा.																						
७	२४	नित्य द्रव्य से भिन्न का											सा.																					
८	२४	क्षित्यादि ९ का												सा.	सा.																			
९	२५	क्षिति, जल, तेज पवन मन														सा.	सा.	सा.	सा.	सा.														
१०	२६	काल, आकाश, दिशा आत्मा																			सा.	सा.												
११	२६	क्षित्यादि ५ का																					सा.											
१२	२६२७	क्षित्यादि ४ का																						सा.	सा.									
१३	२९	आकाश आत्मा																								सा.	सा.							
१४	२८	पृथ्वी, जल, तेज																										सा	सा.	सा.				
१५	२८	पृथ्वी, जल																													सा.	सा.		
१६	२८	पृथ्वी, तेज																															सां.	
१७	२९	आत्माअंभूत																																सा.

चि० न० ४०

नम्बर	कारिका नम्बर	रूप	रस	गन्ध	स्पर्श	परत्व	अपरत्व	द्रवत्व	स्नेह	वेग	स्थितिस्था	धर्म	अधर्म	भावना	शब्द	बुद्धि	सुख	दुःख	इच्छा	द्वेष	यत्न	संख्या	परिमाण	पृथक्त्व	संयोग	विभाग	द्वित्वादि संख्या	द्विपृथक्त्वादिसं	गुरुत्व	एकत्व	नाम गुणों
१	८६	,,	,,	,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,																				ये १० गुण केवल मूर्तके हैं।
२	८७											,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,										ये १० गुण केवल अमूत के हैं
३	८८																					..	,,	,,	,	,,					ये ५ गुण मूत. अमूर्त के हैं।
४	८९																								,,	,,	,,	,			ये ४ अनेक व्यक्तिवृत्ति गुण हैं।
५	९१	,,	,,	,,	,,			सा	,,			,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,										ये १६ विशेष गुण कहाते हैं।
६	९२					,,	,	नैद्र.		.,												,,	,,	,,	,,	,,			.		ये १० सामान्य गुण कहाते हैं।
७	९३					.;	.,	द्र.	,,													,,	,,	,,	,,	,,					ये ९ गुणचक्षु और त्वचासे ग्राह्य
८	९३	,,	,,	,,	,,										,,																ये ५गुणचक्षुरादिवाह्येन्द्रियग्राह्य हैं
९	९३-९४											,,	,	,,							❀								,,		ये ५ गुण अतीन्द्रिय हैं।
१०	९४											,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	यत्न										ये १० आत्मा, आकाशके विशेष गुण हैं। अकारण गुणोत्पन्नभीहैं
११	९५-९६	अपा० रूप	अपा० रस	अपा० गन्ध	अपा० स्पर्श			सा. द्र०	,,	,,	संस्कार												,,	ए० पृ०		,,				,,	ये १२ कारण गुणपूर्वक हैं।
१२	९६									,,															,,	,,					ये तीन कर्मज गुण हैं।
१३	९७	रूप	रस	गन्ध	अनुष्ण स्पर्श				,,		स्थित स्था				,,								,,	ए० पृ०						,	ये १०गुण असमवायि कारणमात्रहैं
१४	९७,९८											,,	,,	,,		,,	,,	,,	,,	,,	,,										ये ९आत्माके विशेष गुणहैं।
१५	९८				उष्ण स्पर्श			द्रवत्व		,,															,,	,,			,,		ये६ असमवायिनिमित्तदोनोकारण है
१६	९८-९९											.,	.	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,						,,	,,			ये १२ विभुके विशेषगुणहैं

टि० अनुष्ण = शीत+अनुष्णा शीत। टि०—द्रव्य द्रव्योंमे संयोग सम्बन्ध से, अवयवी अवयवों मे, गुणकर्म द्रव्यों मे, जातिद्रव्य गुण कर्मो मे, विशेष नित्य द्रव्यों मे समवाय सम्बन्धसे, द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेषातिरिक्त पदार्थ अपने अपने अधिकरणों मे स्वरूप सम्बन्ध से, सभी पदार्थ स्वसमान कालिक कालोपाधि और महाकाल मे कालिक सम्बन्ध से, एवं स्वसमान कालिक दिगुपाधि और दिशा मे दैशिक सम्बन्धसे, एवम् स्वात्मक पदार्थों मे अभेद (तादात्म्यक) सम्बन्ध से, रहते हैं। ❀अव्याप्य वृत्तिभी हैं

सि० नम्बर	१	२	३	४	५	६
नाम इन्द्रिय	चक्षुर्ग्राह्य	त्वक् ग्राह्य	रसना ग्राह्य	घ्राण ग्राह्य	श्रोत्र ग्राह्य	मनोग्रा.
पृथ्वी	द्व्यणुकादिपृथ्वी	द्व्य० पृथ्वी	—	—	—	—
जल	द्व्य० जल	द्व्य० जल	—	—	—	—
तेज	द्व्य० तेज	द्व्य० तेज	—	—	—	—
वायु	—	द्व्य.वायु❀	—	—	—	—
आकाश,काल	—	—	—	—	—	—
दिशा,आत्मा	—	—	—	—	—	—
मन	—	—	—	—	—	—
रूप	उद्भूत रूप	—	—	—	—	—
रस		—	उ० रस	—	—	—
गन्ध		—	—	उ० गन्ध	—	—
स्पर्श	—	उ० स्पर्श	—	—	—	—
संख्या	उद्भूत संख्या	उ० संख्या	—	—	—	—
परिमाण	उ० परिमाण	उ० परिमाण	—	—	—	—
पृथक्त्व	उ० पृथक्त्व	उ० पृथक्त्व	—	—	—	—
संयोग	उ० संयोग	उ० संयोग	—	—	—	—
विभाग	उ० विभाग	उ० विभाग	—	—	—	—
परत्व	उ० परत्व	उ० परत्व	—	—	—	—
अपरत्व	उ० अपरत्व	उ० अपरत्व	—	—	—	—
बुद्धि	—	—	—	—	—	उ०
सुख	—	—	—	—	—	सु०
दुःख	—	—	—	—	—	दु०
इच्छा	—	—	—	—	—	इ०
द्वेष	—	—	—	—	—	द्वेष
यत्न	—	—	—	—	—	यत्न
गुरुत्व	—	—	—	—	—	—
द्रवत्व	उ० द्र०	उ० द्र०	—	—	—	—
स्नेह	उ० स्नेह	उ० स्नेह	—	—	—	—
संस्कार	वेगाख्य	वेगाख्य	—	—	—	—
धर्म	—	—	—	—	—	—
अधर्म	—	—	—	—	—	—
शब्द	—	—	—	—	उ० शब्द	—
उत्क्षेपण	उ० उत्क्षे०	उ० उत्क्षे०	—	—	—	—
अपक्षेपण	उ० अप०	उ० अप०	—	—	—	—
आकुञ्चन	उ० आकु०	उ० आकु०	—	—	—	—
प्रसारण	उ० प्रसा०	उ० प्रसा०	—	—	—	—
गमन	उ० गमन	उ० गमन	—	—	—	—
जाति	जाति	जाति	उ जाति	उ० जा	उ०जाति	उ.जाति
अनन्त विशेष	—	—	—	—	—	—
समवाय	×	÷	—	—	—	—
प्रागभाव	उ० प्राग०	उ० प्रा०	उ० प्रा०	उ० प्रा०	उ० प्रा०	उ. प्रा.
प्रध्वंसाभाव	उ. प्रध्वं०	उ० प्रध्वं०	उ० प्रध्वं०	उ० प्रध्वं	उ० प्रध्वं०	उ०प्र
अत्यन्ता भाव	उ० अत्य०	उ० अत्य०	उ अत्य०	उ० अत्य०	उ० अत्य०	उ.अत्य
अन्योन्याभाव	उ० अन्यो०	उ० अन्यो०	उ० अन्यो०	उ० अन्यो०	उ० अन्यो०	उ.अ०

पञ्चलक्षणी—व्याप्ति चित्र ।

व्याप्ति = साध्यवदन्य निरूपितवृत्तित्वाभाव ।

मु० न.	लक्षण	साध्य	(साध्यवत्) वत्	(साध्यवदन्य)अन्य	निरूपित	वृत्तित्व	अभाव	प्रथम व्याप्ति ।— टिप्पणी
२,३	समन्वय	वह्नि	पर्वतादि५(पर्व,चत्व. गोष्ठ, महा०अयो·)	ह्रदादि	,,	शैवाला दि	अभावधूम मे	"वन्हिमान् धूमात्"(समन्वय स्थल)
५	दोष	,,	वह्न्यवयव	पर्वतादि ४—	,,	धूम मे है (अतः	धूम मे वृत्तित्वाभाव नहीं रहा	"वन्हिमान् धूमात्" = हेतु । अव्याप्त । यहां समवायेन साध्यवत् को लेकर पूर्वपक्ष किया है ।
४	निवारकलक्षण	साध्य	वत् (साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन) ❀	अन्य	,,	वृत्तित्व—	अभाव	द्वितीय व्याप्ति
	स०	वन्हि	पर्वतादि ४	ह्रदादि	,,	शैवालादि मे	धूम मे	,, ,, (अव्याप्ति वारण) (निर्दुष्ट लक्षणको स्मरण करही कर पर्वतादि ४ माने हैं ।
७	द्वि० दो०	,,	पर्वत	महानसादि ३	,,	धूम मे है	धूममे नहीं है	,, ,, (पुनः द्वि. अव्याप्ति)
६	नि० ल०	साध्य	वद् ,,❀	अन्य+ साध्यवत्वाव० प्रतियोगिताकभेदवान्)	,,	वृत्तित्व	अभाव	तृ० व्या०
	स०	वन्हि	पर्वतादि ५	ह्रदादि	,,	शैवाल मे	धूम मे	,, ,, लक्षण समन्वय । द्वि० अव्या० वारण
९	तृ० दो०	,,	,,	धूमावयव	,,	धूम मे है	धूममे नही है	इसलिये ,, ,, यहाँ तृ० पुनः अव्याप्तिदोष हुआ
८	नि० लं०	साध्य	वत् (,,)*	अन्य (,,)+	,,	वृत्तित्व(हेतुतावच्छे० सम्बन्धावच्छिन्न) ×	अभाव	चतु० व्याप्ति०
	स०	वन्हि	पर्वतादि ५	ह्रदादि (धूमावयवादि)	,,	(शैवालादि) वन्हि	धूम मे	,, ,,०लक्षण समन्वय । तृ०अव्या० दो. वारण
१०	च० दो०	धूम	पर्वतादि ४	ह्रदादि	,,	शैवालादि	वन्हिमे	धूमवान् वन्हेः मे अतिव्याप्त ।

१०	नि० ल०	साध्य	वत् (,,) ❀	अन्य (,,) +	,,	वृत्तिता (×) ,,	अभाव (साध्यवदन्य निरूपित वृत्तितात्वाव च्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव)	अवृत्तित्वाभाव पदसे वृत्तित्व सामान्याभाव विवक्षित है – अतः साध्याभावाधिकरण विशेष पकड़कर दोष नहीं होगा ।
	स०	धूम	पर्वतादि ४	ह्रदादि अयोगोलकभी	,,	शैवाल वन्हिमे है	वृत्तित्वा भाव वन्हिमे नहीं रहा	,,० अतिव्याप्ति नहीं हुई ।
११	पञ्चम दो०	द्रव्यत्व	द्रव्य	गुण कर्म	,,	सत्तापर और विशिष्ट सत्तापर भी (क्योंकि गुण कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ताभी शुद्धसत्तारूपहै	विशिष्ट सत्तापर नहीं रहा ।	अतः "द्रव्यं विशिष्ट सत्वात्"(गुणकर्मान्यत्व) यहाँ अव्याप्ति हुई ।
१२, १३	नि० ल०	साध्य	वत् (,,) ❀	अन्य ,, +	,,	वृत्तितावच्छेदक (जो) हेतुतावच्छेदक	तद्वत्व	व्याप्ति ल०
	स०	द्रव्यत्व	द्रव्य	गुणादि	,,	गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्तात्व	तद्वत्त्व गुण कर्मान्यत्व विशिष्टसत्तामेहै	अब अव्याप्ति नहीं
१४	ष० दो०	ज्ञेयत्व	पदार्थ मात्र	अप्रसिद्ध	×	×	×	अतः ज्ञेयत्ववान् वाच्यत्वात् यहाँ अव्याप्ति
१५	स० दो०	सत्ता	द्रव्य गुण कर्म	सामान्यादि ४	,,	(हेतुतावच्छेदक समवाय सम्बन्धावच्छिन्न वृत्तिता अप्रसिद्ध) तव वृत्तितानवच्छेदक तो सुतरां असम्भवही है	×	सत्तावान् जातेः । यहां भी अव्याप्ति । —

सिद्धान्त लक्षण और उसपर परिस्कार

*अयोगोलक भी गृहीत है

(क) " सद्धेतु मे साध्याभाव लक्षण घटक नहीं होना चाहिये एवम् व्यभिचारी मे साध्याभाव लक्षण घटक होना चाहिये "

+नके तद्वह्निका अभाव ।

(ख) सद्धेतु स्थान मे हेत्वधिकरण साध्याभाव प्रतियोगी (साध्य) का अनधिकरण नहीं होना चाहिये एवम् व्यभिचारी मे होना चाहिये ॥

का० ६९

मु० न० १	लक्षण	हेतु	(हेतु) मत्—	(हेतुमत्निष्ठ) अभाव	(हेतुमन्निष्ठ अभाव) अप्रतियोगी साध्य	तादृशसाध्य	सामानाधिकरण्य(हेतु के साथ)	व्याप्ति
	स०	वाच्यत्व	सकल पदार्थ	घटादिका (चालनी न्याय से)	ज्ञेयत्व	ज्ञेयत्व	वाच्यत्व	"ज्ञेयत्ववान् वाच्यत्वात् " एवम् "सत्तावान् जातेः" मेंलक्षण समन्वय
	स०	जाति	द्रव्य गुण कर्म	,,	सत्ता	सत्ता	जाति	
	स०वारण	वहनि	पर्वतादि *अयोगोलक भी	धूमाभाबादि	धूम नहीं	×	×	"धूमवान् वन्हेः" में अभावका प्रतियोगी साध्य है नकि अप्रतयोगी अतः अतिव्याप्ति नही हुई यहाँ हेतुमत से*
२	दोष (सामान्यव्याप्तिमे	धूम	पर्वतादि	तत्तद्वह्न्यभावका चा० न्याय से	अप्रतियोगीसाध्य नहीं हुआकिन्तुप्रतियोगी है	×	×	' वन्हिमान् धूमात् " अव्याप्ति
३	उद्धार(वि० व्याप्ति से)	तद्धूम	तद्धूमवत् तत्पर्वत	तद्वन्हिभिन्नवहनि का अभाव+	तद्वन्हि	तादृश तद्वन्हि	सामानाधिकरण्यतद्धूम मे है	(किन्तु) विशेषव्याप्ति मे "तद्वन्हिमान् तद्धूमात् " लक्षण समन्वय हुआ
३	दोष १म (वि. व्या०	तद्धूम	तद्धूमबत् तत्पर्वत	निष्ठअभावतद्वह्निघटोभयाभाव	का अप्रतियोगी तद्व० रूपसाध्यनहीं हुआ	×	×	"तद्वन्हिमान् तद्धूमात्" (विशेष व्याप्तिमेभी) अव्याप्ति
४	दोष२	द्रव्यत्व	द्रव्य	तत्तद्गुणाभाव चा० न्यायसे	का अप्रतियोगी कोई गुणरूपसाध्यनहीं हुआ	तादृशसाध्य	सामानाधिकरण्य हेतु मे नहीं रहनेके कारण	'गुणवान् द्रव्यत्वात्' में भी अव्याप्ति
४	लक्षण	हेतु	समानाधिकरणजो	अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छे. जो साध्यतावच्छेदक	तद्वच्छिन्न जोसाध्य	सामानाधिकरण्य	व्याप्ति
	समन्वय	धूम	पर्वतादि ४	वन्हि घटोभयाभावादि	वन्हित्व	वन्हि	धूममे है	'वन्हिमान् धूमात्' मे भी समन्वय
	,,	द्रव्यत्व	रक्त घट	नीलाभाव	गुणत्व	गुण	द्रव्यत्व है	अतः गुणवान् द्रव्यत्वात् में भी समन्वय

(इन अव्याप्तियों मे दूसरेका समाधान) ४०

५	दोष	पृथिवीत्व	पृथिवी	शुक्लादि ७ रूप का अभाव च ०न्यायसे)	रूपत्व व्याप्ति शुक्लत्वादि जाति प्रतियोगितावच्छेदक ही हुआ नकिप्रतियोगितानवच्छेदक हुआ।			रूपत्व व्याप्ति जातिमत्वान् पृथिवीत्वात'' मे अव्याप्ति	साध्य और हेतु के भेद से अर्थात् स्थल भेद से व्याप्ति का लक्षण भिन्न २ होता है। इसलिये 'रूपत्व व्याप्य जाति मत्वान् पृथिवीत्वात्' "दण्डिमान् दण्डि संयोगात्" इत्यादि स्थलों मे "हेतु समानाधिकरणाभाव प्रतियोगितावच्छेदकतानवच्छेदक जो साध्यता वच्छेदकतावच्छेदक धर्म तद्धर्म विशिष्ट जो साध्यता वच्छेदकतदवच्छिन्नसमानाधिकरण्यहीव्याप्तिहै
६	उद्धार (समाधान)	पृथिवीत्व	पृथिवी	घटपटाभाव	रूपत्व व्याप्य जातिगत जातित्व (स्वाश्रयाश्रयत्व सम्बन्ध से)	रूपत्व व्याप्य जातिमत् (नीलादि ७) का	तत्सामानाधिकरण्य। पृथिवीत्व मे है।	इसप्रकारउक्त व्याप्ति दोष निवारण हुआ (क्योंकिरूपत्व व्याप्य जाति मत्वान्नास्ति यह सामान्याभाव नहीं है	हेतु = पृथिवीत्व, दण्डिसंयोग। साध्य = रूपत्व व्याप्यजातिमत्दण्डी। हेत्वधिकरण = पक्षपृ.मठादि। उक्तदोनोंस्थलों के हेत्वधिकरणों मे यथाक्रम रूपत्वव्याप्य जातिमतका और दण्डि का अभाव नहीं है। यदि ये अभाव यथाक्रम पृथ्वी में और दण्डि संयोगाधिकरण (मठ) मे रहते तो अभावों का प्रतियोयितावच्छेदक रूपत्व व्याप्य जाति एवं तत्तत्सकल दण्ड और प्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकरूपत्व व्याप्यजातित्वएवंदण्डत्वहोता।
९	(उक्तसजातीय द्वितीय) दोष	दण्डि संयोग	दण्डि संयोगाधिकरण (मठ)	तत्तत्दण्डवान् का (अभाव) चा०न्या०से	तत्तत्सकल दण्डप्रतियोगितावच्छेदक ही हुआ नकिप्रतियोगितानवच्छेदक हुआ			अतः 'दण्डिमान् दण्डि संयोगात्' मे (पूर्ववत् अव्याप्ति)	जिस हेतु ये अभाव पृथ्वी और दण्डिसंयोगाधिकरण मे यथाक्रम नहीं हैं इसलिये पृथ्वी और दण्डिसंयोगाधिकरण(मठ) वृत्ति अभावका प्रतियोगितावच्छेदकतानवच्छेदकजो साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकरूपत्वव्याप्य जातित्व और दण्डत्व तद्धर्म विशिष्ट जो रूपत्वव्याप्य जाति और दण्डरूप साध्यतावच्छेदक तदवच्छिन्न जो साध्य तत् सामानाधिकरण्य पृथ्वीत्वात्मक और दण्डि
९	उद्धार (समाधान)	,,	,,	घटपटाभाव	दण्डत्व (स्वाश्रयाश्रयत्व परम्परा सम्बन्ध से	दण्डी	तत्सामानाधिकरण्य। दण्डि संयोगमे है)	इसलिये यहाँ भी पूर्ववत् अव्याप्तिदोष निवारणहुआ	संयोगात्मक हेतुओं मे रहने के कारण लक्षण समन्वय हुआ।

११	दोष	गुण कर्मान्यत्व-विशिष्टसत्ता	द्रव्य और गुण कर्म भा है (क्योंकि गुण कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ता और शुद्धसत्ता एक है	अतः गुण कर्ममे द्रव्यत्वाभाव है।	तत्प्रतियोगितावच्छेदक(द्रव्यत्वत्व) हो साध्यतावच्छेदक है।	×	×	अतः "द्रव्यं गुण कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्वात् " मे' अव्याप्ति।
११	लक्षणमे परिष्कार	हेतु (सामानाधिकरण) घटक हेत्वधिकरण का = हेतुतावच्छेदका वच्छिन्ना जो निरूपकतातादृशनिरूपकतानिरूपित जो अधिकरणतातद्वत् अर्थ है		तन्निष्ठ अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्न जो साध्य	तत्सामानाधिकरण्य	व्याप्ति है।
	समन्वय	गुण कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ता	द्रव्य मात्र नकि गुण कर्म क्योंकि तादृश अधिकरणता द्रव्यही मे मानी जाती है।	घटाभावादि	द्रव्यत्वत्व	द्रव्यत्व	तत्सामानाधिकरण्य गुण कर्मान्यत्व वि. सत्तामे है	इसलिये उक्त अव्याप्ति दोष का वारण हुआ।
१३	दोष	धूम	धूमावयव	वन्ह्यभाव	तत्प्रतियोगितावच्छेदक ही साध्यतावच्छे. हुआ अतः	×	×	"वन्हिमान् धूमात् " मे अव्याप्ति।
१४	पुनः लणण मे परिस्कार	हेतु = हेतुतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न(हेतुतावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपितअधिकरणतावत्) अर्थ है	अधिकरण	अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्न जो साध्य	तत्सामानाधिकरण्य	व्याप्ति है।
	स०	संयोगसं० व० धूमत्वावच्छिन्न निरूपकता निरूपितअधिकरणता, (वत्)	पर्वतादि ४	घटाद्यभाव	वन्हित्व	वन्हि	धूममे	

१५	दोष	एतद् वृक्षत्व	एतद् वृक्ष	अपरदेशावच्छेदेनकपिसयोगाभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदककपिसंयोगत्व नही	×	×	अतः "कपि संयोगी एतद् वृक्षत्वात्" मे अव्याप्ति
१४	पुनः ल. परि	प्रतियोगि व्यधिकरण	हेत्वधिकरण (हेतुतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्नहेतुता वच्छेदकावच्छिन्न निरू ०नि० अधिकरणतावद्वृत्ति	अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो साध्यतावच्छे.	तदवच्छिन्नजो साध्य	तत्समानाधिकरण्य	व्याप्ति है ।
	स० दो० निवारण	प्रतियोगि व्यधिकरण	हेतुसमानाधिकरण	जो अभाव सो कपिसंयोगाभा. नहीहोगा किंतु घटाभावादि	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो कपि संयोत्वरू. साध्यतावच्छे०	तदवच्छिन्न जो कपि संयोग	तत्सामानाधिकरण्यएतद्वृक्षत्वरूपहेतुमे रहने कारण स.हुआ	कपि संयोगाभाव जो एतत् वृक्ष मे है सो प्रतियोगि समानाधिकरण होकर न कि प्रतियोगिव्यधिकरण होकरहै अतः अव्याप्ति वारण
१६	लक्षणान्तर्गत प्रतियोगिव्यधिकरण शब्दार्थ निरूपण	यदि प्रतियोगिव्यधिकरण प्रतियोग्यनधिकरण वृत्ति	हेतु समानाधिकरण (हेतुतावच्छेदक सं० वच्छिन्न हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न ❀	अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्न जो साध्य	तत्सामानाधिकरण्य	व्याप्ति है । ❀निरूपकता निरूपित अधिकरणतावत् वृत्ती
१६, १७	दोष	कपिसंयोग रूप प्रतियोगी का अनधिकरण जो गुणकर्मउन मे वृत्ती और	(अपरदेशावच्छेदेन) एतद् वृक्ष रूपहेत्वधिकरणमे वृत्ती जो	कपिसंयोगाभाव	तत्प्रतियोगितावच्छेदकहीक. संयोगत्व रूप सा० वच्छेदक हुआ अतः	×	×	यदि प्रतियोगि व्यधिकरण शव्द का प्रतियोग्यनधिकरण वृत्ती अर्थ करें तो "कपि संयोगी एतद्वृक्षत्वात्" मे अव्याप्ति वनी रहेगी ।
१८	पुनः परि०	यदि प्रतियोगि व्यधिकरण प्रतियोग्यधिकरण वृत्तिभिन्न	हेतु समानाधिकरण हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न = हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न निरूपकतानिरूपित–	अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्नजो साध्य	तत्सामानाधिकरण्य	व्याप्ति है । –अधिकरणतावत् वृत्ती) जो
	स०	प्रतियोग्यधिकरण वृत्तिभिन्न	एतत् वृक्षत्वरूप हेतु समानाधिकरण	कपिसंयोगाभा. नहींहोगा क्यों कि वह अपरदेशावच्छेदेन❀	कपि संयोत्व	कपि संयोग	तत्सामानाधिकरण्य एतत् वृक्षत्वरूपहेतु मे है ।	अतः प्रतियोगि व्यधिकरण शव्द का यदि प्रतियोग्यधिकरण वृत्ति भिन्न अर्थ कहें तो यहाँ लक्षण समन्वय हुआ। ❀ प्रतियोग्यधिकरण वृत्तीहीहुआ अतःघटाभावही लेना पड़ेगा

१९	दोष	प्रतियोग्यधिकरण वृत्ति भिन्न	(और) सत्ता रूप हेतु समानाधिकरण	संयोगाभाव नहीं हुआक्यों कि वहद्रव्यमे भीअपरदेशाव च्छेदेनवृत्तिही+	संयोगत्व	संयोग	तत्सामानाधिक रण्य सत्तारूप हेतुमे । अत	"संयोगी सत्वात्" मे अति व्याप्ति +हुआ अतः घटाभाव है
१९	लक्षण (इस लक्षणमे सद्धेतु स्थलमे हेत्वधि करणसाध्या भा प्रतियोगीसाध्य ×	प्रतियोग्यनधिकरण	जो हेत्वधिकरण तदवृत्ती	(जो) अभाव	तत्प्रतियोगिता नवच्छेदकजो साध्यतावच्छे दक	तदवच्छिन्न जो साध्य	तत्सामानाधि करण्य	प्रतियोगि व्यधिकरण का यदि प्रतियोग्यनधिकरण जो हेत्वधिकरण तदवृत्ती जो अभाव ऐसाअर्थ करें तव "कपि त्वात्" इत्यादि स्थलों मे अव्याप्ति दोष नहीं हो सकता है × का अनधिकरण नहींहोनाचाहिये और व्यभि चारी होन ाचाहिये
(क)	स०	कपिसयोगाभावका प्रतियोगीं जो कपि संयोग उसका अनधि करण	एतत् वृक्षत्वाधिकरण नहीं हुआ । किन्तु	घटाद्यभावहीका प्रतियोग्यन धेकरणहेत्वधि करण हुआ अतः	कपिसंयोगत्व	कपि संयोग	तत्सामानाधिक रण्य एतद्वृक्ष त्वरूप हेतु मे है । अतः	यहाँ "कपि संयोगी एतद् वृक्षत्वात्" लक्षण समन्वय
(ख)	स०	संयोगाभावका प्रति योगी जो संयोगउस का अनधिकरण जो	गुणकर्मरूप हेत्वधि करण (तदवृत्ति)	संयागाभाव	तत्प्रातयागता वच्छेदकही सा ध्यतावच्छेदक हुआ अतः		×	"संयोगी सत्वात्" मे अतिव्याप्ति दोष वारण
२०	दो०	गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ताभाव प्रतियोगीजे गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ता(उसकोसत्ता रूप होनेकेकारण गुण *	गुणकर्मरूप हेत्वधि करण नहीं होगा अतः	गुण कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ताभा वनहों लिया जा यगाकिन्तु घट भावही होगा	गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्तात्व (प्रतियोगिता नवच्छेदकसा ध्यतावच्छेदक	गुण कर्मान्यत्व विशिष्टसत्ता रूप साध्य	तत्सामानाधिक रण्य जातिहेतु मेरहनेकेकारण	गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्तावान् जातेः मे अतिव्याप्ति *कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्तारुप शुद्धसत्तात्मक प्रतियोगी का अनधिकरण
२०	लक्षणमे पुनः परिस्कार	प्रतियोग्यनधिकरण प्रतियोगिता वच्छेद कावच्छिन्ननिरूपकता निरूपित अधिकरण त्वाभाववत् (जो)	हेत्वधिकरण (तद वृत्ती) ।	अभाव	तत्प्रतियोगिता नवच्छेदकजो साध्यता वच्छे दक	तदवच्छिन्न जो साध्य	तत्सामानाधि करण्य	ब्याप्ति है । अधिकरणत्वा भाववत् जो हेत्वधिकरण = अधिकरणत्वा भाववत् का अनधिकरण जो हेत्वधिकरण

	स०	विशिष्ट सत्ताभाव प्रति योगितावच्छेदक जो विशिष्टसत्तात्व तदव– च्छिन्न निरूपकतानिरू पिताधिकरणत्वा भा०	जो गुणकर्मरूप हेत्व धिकरण (तदवृत्ती)	जो गुणकर्मा न्यत्व विशिष्ट सत्ताभाव	तत्प्रतियोगिता नवच्छेदकवि शिष्टसत्तात्वरू. साध्यतावच्छेद ककोनहोनेके+	×	×	प्रतियोग्यनधि करणकायदिपूतियोगिता वच्छेद्का ४४ वच्छिन्न निरुपकता निरुपित अधिकरणत्वा भाववत् अर्थ करें तो "गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्तावान् जातेः" मे अतिव्याप्ति वारण हुआ। ०ववत् +कारण
२२	दो०	ज्ञानाभाव का प्रति योगीजोज्ञान उसका विषयता सम्बन्धसे वस्तुमात्र अधिकरणहै अनधिकरण	हेत्वधिकरण नहीं होनेके कारण	ज्ञानाभाव लक्षण घटकनहीहोगा किन्तुअभावा न्तरहो होगा	तत्प्रतियोगिता नवच्छेदकज्ञान त्वरूपसाध्यता वच्छेदकको होनेके कारण	तदवच्छिन्न साध्य	सामानाधि करण्य द्रव्यत्व रूपहेतु मे रह जायगा अतः	"ज्ञानवान् द्रव्यत्वात्" मे अतिव्याप्ति होगी।
२३	दो०	समवायसम्बन्धावच्छि न्नप्रतियोगिताकवह्न्य भावीयप्रतियोगिताव० वह्नित्वावच्छिन्न वह्निरू पप्रतियोगीका ❀	जो पर्वतादि रूप हेत्वधिकरणतदवृत्ति समवाय सम्बन्धा वच्छिन्न ? तियोगिताक	वन्ह्यभाव	प्रतियोगिता नवच्छेदक वन्हित्व रूप साध्यतावच्छे. कोनहीहोने ×	×	×	अव्याप्ति हुई। एवम् यदि पूतियोगिता वच्छेदक सम्बन्ध से पूतियोगी का अनधिकरणमात्र समझें। तो "वह्निमान् धूमात्" में अव्याप्ति। ❀समवायसम्वन्धेन अनधिकरण। × के कारण
२१	ल० मे परि०	प्रतियोग्यनधिकरण = साध्यतावच्छेदकसम्ब न्धावच्छिन्न*निरूपक तानिरूपितअधिकरण त्वाभाववत् जो	हेत्वधिकरण(तदवृत्ती)	अभाव	तत्प्रतियोगिता नवच्छेदक सा० वच्छेदक	तदवच्छि साध्य	सामानाधि करण्य	व्याप्ति हैं। निरुपकता साध्यता वच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्ना होना चाहिये। *प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न
	स०	ज्ञानाभावकाप्रतियोगी जो ज्ञान उसका सम वायसम्बन्धसे अनधि करण जो	हेत्वधिकरण रूप आत्तर द्रव्य तदवृत्ती	ज्ञानाभाव	प्रतियोगिता नव० ज्ञानत्व रू०सा० व० को नही होनेके कारण	×	×	"ज्ञानवान् द्रव्यत्वात्" में अतिव्याप्ति का वारण
	स०	समवायेन वह्न्यभाव प्रतियोगी जोवन्हि उसकासाध्यतावच्छेद कसंयोग सम्बन्धेन अनधिकरण	पर्वतादि रूप हेत्वधि करण नहीं होनेके कारण	समवायेनवन्ह्य भावलक्षण घट कनहीं होगा किंतुघटाभा– वादि होगा	तत्प्रतियोगिता नवच्छेदकजो वन्हित्वरूप साध्यता वच्छेदक	तदवच्छिन्न साध्य	तादृश साध्य सामानाधि करण्य धूमरूप हेतुमें रहनेकेकारण	लक्षणसमन्वय हुआ।

२४	विकल्प १म	प्रतियोगितावच्छे- दकावच्छिन्नयत्कि ञ्चितव्यक्तिका अनधिकरण	जो हेत्वधि करण तदवृत्ति	अभाव	तत्पूतियोगिता नबच्छेदक जो साध्यता वच्छेदक	तदवच्छिन्न साध्य	तत्सामानाधिकरण्य
२५, २६,	दोष का उप पादन	कपिसंयोगाभावका प्रतियोगितावच्छेदका वच्छिन्न यत्किञ्चित जो वृक्षावृत्ति कपि ×	एतत्वृक्ष रूप हेत्व धिकरण (तद्वृत्ति	कपि संयोगा- भाव	तत्पूतियोगिता वच्छेदक ही साध्यतावच्छे दक हुआ अतः	+	+
२४	विकल्प २य	प्रतियोगितावच्छेदका वच्छिन्न सामान्यान धिकरण जो	हेत्वधि करण (तद्वृत्ति)	अभाव	तत् प्रतियो गिता नवच्छे- दकजोसाध्यता वच्छेदक	तदवच्छिन्न जो साध्य	तत् सामानाधि करण्य*
	पूर्व दोषका वारण	कपि संयोगाभावप्रति योगिता वच्छेदका वच्छिन्न सामान्या- न्तर्गत वृक्षवृत्ति कपि संयोग का अनधिकरण ।	एतत् वृक्ष रूप हेत्वधि करण को नहीं होनेके कारण	कपिसंयोगा भावलक्षण घटक नहीं होगा किन्तु घटाभावा दिहीहोगा+	कपिसंयोगत्व	कपिसंयोग	तत्सामानाधिकरण्य एतत् वृक्षत्व मे है अतः अव्याप्ति नहीं हुई ।
२९	समन्वय "वन्हिमान् धूमात्" मे दोष निवारक ↓	साध्यता वच्छेदक संयोग सम्बन्ध से पूर्वक्षणवृत्तित्व विशिष्ट घटाभावाभाव रूप पूतियोगी का अधि करण ही अपूसिद्ध है तव अनधिकरण तो सुतरां अपूसिद्ध है अतः पूर्वक्षण वृत्तित्व बिशिष्ट घटाभावाभाव रुप पूतियोगी नहीं	पर्वतादि रुप हेत्वधि करणको होने के कारण तद वृत्ति	घटा दिही पूति योगीव्यधि करण हो जायगा अतः	तत्प्रतियोगिता नवच्छेदक वन्हित्व रुप साध्यताबच्छे दक होने के कारण	तदवच्छिन्न जो बन्हि रुप साध्य	तत्सामानाधिकरण्य धूम रुप हेतु मे रहने के कारण ।

व्याप्ति है । अर्थात्— यदि प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण का प्रतियोगिता वच्छेदका वच्छिन्न यत्किञ्चित् व्यक्ति का अनधिकरण अर्थ करें तो "कपिसंयोगी एतत् वृक्षत्वात्" मे अव्याप्ति

अव्याप्ति ।—

× संयोग उसका अनधिकरण जो + तत्पूतियोगितानवच्छेदक

*व्याप्ति हैं । यदि प्रतियोगिता वच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण का प्रतियोगितावच्छेदका वच्छिन्नसामान्यानधिकरण अर्थ करेंगे तो "कपि संयोगी एतत् वृक्षत्वात्" मे अव्याप्ति बारण हुआ किन्तु प्रतियोगि व्यधिकरण अभाव ही अप्रसिद्ध होगा । यथा पूर्वक्षण वृत्तित्वविशिष्ट घटाभाब के अभाव का अभाव = पूर्वक्षण वृत्तित्वविशिष्ट घटाभाव स्वरूप है पूर्वक्षण वृत्तित्व विशिष्ट घटाभाव = शुद्धघटाभाव स्वरूप है घटाभाव का प्रतियोगी = जैसे घट है वैसे पूर्वक्षण वृत्तित्व बिशिष्ट घटाभाब का अभाव भी है । तब घटाभाव के प्रतियोगिता बच्छेदकावच्छिन्न सामान्य मे पूर्वक्षण वृत्तित्व बिशिष्ट घटाभावका अभाव भी लिया जायगा जो केबलान्बयि है । अतः उस का अनधिकरण हेत्वधिकरण कोई नहीं होगा इसलिये कोई अभाव प्रतियोगि व्यधिकरण होही नहीं सकता । किन्तु बन्हिमान् धूमात्" इत्यादि स्थलों मे प्रतियोगि व्यधिकरण अभाव अप्रसिद्ध नहीं होगा क्योंकि प्रतियोगिव्यधिकरण आपने साध्यताबच्छेदक सम्बन्ध से कहा है तब घटाभाव का पूर्वक्षण वृत्तित्व बिशिष्ट घटाभाब का जो अभाव तद्रूप जो प्रतियोगी उस का साध्यता बच्छेदक संयोग सम्बन्ध से अधिकरण ही अप्रसिद्ध है अतः उस प्रतियोगी को नहीं लेकर घटरूप ही प्रतियोगी लिया जायगा उस का संयोग सम्बन्ध से अनधिकरण पर्वतादि रूप हेत्वधिकरण को होने के कारण घटाभावादि ही प्रतियोगि व्यधिकरण होजायगा । अतः इनस्थलोंमे अव्याप्ति नहीं होगी

		लिया जायगा । किन्तु घटरूप पृति योगी लिया जायगा साध्यतावच्छेदक संयोग ·म्बन्धसे घटरूप पृतियोगीकाअनधिकरण	अधिकरणही संसार है तव					
२९	दोष	घटाभाव का पृति योगी जैसे घटहै वैसे ही पूर्वक्षण वृत्तित्वविशिष्ट घटाभावका अभाव भी है । (उसका	उसका अनधि करण) हेत्वधिकरण नही होनेके कारण	घटाभावा दिप्रतियो गिव्यधिक रण नहीं होगाअत ०	×	×	+	
२९	ल० परि०	साध्यता वच्छेदक सम्बन्धेन प्रतियोगिता वच्छेदकावच्छिन्न सामान्यानधिकरण	जो हेत्वधि करण तद्वृत्ति	जो अभाव	तत्प्रतियोगिता नव· च्छेदकजो साध्यता बच्छेदक	तदवच्छिन्न	सामानाधिकरण्य ❀	
३०	समन्वय	साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन पूर्वक्षणवृत्तित्व विशिष्ट घटाभावाभावात्मकप्रतियोगीका अधिकरणही अप्रसिद्ध है अतः घटरूप प्रतियोगीकाअनधिकरणजो	हेत्वधिकरण तद्वृत्ति	जोअभाव	वन्हित्व	बन्हि	धूम मे हैं । +	
३०	पुनः दो०	घटाभावमे वृत्ती जो वन्ह्यभाव वह घटाभाव स्वरूप है अतः घटाभावकावन्हि भी प्रतियोगी हुआ उसका अनधिकरणजो	हेत्वधि करणजो वह अप्रसिद्ध है अतः	×	×	×	ऽ	

+अव्याप्ति वारण हुआ ।(स्पष्टार्थ)यद्यपि" अभावाधिकरणकजो ४६ अभाव वह अधिकरण स्वरूप है । अतः घटाभाव निष्ठ = जोहत्र्याभाववहघटाभावरूप हैतवघटाभावकाप्रतियोगीजैसेघटहुआवैसा ही वन्हि भी हुआ । तब साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से घटाभाव प्रतियोगिता वच्छेदका वच्छिन्न सामान्यान्तर्गत वन्हि रुप प्रतियोगी का अनधिकरण हेत्वधिकरण नहीं होने के कारण प्रतियोगि व्यधिकरण अभाव पुनः अप्रसिद्ध ही रह जायगा अतः वन्हिमान् धूमात् मे भी अव्याप्ति वारण नहीं हुआ । परन्तु यदि उक्त नियम न मानें तो घटाभाव निष्ट वहन्यभाव घटाभाव रुप न होगा तब घटाभाव का पृतियोगी बन्हि नहीं हो सकता,यदि पूर्वक्षण वृत्तित्वबिशिष्ट घटाभाब का अभाव घटाभाब का पृतियोगी हो सकता तो उसका संयोग सम्बन्धेन अधिकरणअप्रसिद्ध होने के कारणपृतियोगिता बच्छेदका बच्छिन्न सामान्य मे बह नहीं लिया जायगा किन्तु घटाभाब लिया जायगा । तब घटरुप पृतियोगी का संयोग सम्बन्धसे अनधिकरण पर्वतादि रुप हेत्वधिकरण होने के कारण घटाभावही पृतियोगी व्यधिकरण हो जायगा अतः "बन्हिमान् धूमात्" मे अव्याप्ति नहीं भी हो तथापि "धूमाभाबबान् बन्ह्यभाबात्" यहां स्वरुप सम्बन्धको साध्यताबच्छेदक सम्बन्ध होने के कारण उक्त रीति से कोई अभाब पृतियोगिव्यधिकरण नहीं होगा अतः अव्याप्ति होगी ।

०अव्याप्ति हुई ।

❀व्याप्ति ।

+अतः अव्याप्ति नहीं हुई ।

ऽअव्याप्ति हुई ।

३१,३२	❀ दोष विकल्प ३य,	❀ प्रतियोगितावच्छेदकीभूत यत्किञ्चित् धर्मावच्छिन्नानधिकरण जो	हेत्वधिकरणतद्वृत्तीजो	अभाव	तत्प्रतियोगिता नवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्न साध्य	तत्सामानाधिकरण्यव्याप्ति	❀ अभाधिकरणक अभाव यदि अधिकरणस्वरूप नहीं मानाजायतथापि धूमाभाववान्वह्न्यभावात् इत्यादिस्वरूप सम्बन्धेन साध्यकस्थलमेअव्याप्ति हुई ।
	समन्वय	"धूमाभाववान् वह्न्यभावात्" यहाँ घटाभाव प्रतियोगितावच्छेदक घटत्वरूप यत्किञ्चित् धर्मा ❀	जलादिरूपहेत्वधिकरण होनेकेकारण	घटाभावादि ही प्रतियोगीव्यधिकरण होगा	धूमाभावत्व	धूमाभाव	वह्न्यभावरुपहेतु मे है ।	अतः लक्षण समन्वय हुआ । ❀वच्छिन्नानधिकरण
३३,३४	दोष	कपिसंयोगाभावाभाव कपिसंयोग और गुण सामान्याभावाभावगुण सामान्यरूप है तब कपिसंयोगकोभीगुण +	जोआत्मरूप हेत्वधिकरणतद्वृत्ति	कपिसंयोगाभावाभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक कपिसंयोगाभावत्व रूप साध्यतावच्छेदक को नहीं होने के कारण	×	×	+ सामान्यान्तर्गतहोनेके कारण गुणसामान्याभावाभावसेभिन्न कपिसंयोगाभावाभावनहीं है अतः कपिसंयोगाभावाभावप्रतियोगिता वच्छेदकजोगुणसामान्याभावत्वतद्धर्मावच्छिन्नजोगुणसामान्याभाव उसक अनधि०कपिसंयोगाभाववान्आत्मत्वात् मे अव्याप्ति

इस लक्षण मे सद्धेतु मे साध्यता वच्छेदका वच्छिन्न प्रतियोगिता लक्षण घटक नहीं होनी चाहिये ।

और व्यभिचारी मे साध्यता वच्छेदका वच्छिन्न प्रतियोगिता लक्षण घटक होनी चाहिये ॥

३५	परि०	यादृश प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नका	अनधिकरण	हेत्वधिकरण हो	तादृश प्रतियोगितानवच्छेदकजोसाध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्न साध्य	तत्सामानाधिकरण्य	व्याप्तिहै। नवीन लक्षण (तद्वच्छिन्न साध्य सामानाधिकरण्य तद्वच्छिन्ननिरुपकता निरुपिताधिकरणतावद्वृत्तित्व) करनेसे "कपिसंयोगी एतत् वृक्षत्वात्" "धूमाभाववान् वह्न्यभावात्" कपिसंयोगाभाववान् आत्मत्वात् इत्यादि स्थलों मे अव्याप्ति वारण हुआ क्योंकि (१) कपिसंयोगत्व (२) धूमाभावत्व(३) कपिसंयोगाभावत्व धर्मावच्छिन्ना प्रतियोगिता यादृश प्रतियोगिता मे गृहीत नहीं होगी क्योंकि एतत् धर्मावच्छिन्नानधिकरण हेत्वधिकरण नहीं होगा ।
३५	दोष	साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन यादृश प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण कहनेसे "कालोघटवान्काल परिमाणात्" यहाँ	अधिकरणही (नकिअनधिकरण)	महाकाल रुप हेत्वधिकरण है अतः	×	×	×	

		साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध कालिक है। उस सम्बन्धसे सभी पदार्थ महाकालरुप हेत्वधिकरणमे रहतेहैंअतः यादृशप्रतियोगितामें किसी प्रतियोगिताके नहीं ले सकते क्योंकि जिस प्रतियोगिता को लेगेतादृशप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नके						कालो घटवान् कालपरिमाणात् मे अव्याप्ति।
३७,३८	मतान्तरसे दोष निवारण	महाकालान्यत्वविशिष्ट घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदक जो महाकालान्यत्वविशिष्ट घटत्व तदवच्छिन्न का	अनधिकरण	महाकाल रूप हेत्वधिकरण होने के कारण	तादृश प्रतियोगितानवच्छेदक जो घटत्व रुप साध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्न साध्य	सामानाधिकरण्य काल परिमाण रूप हेतुमेंरहनेकेकारण लक्षण समन्वय हुआ अतः	यादृशप्रतियोगिता महाकालान्यत्व विशिष्ट घटत्वावच्छिन्ना प्रतियोगिता यहाँ लक्षण घटक है
३९	चरम लक्षण	प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्ध से यादृश प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न का	अनधिकरण	हेत्वधि करणहो	तादृश प्रतियोगिता सामान्यमेंयत्सम्बन्धावच्छिन्नत्व यद्धर्मावच्छिन्नत्व उभयाभाव रहे	तद्धर्मावच्छिन्न तेनसम्बन्धेन हेतुका व्यापक है	औरतादृशव्यापकका तेनसम्बन्धेन हेतुनिष्ठ सामानाधिकरण्य व्याप्तिहै	

१. गुरु धर्म को प्रतियोगिता वच्छेदकत्व मानकर उक्त लक्षणकिया गया है अतएव "कम्बुग्रीवादि मत्वान् कपालत्वात्" इत्यादि स्थल में अव्याप्ति न हुई।

पञ्चलक्षणी व्याप्तिलक्षण तथा परिस्कार।

१ साध्यवदन्य निरूपित वृत्तित्वा भाव।

२ साध्यवत् (साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन) अन्य निरूपित वृत्तित्वाभाव।

३ साध्यवदन्य निरूपित वृत्तित्व (हेतुताबच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न) अभाव।

४ साध्यवदन्य निरूपित वृत्तित्वाभाव (साध्यवदन्य निरूपित वृत्तितात्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव)

५ साध्यवदन्य निरूपितवृत्तितानवच्छेदक जो हेतुतावच्छेदक तदवत्व।

सिद्धान्त लक्षण।

१ हेतुमन्निष्ठ जो अभावतदप्रतियोगी जो साध्य तादृश साध्य सामानाधिकरण्य

२ हेतु समानाधिकरण जो अभाव तत्प्रतियोगिता नवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक तदवच्छिन्न साध्य सामानाधिकरण्य।

टि० न० १ हेतुमत = हेतुतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न हेतुनिष्ठ निरुपकता निरुपिताधिकरणतावत्।

टि० न० २ हेतुसमानाधिकरण = हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न निरुपकता निरुपिताधिकरण तावत्।

३ प्रतियोगिव्यधिकरण हेतुसमानाधिकरण जो अभाव तत्प्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्न साध्य सामानाधिकरण्य।

टि० प्रतियोगिव्यधिकरण = (क) प्रतियोग्यनधिकरण वृत्ति।
तथा (ख) प्रतियोग्यधिकरण वृत्तिभिन्न।

४ प्रतियोग्यनधिकरण हेत्वधिकरण वृत्ति जो अभाव तत्प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न साध्य सामानाधिकरण्य।

टि० प्रतियोग्यनधिकरण = प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न निरुपकतानिरुपिताधिकरणत्वाभाववत्।

वा

साध्यताबच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताबच्छेदकाबच्छिन्ननिरुपकतानिरुपिताधिकरणत्वा भाववत्।

प्रतियोगिता वच्छेदकावच्छिन्न = (क यत्किञ्चित् व्यक्त्यनधिकरण वा (ख) सामान्यानधिकरण (ग) प्रतियोगितावच्छेदकीभूत यत्किञ्चित् धर्म्मावच्छिन्नानधिकरण।

५ यादृशप्रतियोगिताबच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण हेत्वधिकरण हो तत्प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यता बच्छेदकावच्छिन्न साध्य सामानाधिकरण्य।

६ चरम, प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्धाबच्छिन्न यादृश प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण हेत्वधिकरण हो तादृश प्रतियोगिता सामान्यमे यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्व (साध्यतावच्छेदक सम्बन्धाबच्छिन्नत्व) यद्धर्मावच्छिन्नत्व (साध्यताबच्छेदक धर्मावच्छिन्नत्व) उभयाभाव तद्धर्मावच्छिन्न = (साध्यता बच्छेदक धर्मावच्छिन्नत्व) तेनसम्बन्धेन। (साध्यतावच्छेदक सम्वन्धावच्छिन्नत्व) हेतुका व्यापक है। और तादृश व्यापक का तेन सम्बन्धेन हेतु निष्ठ समानाधिकरण व्याप्तिहै।

१	लक्षण	साध्य	(साध्यवत्) वत्	(साध्यवदन्य) अन्य	निरूपि.	साध्यवदन्य निरूपितवृत्तित्व
२	परिस्कृत लक्षण	,,	वत् (साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन) १	,, अन्य	,,	,,
३	,,	,,	,,	२ अन्य(साध्यवत्वाव० प्रतियोगिताकभेदवान्	,,	,,
४	,,	,,	,,	,,	,,	वृत्तित्व हेतुताव० (सम्बन्धावच्छिन्न) ३
५	,,	,,	,,	,,	,,	वृत्तिता
६	,,	,,	,,	,,	,,	वृत्तिता नवच्छेदक (जो) हेतुतावच्छेदक ५

सिद्धान्त

टि० (क) " सद्धेतुमे साध्याभाव लक्षण घटक नहीं होना चाहिये " व्यभिचारी में साध्याभाव लक्षण घटक होना चाहिये ।

१	ल०	हेतु	हेतुमत्	(हेतुमन्निष्ठ) अभाव	(हेतुमन्निष्ठ अ०) अप्रतियोगी साध्य	तादृशसाध्य
२	प० ल०	,,	समानाधिकरण हेतुमत् वृत्ति जो	अभाव	तत्प्रतियोगिता नव० सा० व०	तद्वच्छिन्न जो साध्य तत्
३		(हेतु-हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न जो निरूपकतानिरूपित जो अधिकरणता तद्वत् अर्थहै	समानाधिकरण)	निष्ठ अभाव	,,	,,
४		(हेतु = -हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नहेतुनिष्ठ निरूपकतानिरूपिताधिकरणतावत्	मत्	अभाव	,,	,,
५	,,	प्रतियोगिव्यधिकरण	हेतुसमानाधिकरण	,,	,,	,,
६	,,	यदि पृतियोगिव्यधिकरण = पृतियोग्यनधिकरण वृत्ति	,,	,,	,,	,,
७	,,	यदिपृतियोगि व्यधिकरण = पृतियोग्यधिकरण वृत्तिभिन्न	,,	,,	,,	,,

साध्यवदन्य निरूपितवृत्ति त्व अभाव	समन्वय स्थल "वन्हिमान्धूमात्"	वह्न्य वयव लेकर १ (दोषस्थल)	"वह्निमान्'धूमात् अव्याप्ति
,,	,,	महानसादि ४ लेकर २	,,
,,	,,	धूमावयव ३	,,
,,	,,	ह्रदादि निरूपित वृत्तित्वाभाव वह्नि मे है। ४	('धूमवान्वन्हेः' मेअतिव्याप्ति
अभाव (साध्य वदन्यनिरूपि तवृत्तितात्वा वच्छिन्नप्रति योगिताक)४	"धूमवान् वन्हे" (अयोगोलक लेकर वारण)	सत्ता और विशिष्टता एक होने के कारण। ५	'द्रव्यंविशिष्टस त्वात्' में अ- व्याप्ति।
तदवत्व	द्रव्यं विशिष्टसत्वात्	(१) ज्ञे॰ त्व वदन्य अप्रसिद्ध होनेके कारण (२) (एवम्) सामान्यादि मे समवाय सम्बन्ध से किसी को नहीं रहने के कारण	ज्ञेयत्ववान् वाच्य त्वात् सत्तावान् जातेः'मे क्रमशः अव्याप्ति

लक्षण
टि० (ख) सद्धेतु स्थल मे हेत्वधिकरण साध्याभाव प्रतियोगी का अनधिकरण नहीं होना चाहिये एवंव्यभिचारीमे हना चाहिये।

सामानाधिकर ण्यहेतुके साथ	"ज्ञेयत्ववान् वाच्य त्वात्' "सत्तावान् जातेः	विशेष व्याप्ति मे भी उभयाभावलेकरऔर चालनीन्यायसे	"तद्वन्हिमान् तद्धू मात्" गुणवान् द्रव्यत्वात्मेक्रमशः अव्याप्ति।
सामानाधि करण्य	"तद्वन्हिमान् तद्धू मात्' "गुणवान् द्रव्यत्वात्	"रूपत्वव्याप्यजातिमत्वान् पृथ्वीत्वात्" "दण्डिमान् दण्डिसंयोगात्" मे स्वाश्रयाश्रयत्व सम्बन्ध करके या लक्षणान्तरगतकरके निर्वाह।	किन्तु 'द्रव्यं गुण कर्मान्यत्वविशिष्ट सत्वात्मे अव्याप्ति
,,	गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्वात्'	तादृश अधिकरणता द्रव्यही मे मानी जाती है अतः समन्वय हुआ किन्तुधूमावयव लेकर।	'वन्हिमान् धूमात् मे अव्याप्ति।
,,	'वन्हिमान् धूमात्'	किन्तु वृक्ष मे अपरदेशावच्छेदेन कपिसंयोगाभावकेहेतु	'कपिसंयोगी एतत् वृक्षत्वात् मे अव्याप्ति
,,	कपिसंयोगी एतद् वृक्षत्वात्'	कपिसंयोगाभाव को प्रतियोगी समानाधिकरण होनेसे समन्वय। अतः प्रतियोगिव्यधिकरणपर विचार।	×
,,	×	कपिसंयोग रूप प्रतियोगी का अनधिकरण गुण कर्महोने के कारण।कपिसंयोगाभाव लिया गया अतः पुनः।	'कपिसंयोगी एतद् वृक्षत्वात् मे अव्याप्ति।
,,	,,	कपिसंयोगाभाव को प्रतियोग्यधिकरणवृत्तिभिन्न नहीं होनेके कारण समन्वय किन्तुसंयोग अव्याप्यवृत्ती है अतः।	संयोगी सत्वात् मे अतिव्याप्ति।

८	टि० ” (ख)	प्रतियोग्यनधिकरण	(जो) हेत्वधिकरण (तद्वृत्ति)	अभाव ”	तत्प्रतियोगितानवच्छेदकजो सा.वच्छेद	तद्वच्छिन्न जो साध्य तत्
९	”	प्रतियोग्यनधिकरण = प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न निरूपकतानिरूपितअधिकरणत्वाभाववत् जो	”	”	”	”
१०	”	प्रतियोग्यनधिकरण = साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपित अधिकरणत्वाभाववत् (जो)	”	”	”	”
११	”	प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न = यत्किञ्चित व्यक्ति का अनधिकरण	जो हेत्वधिकरण वृत्ति	”	”	”
१२	”	प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न = सामान्यानधिकरण जो	हेत्वधिकरण	”	”	”
१३	”	प्रतियोगितावच्छेदकीभूत यत्किञ्चित् धर्मावच्छिन्नानधिकरण(जो)	”	”	”	”
१४	”	यादृश प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न	अनधिकरण	हेत्वधिकरणहो	”	”
१५	चरम ल० ”	प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धसेयादृश प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नका	”	”	तादृशप्रतियोगितासामान्यमेयत्सम्बन्धावच्छिन्नत्वसाध्यतानवच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्नत्व यद्धर्मावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकधर्मावच्छिन्नत्व उभयाभाव	तद्धर्मावच्छिन्न सा०) तेन सम्बन्धेन(सा०) हेतु का व्यापक है

सामानाधिकरण्य	संयोगी सत्वात्	शुद्धसत्ता और विशिष्टसत्ता एक है अतः विशिष्ट सत्ता का अधिकरण गुण कर्म भी होने के कारण।	गुण कर्मान्यत्व विशिष्टसत्तावान् जातेः मे अतिव्याप्ति ।
”	“गुण कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्तावान्जातेः	ऐसा निवेश से अनधिकरण गुण कर्म रूप हेत्वधिकरण हुआ अतः वारण किन्तु ।	ज्ञानवान् द्रव्यत्वात् औरवन्हिमान्धूमात्’ में क्रमशः अतिव्याप्ति और अव्याप्ति
”	‘ज्ञानवान्द्रव्यत्वात्’ ‘वन्हिमान् धूमात्’	अव क्रमशः समवाय और संयोग सम्बन्ध के ग्रहण से वारण और समन्वय किन्तु प्रतियोगिता वच्छेदकावच्छिन्न पर विचार	×
”	×	वृक्षावृत्ति कपिसंयोगको लेकर	कपिसंयोगी एतद् वृक्षत्वात्मे अव्याप्ति ।
”	‘कपिसंयोगी एतद् वृक्षत्वात्’	साध्यता वच्छेदक सम्बन्ध के कारण अभाव अप्रसिद्ध नहीं होगा। विस्तृत व्याप्ति चित्र की टिप्पणी देखो	“धूमाभाववान् वन्ह्यभावात् मे अव्याप्ति ।
”	“धुमाभाववान् वन्हिभावात्”	यत्किञ्चित धर्म से घटत्व को लेकर समन्वय किन्तु	“कपिसंयोगाभाववान् आत्मत्वात्’ मे अव्याप्ति ।
”	कपिसंयोगाभाववान् आत्मत्वात्’ इत्यादि में	यादृश तादृश के निवेश से समन्वय हुआ, किन्तु	“कालो घटवान् कालपरिमाणात्’मे अव्याप्ति ।
और तादृश व्यापकका तेन सम्बन्धेनहेतु निष्ठसमानाधिकरण व्याप्ति है	कालो घटवान् काल परिमाणात्’	कोई तो महाकालान्यत्व विशिष्ट घटाभाव को लेकर समन्वय करते हैं, तद्भिन्न केवल परिष्कार से	

टि० गुरुधर्म को प्रतियोगिता वच्छेदकत्व मानकर उक्त लक्षण किया गया है अतएव “कम्बुग्रीवादि मत्वान् कपालत्वात्” इत्यादि सद्धेतु मे अव्याप्ति न हुई ।

१	ल०	सिषाधयिषा = साध्यानुमितीच्छा-	विरहवशिष्ट	सिद्धि (साध्यनिश्चय)	तादृश सिध्याभाव	पक्षता है	एतावता तादृश साध्य निश्चयाभाव रूप (पक्षता) धर्मवान् पक्ष हैं।
२	सम-न्वय	वह्यनुमितीच्छा—	,,	वन्हि निश्चय	वन्हि निश्चयाभाव	पक्षता है	
३	दो०	यत्किञ्चित् ज्ञानेच्छा रुप शिषाधयिषा	विरह विशिष्ट सिद्धि नहीं है				क्योंकि "वन्हिव्याप्य धूमवान् पर्वतो वन्हिमाञ्च" सिद्धियत्किञ्चित् ज्ञानम् मे जायताम्" सिषाधयिषा) इस स्थल मे अनुमिति नहीं होती है अब हो जायगी अतः परिस्कार।
४	ल०	यादृश२शिषाधयिषा और यादृश यादृश सिद्धिसत्वमेयल्लिङ्ग जन्य *नुमिति हो तादृश सिषाधयिषा	विरह विशिष्ट	जो सिद्धि (अनुमितिप्रतिवन्धक है)	तादृश सिद्धिका अभाव	तल्लिङ्गजन्य अनुमितिजनक पक्षता है	(एवम् तादृश धर्मवान् पक्ष है। ऐसा लक्षण करने से "पर्वतस्तेजस्वी पाषाणमया वह्निमान् इत्यादि निश्चय करने पर भी अनुमित्यनुपपत्ति नहीं हुई।

चि० न० ४६ (सिषाधयिषा विरह वैशिष्ट्य विशेषण देने पर भी समन्वय हो जायगा

१	ल०				सिद्ध्यभाव	पक्षता है	* क्योंकि सिद्धिभावरूप कारण ३य क्षण मे रहगया
२	स०	सिद्धि १म लक्षण मे	सिषाधयिषा (२य क्षणमे)	परामश (३यक्षणमे)	अनुमिति (४र्थ क्षणमे)	यहाँ अनुमिति होतीहै सो हो जायगी *	इसी तरह सिद्धिसिषाधयिषा परामर्श इन तीनों के व्युत्क्रम करने से जहाँ अनुमिति होती है वहाँ होगी जहाँ नहीं वहाँ न होगी — अतः समन्वय हुआ।
३	दो०	सिद्धिपरामर्श (१म क्षणमे समूहालम्बन	सिषाधयिषा (२य क्षणमे)	×	३य क्षणमे अनुमिति	यहाँ अनुमिति होतीहै सो न होगी	क्योंकि सिद्धिरूप प्रतिवन्धक ही है। अतः उक्त निवेश करना आवश्यक है।
४	प०ल०	सिषाधयिषा	विरह विशिष्ट	सिद्धि	तादृशसिद्ध्याभाव	पक्षता है	अब पूर्ववत् समन्वय हुआ।

चि० ४७ का० न० ७०-का मुक्तावली पक्षताके लक्षण मे सिषाधयिषा विरह विशिष्टत्व विशेषणका वैयर्थ्य बोधक पूर्वपक्ष चित्र ।

	क्षण १	क्षण २	क्षण ३	क्षण ४	क्षण ५
१	परामर्श	(सिद्धि)	अनुमित्सा	अनुमिति	अनुमिति नहीं होगी, क्योंकि अनुमितिक कारण परामर्श का नाश ३य क्षण मे हो गया ।
२	सिद्धि	परामर्श	,,	,,	अनुमिति होगी, क्योकि सिद्धिरूप प्रतिबन्धक का नाश ३य क्षण ही मे होगया ।
३	सिषाधयिषा	सिद्धि	परामर्श	,,	अनुमिति न होनो चाहिये सो नहीं होगी क्योंकि सिषाधयिषा का ३य क्षणमे नाश हो जायगा । और सिद्धि ३य क्षण मे रह जायगी ।
४	परामर्श	सिषाधयिषा	सिद्धि	,,	अनुमिति नही होगी क्योंकि परामर्श का ३य क्षणमे नाश हो जायगा ।
५	सिद्धि	,,	परामर्श	,,	अनुमिति होगी क्योकि सिद्धिरूप प्रतिवन्धक का अभाव ३य क्षण मे हुआ ।
६	सिषाधयिषा	परामर्श	सिद्धि	,,	अनुमिति नहीं होगी क्योंकि ३य क्षण मे इच्छा के नाश से इच्छा बिरह विशिष्ट सिद्धरूप प्रतिबन्धक रह जायगा ।

चि० न० ४८ का० न० ७० का मुक्तावली, पक्षता के लक्षण मे सिषाधयिषा विरहविशिष्टत्व विशेषण का सार्थक्य बोधक सिद्धान्त चित्र ।

	१ क्षण	२ क्षण	३यय क्षण	
१	परामर्श + सिद्धि प्रत्यक्षात्मक वास्मरणात्मकप्रत्यक्षात्मकवास्मरणात्मक	अनुमित्सा	अनुमिति	इस प्रकार समूहालम्बनसे ३य क्षणमें अनुमितिहोगी और अनुमिति केपूर्वक्षण मे सिषाधयिषासिद्धिपरामर्शो के विद्यमानता के कारणसिषाधयिषा विरह विशिष्टत्व विशेषणकी सार्थकता हुई
२	अनुमित्सा	परामर्श + प्रत्यक्षात्मक वास्मरणात्मकप्रत्यक्षात्मकवास्मरणात्मक	अनुमिति	

१. जिसमे साध्यका सन्देह या सिषाधयिषा विरह विशिष्ट सिद्धयभाव हो वह पक्ष है (२) जिसमे साध्य का निश्चय हो वह सपक्ष है (३) जिसमे साध्याभावका निश्चय हो वह विपक्ष है

चि॰ न॰ ४९ यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमिति विरोधित्वम् तत्त्वम् हेत्वाभासत्वम् यह दोष का लक्षण है। उसका समन्वय।

यद्विषयकत्वेन	ज्ञानस्य	अनुमिति-	विरोधित्वम्	तत्वम्	हेत्वाभासत्वम्	यहाँ अनुमिति पदसे अनुमिति तत्कारण परामर्श दो मेसे एकका ग्रहण होता है।
वन्ह्यभाववद्ध्रद विषयकत्वेन	वन्ह्यभाववान् ह्रदः	वन्हिमान् ह्रदः	×	वह्नयभाववद्ध्रद त्वम्	×	वन्ह्यभाववान्ह्रद मे है इसलिये यह दोष हुआ। तद्वत्ता धूममे है। इसलिये ह्रद पक्षक वह्नि साध्यक स्थल मे धूम दुष्ट हुआ।
वन्ह्यभाव विषयकत्वेन	वन्ह्यभाववान् पर्वतः इसभ्रमको	वन्हिमानपर्वतः	+	वन्ह्यभाव मे है	+	इसलिये वाध भ्रमैक देश मे अतिव्याप्ति हुई।
यादृश विशिष्ट विषयकत्वेन	ज्ञानस्य	अनुमिति-	विरोधित्वम्	तत्त्वम्	हेत्वा भासत्वम्	एक देशमे अतिव्याप्ति वारण हुआ।
वन्ह्यभाववत्पर्वंत अप्रसिद्ध है	०	०	०	०	०	अतः अतिव्याप्ति नहीं है।

यद्विषयक निश्चय अनुमिति वा परामर्श अन्यतर का प्रतिबन्धक हो वही हेत्वाभास दोष है तदाश्रय दुष्ट है।

हेत्वाभास

- (१) अनैकान्तिक
  - (१) साधारण
    - (१) विरुद्ध साधारण
    - (२) समानाधिकरण साधारण
  - (२) असाधारण
  - (३) अनुपसंहारी
- (२) विरुद्ध
- (३) असिद्ध
  - (१) आश्रयासिद्ध
  - (२) स्वरुपासिद्ध
    - (१) भागासिद्ध
    - (२) तद्भिन्न स्वरुपा सिद्ध (सम्पूर्णा सिद्ध)
  - (३) व्याप्यत्वासिद्ध
    - (१) साध्याप्रसिद्ध
    - (२) साधनाप्रसिद्ध
    - (३) व्याप्यभाववद्धेतु
- (४) प्रतिपक्षित (सत्प्रतिपक्षित)
- (५) कालात्ययापदिष्ट (बाधित)

चि० न० ५१ हेत्वाभास के पाँचो प्रभेदों का सामान्यविवरण ।

नाम हेत्वाभास	प्रभेद,	लक्षण	नित्य	अनित्य	प्रतिबन्धक	प्रतिवध्य	उदाहरण	टिप्पणी
अनैकान्तिक (व्यभिचार)	१. साधारण २. असाधारण ३.अनुपसंहारी	साधारणद्यन्यतमत्वम्	नवीन और कुछ प्राचीनोंके मत से	कुछ प्राचीनोंके मत से	व्यभिचारग्रह	व्याप्तिग्रह	(१) पवतोवह्निमान् (२) शब्दोऽनित्यः (३) सर्वमभिधेयम्	प्रमेयत्वात् शब्दत्वात् प्रमेयत्वात्
विरुद्ध	×	हेतुनिष्ठसाध्यव्यापकीभूताभाव प्रतियोगिस्ववत्वम्	नवीनोंकेमत से	प्राचीनोंकेमत से	साध्याभाव व्याप्यहेतुग्रह	साध्यग्रह	अयं गौः अश्वत्वात्	हेतुमे विरुद्धत्व ज्ञान साध्याभावनिरूपित व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानरूप होनेकेकारणसाध्याभावानुमिति होतीहै अतःसाध्यानुमिति नहीं
असिद्ध	(१)आश्रयासिद्ध (२)स्वरुपासिद्ध (३)व्याप्यत्वासिद्ध	आश्रयासिद्धाद्यन्यतमत्वम्परामर्श प्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्वं वा	,, केवल नित्य है	,,	पक्षादौपक्षतावच्छेदकाद्य भाव ज्ञानम्	परामर्श	(१)काञ्चनमयपवतो वह्निमान्(२)ह्रदोद्रव्यं धुमात्(३)पर्वतो वन्हिमान्नीलधूमात्	साधनाप्रसिद्धिसाध्याप्रसिद्धिप्रभृति,व्याप्यत्वासिद्धि मे ही आजाती है। इसलिये विभागमे न्यूनता नहीं है।
सत्प्रतिपक्ष		अगृहीताप्रामाण्यकपक्षधर्मिकसाध्यविरोधिव्याप्यवत्तोपस्थितिकालीनपक्षधार्मिकसाध्यव्याप्यवत्तोपस्थिति विषयत्वम्	नवीनोंके मतसे	प्राचीनोकेमत से	परस्पराभाव व्याप्यवत्ताग्रह	साध्यानुमिति एवंसाध्याभावानुमिति		सत्प्रतिपक्षस्थल मे दो हेतु रहते हैं विरोध स्थल मे एक ही हेतु रहता है
कालात्ययापदिष्ट (वाधित)		साध्याभाववत् पक्षकत्वम्	,,	,,	साध्याभाववत् पक्षज्ञान	पक्षमेसाध्यवत्ताज्ञान	उत्पत्तिकालीनोघटो गन्धवान्	

चि० न० ५२ हेत्वाभास का विस्तृत चित्र ।*जो विपक्षमात्र में रहताहै वह विरुद्ध साधारणऔर जोसपक्षविपक्षदोनों में रहता है वहसमानाधिकरणसाधारण है।

	नाम हेत्वाभास	प्रभेद और नाम	नित्यवा अनित्यदोष		लक्षण प्रतिबन्धक		प्रतिवध्य		दृष्टान्त		टिप्पणी
			नित्य	अनित्य	प्रा० मत	न० मत	प्रा० मत	न० मत	प्रा० मत	न० मत	
१	अनैकान्तिकत्व (व्यभिचार)वा अनैकान्तिक (सव्यभिचार)	तीन प्रभेदहैं (क) साधारण(ख) असाधारण (ग) अनुपसंहारी	नित्य	अनित्य	(क) "निश्चितसाध्यवद्भिन्न वृत्तित्व"	"साध्यवद्भिन्न वृत्तित्वत्वादि	"साध्यवद्भिन्ना वृत्तित्व इत्यादि अन्वयव्याप्ति ज्ञान	एवम्	पर्वतो बन्हिमान्प्रमेयत्वात् (दोनोंकेमत से	एवम्	कुछप्राचीनोंकेमत सेअनित्य औरतद्भिन्नप्राचीनएवंनवीनों केमतसेनित्य दोष है।
क)	साधारणत्व वासाधारण	विरुद्ध, समानाधि०	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	*

ख	असाधारणत्व (व्यभिचार) वा असाधारण (सव्यभिचार)	१	(न. मत) नित्य	(पू०मत) =अनित्य	प्रा० मत पक्षमात्र वृत्तित्वत्व	(न० मत) हेतुनिष्ठ साध्य व्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वत्व	साध्यसामानाधिकरण्य घटित व्याप्ति ज्ञान	पक्षः साध्यवत्इत्याकारक ज्ञान	शब्दःअनित्यः शब्दत्वात्	५९ पर्वतो वन्हिमान् जलात्
(ग)	अनुपसंहारित्व (व्यभिचार) वा अनुपसंहारी सव्यभिचारी)	,,	(न०मत) नित्य	(पू०मत) अनित्य	१ साध्यसन्देहविषयविश्वकत्व (२)साध्यएवंहेतुनिष्ठ अत्यन्ताभाव प्रतियोगित्वत्व	एवम्	साध्य सामानाधिकरण्य ज्ञान	व्यतिरेक व्याप्तिज्ञान	सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वात् दोनोकेमतोंसे	एवम्
२	विरोध वा विरुद्ध	,,	,	,,	अनबगतसाध्यसहचारत्वे सति अवगत साध्याभाव सहचारकत्व	हेतुनिष्ठसाध्या सामानाधि करण्य	व्याप्ति ज्ञान	साध्य सामानाधिकरण्यज्ञान	अयं गौः अश्वत्वात् (दोनों के मतों से)	एवम्
३	असिद्धिवा असिद्ध	(३ भेद) (क)आश्रयासिद्धि (ख) स्वरुपासिद्धि (ग)व्याप्यत्वासि.			परामर्श प्रतिबन्धक यथार्थ ज्ञान विषयत्व	एवम्				
(क)	आश्रयासिद्धि आश्रया सिद्ध				पक्षनिष्ठ पक्षतावच्छेदकाभावत्व	,,	पक्षमे पक्षताबच्छेदक ज्ञानचाहेअनुमित्यात्मक हो या परामर्शात्मक	एवम्	काञ्चनमय पर्वतो वन्हिमान् धूमात्	एवम्
(ख)	स्वरुपा सिद्धि वा स्वरुपा सिद्ध	दोपूभेद ख-भागासिद्धि ख-तद्भिन्नस्वरुपासिद्धि (सम्पूर्णासि.			(ख) पक्षनिष्ठहेत्वभावत्व	,,	पक्ष मे हेतुका ज्ञान	,,	ह्रदोवन्हिमान् धूमात्	,,
ख २ १	भागासिद्धि तदन्यस्वरुपा सिद्धि	,,			१ पक्षैकदेशनिष्ठहेत्व भावत्व २ सकलपक्षनिष्ठहेत्वभावत्व		ख-१ पक्षमे हेतुका ज्ञान ख-२ ,,		ख-नरोधार्मिकः १-विद्याबत्त्वात् २-ह्रदोद्रव्यं धू.	
ग	व्याप्यत्वासिद्धि वा व्याप्यत्वासिद्ध	३ भेद ग-साध्याप्रसिद्धि ग-साधनाप्रसिद्धि ग-व्याप्त्यभाववत् हेतु	ग-नित्य ग-१ ,, ग-२ ,, ग-३ ,,		साध्यव्याप्यतानबच्छेदक हेतुतावच्छेदक १साध्यनिष्ठसाध्यता बच्छेदकाभावत्व २हेतुनिष्ठहेतुताबच्छेदकाभावत्व ३ हेतुनिष्ठव्याप्त्यभावत्व		ग-१साध्यमेसाध्यतावच्छेदककाज्ञान ग-२ हेतुमेहेतुतावच्छेदककाज्ञान ग-३ हेतुमे व्याप्ति ज्ञान		१-पर्वतःकाञ्चनमयवन्हि०धू० २-पर्वतोबन्हिमान् कां० धू० ३- ,, ,, नील धूमात्	
४	सत्प्रतिपक्षत्व वा सत्प्रतिपक्ष	हेतु १	नित्य नवीन	अनित्य (प्राचीन)	साध्यबिरोधि साधक परामर्शकालीनसाध्य-साधकपरामर्श विषयत्व	पक्षनिष्ठ साध्याभाव व्याप्यवत्व	पक्षमे साध्य का ज्ञान	पक्षमे साध्य का ज्ञान	पर्वतो वन्हिमान् धूमात्	ह्रदोवन्हिमान् धूमात्
५	कालात्ययापदिष्टत्व (घ) वा कालात्ययापदिष्ट (वाधित)	,,	,,	,,	पक्षनिष्ठ साध्याभावत्व		पक्षमे साध्यका ज्ञान		उत्पत्तिकालीन घटोगन्धवान् पृथिवीत्वात्	

गवये गो सादृश्य ज्ञानम्=उपमानम्

उपमान खण्ड चित्र

चि० न० ५३

का० न० ७६,८० मैं मुक्तावली ।

उपमितिः—गवयो गवय पद वाच्यः इत्याकारक गबयादि पद, शक्ति ज्ञान

करण

(गवयादि मे गो सादृश्य ज्ञान)

व्यापार (करण का)

("गो सदृशोगवय पद वाच्यः इत्यादि अतिदेश वाक्यार्थं स्मरण)

सहकारी करण

(मन)

शब्दखण्ड चित्र

कारिका न० ८१—मैं मुक्तावली

चि० न० ५४

शाव्दबोध

करण

पद ज्ञानहै नकि ज्ञाय मानपद

व्यापार (कारण का)

(पदजन्य पदार्थोपस्थिति)

सहकारीकारण

पदतदर्थोंका सम्बन्ध विशेषरुप जो शक्ति है उसकाज्ञान सहकारीकारण है आत्म मनः संयोग

कारण

१ आशक्ति ज्ञान
२ योग्यता ज्ञान
३ तातपर्य्यं ज्ञान
४ आकांक्षा ज्ञान

शक्तिग्रहके भेद

लक्षण का वीज

लक्षण का स्वरुप

शक्य सम्बन्ध

लक्षण के भेद

शक्ति ग्रह प्रभेद

१ व्याकरण (भूसत्तायाम् इत्यादि)
२ उपमान (गोसदृशोगवयः)
३ कोष (शीतंगुणेतद्वदर्थाः सुषीमः शिशिरोजड़ इत्यादि)
४ आप्तवाक्य (कोकिलःपिकः)
५ वृद्धव्यवहार (घटमानयइत्यादि)
६ वाक्यशेष (वसन्तेसर्वस-स्यानामित्यादि)
७ विवरण (पचतिपाकं करोति)
८ प्रसिद्ध पदसान्निध्य (इहसहकारतरौपिको मधुरंरौति)

टि० पद की शक्ति अर्थ मे है नकि वाक्य की तथा सभास की—

अन्वयानुपपत्ति मे लक्षणा बीज मूल ही मे खण्डित है ।

लक्षण प्रभेद

१ जहत् स्वार्था० उ०गङ्गायां घोषः
(२) अजहत् स्वार्था० काकेभ्योदधिरक्षताम्
(३ निरुढ़ा० नीलोघटः
(४) आधुनिकी० वन्हिनासिञ्चति
(५) गौण० गौर्वाहीकः

टि० १ बहुव्रीहि मे उत्तरपद की लक्षणा होती है पूर्वपद तात्पर्य्य ग्राहक है

तत्पुरुष मे पूर्वपद की लक्षणा होती है क्वचित् उत्तर पद कीऽ—

२ समाहार द्वन्द और कर्मधारय मे लक्षणा नहीं है ।

विशेष्य विशेषण भाव :—

शब्द के शब्द मे, अर्थ के अर्थ मे, शब्द के अर्थ मे अर्थ के शब्द मे विशेष्य विशेषण भाव रहता है ।

अवच्छेद्यावच्छेदक भाव :—संसर्गतारूप विषयता अवच्छिन्ना ही होती है निर्विकल्पक ज्ञानीय विषयता निरवच्छिन्ना ही होती है । तद्भिन्न सावच्छिन्ना निरवच्छिन्ना दोनो होती है विषयतादियों के अधिकरण में जो विशेषण वह विषयतादियों का अवच्छेदक होता है (अर्थात् स्वाधिकरण का जो विशेषण हो वह स्वावच्छेदक होता है) । यथा घटवद् भूतलम् यहाँ घटनिष्ठ प्रकारता का अधिकरण जो घट उसमें घटत्व विशेषण है । इसलिये घटनिष्ठ प्रकारता का अवच्छेदक घटत्व हुआ ।

येन सम्बन्धेन प्रकार विशेष्य मे ज्ञात होता है वह सम्बन्ध भी प्रकारता का अवच्छेदक होता है । यथा "घटवद्भूतलम्" इस स्थल मे घट (प्रकार) संयोग सम्बन्ध से "विशेष्य" भूतल मे ज्ञात होता है । इस लिये घटनिष्ठ प्रकारता का अवच्छेदक संयोग सम्बन्ध भी हुआ ।

जो जिस का अवच्छेदक होता है उससे वह अवच्छिन्न (अबच्छेद्य) होता है । यथा "घटवद् भूतलम्" इत्याकारक ज्ञानीय घटनिष्ठ प्रकारता का संयोग सम्बन्ध और घटत्व रूप धर्म अबच्छेदक हुआ । इसलिये वह प्रकारता संयोग सम्बन्धावच्छिन्ना और घटत्व रूप धर्मावच्छिन्ना है ।

तदवच्छिन्न (तद्धर्मावच्छिन्न) शब्द का

(१) तन्निष्ठावच्छेदकता निरूपक अर्थ मे और

(२) तदाश्रयरूप अर्थ मे भी प्रयोग होता है ।

यथा (१) घटनिष्ठ प्रकारता को घटत्वनिष्ठ अवच्छेदकता निरूपक होने के कारण घटनिष्ठ प्रकारता घटत्वाबच्छिन्ना है ।

(२) एवं घट को घटत्वाश्रय होने के कारण घट भी घटत्वावच्छिन्न होता है । अबच्छिन्न शब्द का प्रयोग इस के अतिरिक्त भी अनेक अर्थों मे होता है । यथा मूलाबच्छिन्नो वृक्षः, मूलावच्छिन्नः समवायः, पर्वतत्वाबच्छिन्नो वह्निः, वीणावच्छिन्नः शब्दः एतत्कालावच्छिन्नो घटः इत्यादि ।

अवच्छेद्याऽवच्छेदक भाव ।

* जाति और अखण्डोपाधि से भिन्न पदार्थों का अनुल्लेख रहने पर भी तद्गत विषयता निरवच्छिन्ना नहीं होती है । और जाति एवं अखण्डोपाधि का उल्लेख रहने पर तद्गत विषयता सावच्छिन्ना एवं अनुल्लेख रहने पर निरवच्छिन्ना होती है ।

निरूप्य निरूपक भाव :—जिस का जो निरूपक होता है वह उस से निरूपित होता है । यथा ज्ञान विषयता का निरूपक है इसलिये बिषयता ज्ञान से निरूपित होती है । कितने को परस्पर निरूप्य निरूपक भाव भी होता है । यथा प्रकारता, विशेष्यता इन दोनों मे विशेष्यता निरूपित प्रकारता और प्रकारता निरूपित विशेष्यता अतएव

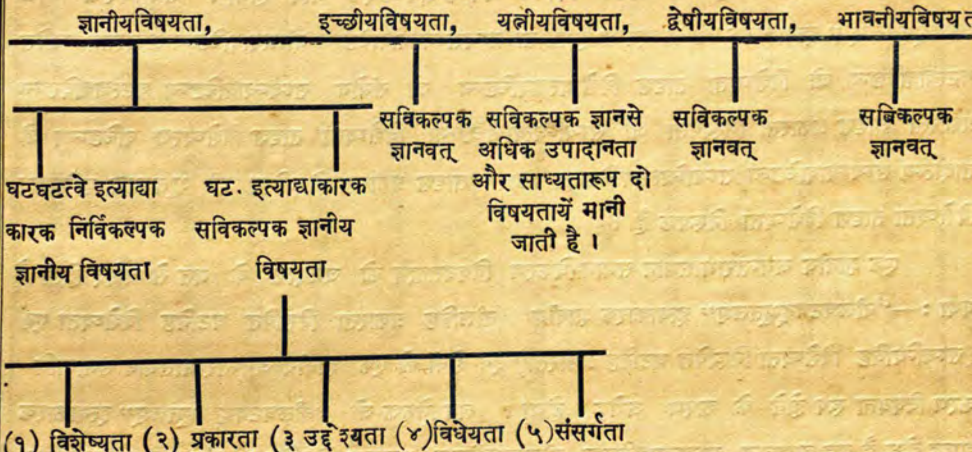
प्रकारता निरूपक विशेष्यता और विशेष्यता निरूपक प्रकारता होती है।

टि० (१) + किसी के मत मे संसर्गताही के साथ प्रकारता विशेष्यता को निरूप्य निरूपक भाव होता है। आपस मे साक्षात् नहीं।

(२) * जाति अखण्डोपाधि से भिन्न पदार्थों का भी स्वरूपतः भान होता है। यह नवीन नैयायिक लोग मानते हैं।

\+ धर्मनिष्ठ अवच्छेदकता सन्बन्धावच्छिन्ना होती है और सम्बन्धनिष्ठ अवच्छेदकता सम्बन्धानवच्छिन्ना होती है जो संसर्गता कहलाती है।

विषयता चित्र।



शाब्द बोध।

पहले शब्दका प्रत्यक्ष होता है तब पद, पदार्थ सम्बन्ध रूप शक्ति और लक्षणा इन दोनों मे अन्यतर के ग्रह से उपस्थित (धर्म धर्मी सम्बन्ध रूप अर्थ स्मरण) तब शाब्द बोध होता है।

उपस्थिति का उदाहरण (—यथा "घटो नीलः" यहाँ घट पद से समवाय सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वनिष्ठ प्रकारता निरूपित घटनिष्ठ विशेष्यताक उपस्थिति शक्तिग्रह से एवं समवाय सम्बन्धावच्छिन्न नीलनिष्ठ प्रकारता निरूपित नीलाश्रयनिष्ठ विशेष्यताक उपस्थिति निरूढ़ लक्षणा ग्रह से होती है।

इन दोनों उपस्थितियों मे घटत्वनिष्ठ प्रकारता एवं नीलाश्रय और घटनिष्ठ विशेष्यताद्वय ये तीनों निरवच्छिन्न हैं।

शाब्द बोधका उदाहरण।

नील प्रकार है, घट विशेष्य है और तादात्म्य सम्बन्ध है तथा च — समवाय सम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वनिष्ठ अवच्छेदकता निरूपित तादात्म्य सम्बन्धाबच्छिन्न नीलनिष्ठ प्रकारता निरूपिता जो समवाय सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वनिष्ठ अवच्छेदकता निरूपित घटनिष्ठ विशेष्यता तादृश विशेष्यता शाली शाब्दबोध होता है।

\+ टि० (१) अबच्छेदकता ४ प्रकार की होती है (१) स्वरूप सम्बन्ध रूप (२) अनतिरिक्तवृत्तित्व रूप

(३) अन्यून वृत्तित्वरूप (४) अन्यूनानतिरिक्त वृत्तित्वरूप

(२) यज्ञपति उपाध्याय के मतमे संसर्गता भी सम्बन्धावच्छिन्ना होती है।

एक ज्ञानीय अनन्तराभासमान समानाधिकरणविषयताद्वय को गदाधर के मत से परस्पर अवच्छेद्यावच्छेदक भाव होता है यथा —

"नीलघटवद्भूतलम्" इत्याकारक (शाब्दबोधीय) नीलनिष्ठ प्रकारता निरूपित जो घटनिष्ठ विशेष्यता सम्बन्धिनिष्ठ विशेष्यता निरूपित जो घटनिष्ठ प्रकारता इनदोनों को एक ज्ञानीय अनन्तराभासमान समानाधिकरण विषयत्वरूप होने के कारण परस्पर अवच्छेद्यावच्छेदक भाव होगा। तब निरुक्त "नील घटवद्भूतलम्" इत्याकारक जो शाब्दबोध है सो तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वावच्छिन्न प्रकारतानिरूपित घटत्वावच्छिन्न जो विशेष्यता तादृश विशेष्यत्वावच्छिन्न जो संयोग सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्न प्रकारता तादृश प्रकारता निरूपिता जो सम्बन्धित्वावच्छिन्ना विशेष्यता तादृश विशेष्यत्वा वच्छिन्ना जो तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न सम्बन्धित्वावच्छिन्ना प्रकारता तादृश प्रकारता निरूपिता जो भूतलत्वा वच्छिन्ना विशेष्यता तादृश विशेष्यता निरूपक है।

एक ज्ञानीय अनन्तराभासमान समानाधिकरण विषयताद्वय को जगदीश के मत से अभेद होता है यथा :—"नीलघटवद्भूतलम्" इत्याकारक ज्ञानीय (नीलनिष्ठ प्रकारता निरूपित घटनिष्ठ विशेष्यता एवं (सम्बन्धिनिष्ठ विशेष्यता निरूपित घटनिष्ठ प्रकारता) इन दोनों को एक ज्ञानीय अनन्तराभासमान समानाधि-करण विषयता रूप होने के कारण अभेद होगा। तब निरुक्त जो "नीलघटवद् भूतलम्" इत्याकारक शाब्द बोध है वह तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित जो संयोग सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्न प्रकारता तादृश प्रकारता निरूपित सम्बन्धित्वा वच्छिन्नप्रकारता निरूपित भूतलत्वावच्छिन्न विशेष्यता निरूपक ज्ञान है।

चैत्रः स्तोकं पचति —तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न स्तोकत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित पाकत्वावच्छिन्न विशेष्यत्वावच्छिन्न, पाकत्वावच्छिन्न अनुकूलत्व सम्बन्धावच्छिन्नप्रकारता निरूपित, कृतित्वावच्छिन्न विशेष्य-त्वावच्छिन्न समवायसम्बन्धावच्छिन्न (कृतित्वावच्छिन्न) प्रकारता निरूपित, चैत्रत्वावच्छिन्न विशेष्यता निरूपक शाब्द बोध होता है।

शाब्दबोध विस्तार चित्र :—

नीलो घटः।

= [नीलः] + तादा० स० + [घटः]

= [नीलत्व, सम० स० नील] + तादा० स० [घटत्व, सम० स० × घटः]

= [नीलत्व (अव.) सम० स० + नील (प्रकार)] + तादा० स० + [घटत्व (अव) + सम० स० + घट विशेष्यक]

अवच्छेदकता प्रकारता अवच्छेदकता विशेष्यता

= [नीलत्व (अव) + सम० स० + नील प्रकार)] + तादा० स० + [घटत्व (अव) + सम० स० + घट (विशेष्य)

क्रम संख्या	हेत्वाभास के नाम और अवान्तर भेद	स्थल, जहाँ हेतु दुष्ट होता है	दोषस्वरूप, जिसका ज्ञान प्रतिवन्धक होता है	प्रतिवध्यज्ञान
१ अनैकान्तिक	(क) साधारण	पर्वतो वह्निमान् प्रमेयत्वात्	हेतुनिष्ट विपक्ष वृत्तित्व	अन्वयव्याप्तिज्ञान
	(ख) असाधारण	शब्दोनित्यः शब्दत्वात्	हेतुनिष्ट सपक्षव्यावृत्तत्व	साध्यसामानाधिकरण्यज्ञान
	(ग) अनुपसंहारी	सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वात्	हेतुनिष्ट अत्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यकत्वादि	व्यतिरेक व्याप्तिज्ञान
२	विरुद्ध	अयं गौरश्वत्वात्	हेतुनिष्ट साध्यासामानाधिकरण्य	साध्य सामानाधिकरण्यज्ञान
३ असिद्ध	(क) आश्रयासिद्ध	काञ्चनमयः पर्वतो वह्निमान् धूमात्	पक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्ष	अनुमिति और पक्षधर्मताज्ञान
	(ख-१) स्वरूपासिद्ध	ह्रदो द्रव्यं धूमात्	हेत्वभाववत्पक्ष	पक्ष धर्मताज्ञान
	(ख-२) भागासिद्ध	द्रव्यं गुणवत् पृथिवीत्वात्	पक्षतावच्छेदक सामानाधिकरण्येन हेत्वभाववत्पक्ष	पक्ष धर्मताज्ञान
	(ग-१) व्याप्यत्वासिद्ध	पर्वतो वह्निमान् नीलधूमात्	व्याप्यभाववद्धेतु	व्याप्तिज्ञान
	(ग-२) साध्याप्रसिद्ध	पर्वतः काञ्चनमयवह्निमान् धूमात्	साध्यतावच्छेदकाभाववत्साध्य	अनुमिति और व्याप्तिज्ञान
	(ग-३) साधनाप्रसिद्ध	पर्वतो वह्निमान् काञ्चनमयधूमात्	हेतुतावच्छेदकाभाववद्धेतु	पक्ष धर्मताज्ञान
४	* सत्प्रतिपक्ष	ह्रदो वह्निमान् धूमात्	साध्याभावव्याप्यवत्पक्ष	अनुमिति
५	कालात्ययापदिष्ट (बाधित)	ह्रदोवह्निमान् धूमात्	साध्याभाववत्पक्ष	अनुमिति

* परस्पर विरुद्ध साध्यतदभावोभय परामर्श दशामें दोनो हेतुओंमें सत्प्रतिपक्षितत्व व्यवहार होता है।

अथ व्याप्तेर्लक्षणं तद्दोषाश्च सक्षेपतोनिर्दिश्यन्ते ।

लक्षणम्	दोषः
साध्यवदन्यावृत्तित्वं (साध्यतावच्छेदकनिष्ठावच्छेदकतानिरूपित साध्य-निष्ठावच्छेदकताक प्रतियोगिताक भेदवदन्यावृत्तित्वम्) व्याप्तिः	वह्निमान् धूमादित्यत्राव्याप्तिः
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन यः साध्यवान् तदन्यावृत्तित्वं (साध्यतावच्छेदकनिष्ठावच्छेदकता निरूपित साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न साध्यनिष्ठावच्छेदकताक प्रतियोगिताक भेद वदन्यावृत्तित्वम्) व्याप्तिः	,,
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न साध्यवत्त्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेदवदवृत्तित्वम् व्याप्तिः	,,
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न साध्यवत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताकभेद वन्निरूपित हेतुतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः	धूमवान् वह्नेरित्यत्रातिव्याप्तिः
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न साध्यवत्त्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेदवन्निरूपित हेतुतावच्छेक सम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितात्वावच्छिन्न प्रतियोगिता-काभावो व्याप्तिः	द्रव्यं गुणकर्मान्यत्वेसति सत्त्वादित्यत्रा व्याप्तिः
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न साध्यवत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेदवन्निरूपित हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न वृत्तितावच्छेदकतात्वावच्छिन्न प्रतियोगिताकाभावद्धेतुतावच्छेदकं व्याप्तिः	"ज्ञेयत्ववान् वाच्यत्वात् "सत्तावान् जातेः" इत्यादावव्याप्तिः
अथ सिद्धान्त लक्षणम्	
हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियोगिभिन्न साध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	वह्निमान् धूमादित्यत्र गुण-वान्धूमादित्यत्र चा व्याप्तिः
हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छेदकभिन्न साध्यतावच्छेदकाव-च्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	रूपत्वव्याप्य जातिमत्वान् रूपादित्यत्राव्याप्तिः
[नानासाध्यतावच्छेदककस्थले] हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियो-गितावच्छेदकता नवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकतावच्छेदकावच्छिन्नावच्छिन्नसामा-नाधिकरण्यं व्याप्तिः	द्रव्यंगुणकर्मान्यत्वे सतिसत्त्वादि-त्यत्राव्याप्तिः
हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरण वृत्त्यभावप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्य-तावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यंव्याप्तिः (मतमिदंकेषाञ्चित् । अत्र सामाधानान्तरं मूल ग्रन्थादवसेयम्)	वह्निमान् धूमादित्यत्रा व्याप्तिः
हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणवृत्यभावीयप्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यत्रा व्याप्तिः
हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणवृत्ति प्रतियोगिव्यधिकरणा भावप्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छि सामानाधिकरण्यम् व्याप्तिः	,,

लक्षण स्वरूपम्	दोषः ६४ ग
हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणवृत्ति प्रतियोग्यधिकरणावृत्त्यभाव प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसामानाधिकरण्यम्	संयोगी सत्वादित्यत्राति व्याप्तिः
(१) स्वप्रतियोग्यनधिकरणीभूत हेत्वधिकरणवृत्त्यभाव प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जाते रित्यत्रातिव्याप्तिः
स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्ना नधिकरणीभूत हेत्वधिकरणवृत्त्यभाव प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	ज्ञानवान् सत्त्वादित्यात्राति व्याप्तिः
स्वप्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणत्वाभाववद्धेत्वधिकरण वृत्त्यभाव प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	वह्निमान् धूमादित्यत्रा व्याप्तिः ।
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य यस्यकस्यचिदनधिकरणे हेत्वधिकरणेवर्तमानो योऽभावस्तदीयप्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः ।	कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वा दित्यत्रा व्याप्तिः ।
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न समान्यानधिकरण हेत्वधिकरणवृत्त्यभावप्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	असम्भवः, धूमाभाववान् वह्न्यभावादित्यत्राव्याप्तिर्वा ।
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धा वच्छिन्न यत्किञ्चित् प्रतियोगिता वच्छेदकावच्छिन्नसामान्यानधिकरण हेत्वधिकरण वृत्त्यभाव प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानधिकरण्यं व्याप्तिः	कपिसंयोगाभाववान् आत्मत्वादित्यत्रा व्याप्तिः ।
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्नंयादृश प्रतियोगिता वच्छेदका वच्छिन्नानधिकरणत्वं हेत्वधिकरणस्य तादृश प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	कालोघटवान् कालपरिमाणादि त्राव्याप्तिः (एतद्दोष वारणायोपायान्तरं मूलेस्पष्टम्)
प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्धा वच्छिन्न प्रतियोगिता वच्छेदकावच्छिन्नानधिकरनीभूत हेत्वधिकरण वृत्त्यभाव प्रतियोगिता सामान्ये यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्व यद्धर्मावच्छिन्नत्वो भयाभावः तद्धर्मावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः।	प्रमेयवह्निमान् धूमादित्यत्राव्याप्तिर्यद्यप्यत्रापिलक्षणे तथापि गुरुधर्मस्याभावप्रति योगितावच्छेदकत्वस्वीकारात्सा वारणीया ।

(१) हेत्वधिकरणस्य परिष्कारः पूर्वोक्तोऽत्राप्यतिदेशनीयः ।

शाब्दबोध विषयक आचार्य्योंके भिन्न २ तरीके ।

घटवद्भूतलम् ।

साधारण रूप (अनुलोम)

संयोग सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्न प्रकारता-निरूपित सम्बन्धित्वावच्छिन्न विशेष्यत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित भूतलत्वावच्छिन्न (भूतलनिष्ठ) विशेष्यता निरूपक जो ज्ञान वह "घटवद्भूतलम्" इत्याकारक ज्ञान है ।

साधारण रूप (विलोम)

भूतलत्वावच्छिन्नविशेष्यता निरूपित सम्बन्धित्वावच्छिन्न प्रकारत्वावच्छिन्न विशेष्यता निरूपित संयोग सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपक जो ज्ञान वह " घटवद्भूतलम् " इत्याकारक ज्ञान है ।

नीलघटवद्भूतलम् ।

गदाधर मत (अनुलोम)

तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वावच्छिन्न-प्रकारता निरूपित घटत्वावच्छिन्न विशेष्यत्वावच्छिन्न संयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्न-प्रकारता निरूपित सम्बन्धित्वावच्छिन्न विशेष्यत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित भूतलत्वावच्छिन्न भूतल-निष्ठ विशेष्यता निरूपक जोज्ञान वह नील घटवद्भूतलम् इत्याकारक ज्ञान है ।

गदाधर मत (विलोम)

भूतलत्वावच्छिन्न विशेष्यता निरूपित सम्बन्धित्वावच्छिन्न प्रकारत्वावच्छिन्न विशेष्यता निरूपित संयोग सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्न प्रकारत्वावच्छिन्न विशेष्यता निरूपित तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपकज्ञान वहनीलघटवद्भूतलम् इत्याकारक ज्ञान है ।

जगदीश मत (अनुलोम)

तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वावच्छिन्न-प्रकारता निरूपित संयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न-सम्बन्धित्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित भूतलत्वावच्छिन्न (भूतलनिष्ठ) विशेष्यता निरूपक जो ज्ञान वह नील घटवद्भूतलम् इत्याकारक ज्ञान है ।

जगदीश मत (विलोम)

भूतलत्वावच्छिन्न विशेष्यता निरूपित तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न सम्बन्धित्वावच्छिन्न प्रकारतानिरूपित संयोग सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपित तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपक जो ज्ञान वह नील घटवद्भूतलम् इत्याकारक ज्ञान है ।

(गदाधर मत)

नीलत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित तादात्म्यत्वावच्छिन्नसंसर्गता निरूपित घटत्वावच्छिन्न विशेष्यत्वावच्छिन्नप्रकारता निरूपित संयोगत्वावच्छिन्न संसर्गता-निरूपित सम्बन्धित्वावच्छिन्न विशेष्यत्वा वच्छिन्न-प्रकारता निरूपित तादात्म्यत्वा वच्छिन्न संसर्गता निरूपित भूतलत्वावच्छिन्न विशेष्यतानिरूपक नील घटवद्भूतलम् इत्याकारक ज्ञान है ।

(जगदीश मत)

नीलत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित तादात्म्यत्वावच्छिन्न संसर्गता निरूपित घटत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित संयोगत्वावच्छिन्न संसर्गता निरूपित सम्बन्धित्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित तादात्म्यत्वावच्छिन्न संसर्गता निरूपित भूतलत्वावच्छिन्न विशेष्यता निरूपक नीलघटवद्भूतलम् इत्याकारकज्ञान है ।

अथ न्याय कोषः ॥

अ।

अखण्डोपाधिः—जातिभिन्नोऽखण्डः धर्मः विशेषः। असमवेतत्वे सत्यनुगतत्वम्।

अघटकत्वम्—तद्विषयत्वा व्यापक विषयताकत्वम्।

अति व्याप्तिः—लक्ष्यवृत्तित्वे सत्यलक्ष्यवृत्तित्वम् यथा गोः शृङ्गित्वं लक्षणम्, लक्ष्यगोवृत्तित्वे सत्यलक्ष्यमहिष्यादिवृत्ति। लक्ष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्ये सति लक्ष्यतावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेद सामानाधिकरण्यम्।

अधिकरणत्वम्—यथार्थ विशिष्ट धी विशेष्यत्वम् विषयताविशेष इतिकेचन।

अनतिरिक्तवृत्तित्वम्—स्वान्यूनवृत्तितत्कत्वम्।

अनवस्था (अनवस्थितिः)—क्लृप्तवस्तुसजातीयवस्तुपरम्पराकल्पनस्य विरामाभावः।

अनित्यत्वम्— ध्वंस प्रागभावान्यतरप्रतियोगित्वम्।

अनुमितिः—व्याप्तिज्ञानकरणकं ज्ञानम्। परामर्श जन्यं ज्ञानम्। व्याप्ति विशिष्टपक्षधर्मत्व विषयता शालि निश्चयत्वावच्छिन्न कारणता निरूपित कार्यता शालि ज्ञानम्।

अन्यतमत्वम्—तावद्भेदावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेदवत्त्वम्।

अन्यतरत्वम्—भेदद्वयावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेदवत्त्वम्।

अर्थान्तरम्— प्रकृतानाकांक्षितार्थाभिधानम्, प्रकृतोपयुक्तार्थमुपेक्ष्यासम्बद्धार्थाभिधानम्।

अवच्छिन्नत्वम्—अवच्छेद्यत्वम्—इदमेतद्विशिष्टे एतत्प्रकारकम् इति प्रतीति साक्षिकः स्वरूप सम्बन्ध विशेषः इदमेतद्विशिष्यकत्वांशे एतत्प्रकारक मितिप्रतीति साक्षिकोवा।

अवच्छेदः--विशेषणोपाधिना विशेषकारणम्।

अवच्छेदकत्वम्=अनतिरिक्तदेशवृत्तित्वम्। अवच्छित्त्यान्यूनानतिरिक्त कालीनविशेषसम्बन्धवत्त्वंवा

अवच्छेदकत्वम् —— प्रतियोग्यंशे प्रकारीभूत धर्मत्वम्। अनतिरिक्त वृत्तित्वम् तच्च व्यावर्तकत्व सामानाधिकरण्य स्वनिष्ठावच्छेदकताकत्वैतत्त्रितय सम्बन्धेन यत्किञ्चिद्धर्मविशिष्टत्वम्।

अव्याप्तिः— लक्ष्यतावच्छेदकसामानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वम्

अव्याप्यवृत्तित्वम्-स्वात्यन्ताभावसमानाधिकरणत्वम् स्व प्रतियोगित्व स्वसामानाधिकरण्यैतदुभयसम्बन्धेनाभाववत्त्वम्।

असम्भवः--लक्ष्यतावच्छेदकव्यापकीभूताभाव प्रति—योगित्वम्।

अखण्डोपाधिः —असमवेतत्वे सत्यनुगतत्वम्।

अख्यातिः—स्वरुपतो विषयतश्चागृहीत भेदेनैकत्वज्ञानम्

अजहल्लक्षणा शक्यार्थापरित्यागेनतत्सम्बद्धार्थोऽन्तरे वृत्तिः, यथा शोणोधावतीत्यत्र शोणपदस्य शोणगुणविशिष्टेऽश्वादि द्रव्ये।

अज्ञातत्वम् :—प्रमाणजन्य ज्ञाना विषयत्वम्।

अज्ञाननिग्रहस्थानम्—परिषदा विज्ञातस्य वादिनात्रिरभिहितस्यापि वाक्यार्थस्याबोधः।

अणुत्वम् – सूक्ष्मपदार्थत्वे सत्यारम्भकत्वम्।

अतिदेशः – स्वविषयमुल्लङ्घ्यान्यविषये उपदेशः। एकत्र श्रुतस्यान्यत्र सम्बन्धः।

अतिप्रसंगः – यस्यबोधो यत्राभि मतस्तत्रतदन्यस्यापि बोधप्रसंगः। प्रस्तुतविषयादन्यत्र प्रसक्तिर्वा।

अतीन्द्रियत्वम् – लौकिक साक्षात्कार विषय गुणत्व न्यूनवृत्ति संस्कारत्वान्यधर्मसमवाय्यन्य गुणत्वम्।

अत्यन्तनिवृत्तिः – कारणसहितकार्य्यनिवृत्तिः।

अत्यन्ताभावः – त्रैकालिक संसर्गावच्छिन्न प्रतियोगिताऽकोऽभावः यथा भूतले घटोनास्ति।

अद्वैतत्वम् – सजातीयविजातीयस्वगतभेद शून्यत्वम्

अधिकरणम् – साक्षात्परम्परया वा क्रियाश्रयः –

अधिगमः – प्राप्तिः।

अधिकारी – मुख्यगौण प्रयोजन प्राप्ति कामी।

अध्यात्मशास्त्रं – आत्मानमधिकृत्य प्रवृत्तंशास्त्रम्।

अनादित्वम् - उत्पत्ति रहितत्वम्।

अनिर्वचनीय ख्यातिः – सदसदादि प्रकारैर निर्वाच्य

स्यैवाध्यस्त पदार्थस्य भानम् ।

अनुगतत्वम् – एकत्वे सत्यनेक वृत्तित्वम् ।

अनुपलब्धिप्रमाणम् – योग्यत्वे सत्यनुपलम्भोऽभाव-प्रमाकरणम् ।

अनुमानप्रमाणम् – अनुमिति-प्रमाकरणम् ।

अनुयोगी – यस्मिन्न भावः,यस्मिन् सम्बन्धः यस्मिन् सादृश्यम्, वास्ति सः विशिष्टप्रतीति विषयविशेषः

अनुव्यवसायत्वम् – ज्ञान विषयक ज्ञानत्वम् ।

अनेकत्वम् – अपेक्षा बोध विषयत्वम् । एकत्व भिन्न-संख्यादि शिष्टत्वंवा ।

अन्यतरकर्मजसंयोगः – क्रियाऽभाववत्समवेतत्वे सतिक्रियावत्समवेतः संयोगः ।

अन्यथाख्यातिः – अन्याकारज्ञानस्यालम्बनम् । तदभाववति तत्प्रकारकज्ञानंवेतिभाट्टवैशेषिकाः ।

अन्यथासिद्धत्वम् – स्वकारण कारणत्वम् लघुसमनियतपूर्ववर्तिनः कार्यसम्भवेतद्भिन्नत्वम् ।

अन्वयः – स्वसत्तानियतसत्तावत्कार्य्य सम्बन्धः । यत्सत्त्वे यत्सत्त्वम् ।

अन्वयदृष्टांतः – साध्यव्याप्तिसाधनं यत्र प्रदर्श्यते सः

अन्वयव्यभिचारः – कारण सत्त्वे कार्याभावः । स्वाधिकरण वृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगिकार्यकत्वम् ।

अन्वयव्याप्तिः – हेतु समानाधिकरणत्यन्ताभाबा पतियोगिसाध्य सामानाधिकरण्यम् ।

अन्वयसहचारः – कारण सत्त्वे कार्यसत्त्वम् ।

अपरत्वम् – अपर व्यवहारा साधारण कारणम् ।

अपरसामान्यत्वम् – न्यूनदेशवृत्तिजातित्वम् ।

अपसिद्धान्तनिग्रहस्थानम् – एकसिद्धान्तमत माश्रित्य कथा प्रवृत्तौ तद्विरुद्ध सिद्धान्त मत मालम्ब्यो-त्तर दानम् ।

अपूर्वम् – वैध निषिद्धक्रिया जन्ययोः कालान्तर भाविनोःसुखदुःखयो हेंतु भूते पुण्य पापे ।

अपेक्षा – कार्य निमित्तयोरन्योन्याभि सम्बन्धः ।

अपेक्षाबुद्धिः – विनाशक विनाशप्रतियोगिनी बुद्धिः, अनेकैकत्व विषयिणी बुद्धिर्वा ।

अपोहः – शिष्यस्य मिथ्या ग्रहणाया करण सामर्थ्यम् ।

अपौरुषेयत्वम् – वाक्यार्थ ज्ञानापेक्षोच्चारणक मात्र वृत्त्यानु पूर्वी शून्यत्वम्,

अप्रमात्वं - अप्रामाण्यं–दोष सहकृत ज्ञान सामग्री जन्य-त्वम् । तद भाववति तत्प्रकारकत्वम् ।

अबाध्यत्वम् – त्रैकालिक निषेधा प्रतियोगित्वम् ।

अभावः – निषेध मुख प्रतीति विषयः ।

अभावप्रमा – योग्यानुपलब्धि करणिका प्रमा यथा घटाद्यनुपलब्ध्या घटाभाव प्रमा भूतले जायते ।

अभिज्ञाप्रत्यक्षम् – इदन्तामात्रावगाहिज्ञानम् विषय सम्बद्धेन्द्रियजन्यं ज्ञानम् । यथाऽयं घटोऽयंपट इत्यादि ।

अभिधानत्वम् – अन्वयबोध फलक शब्द प्रयोगत्वम्

अभिधेयविधित्वम् – कृतिसाध्यत्वेसतीष्ट साधनत्वम्

अभिन्नत्वम् – भेदानधिकरणत्वम् ।

अभिभवः – बलवत्सजातीय सम्बन्धकृतमग्रहणम् । वलवत् सजातीय तिरस्करणम् ।

अभिव्यञ्जकत्वम् – अस्ति व्यवहार जनकत्वम् ।

अभ्युपगमवादः – वादिबलनिरीक्षणार्थमनिष्ट स्वीकरणम्

अयुतसिद्धत्वम् – असम्बद्धयोरविद्यमानत्वम् ।

अरणिः – घर्षणद्वाराग्नि जनक काष्ठम् ।

अलीकम् – तादृश प्रतियोगिता विशिष्टत्वे सत्यप्रतीय मानम् ॥

अवच्छिन्नत्वम् – तत्तत्पदार्थ विशिष्टत्वम् ।

अवधानत्वम् – विषयान्तरसञ्चाराभाववत्वम् ।

अवधारणत्वम् – एकाकारावगाहिज्ञानत्वम् । अन्ययोग व्यवच्छेदकत्वम् ।

अवयवः – समुदायांशरूपः । अवच्छिन्नपरिमाणवान्

अवयवित्वम्–कार्यद्रव्यत्वम् अवयवजन्यद्रव्यत्वंवा

अवगीतत्वम् – बलवदनिष्ठाननुबन्धित्वम् ।

अव्यभिचरितत्वम् – साधनसमानिकरणात्यन्ताभावा प्रतियोगित्वम् । साध्यवदन्यावृत्तित्वंवा ।

अव्याप्तिः – लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम् यथा गोः कपिलत्वं लक्षणम् इवेत गवादौ लक्ष्यैकदेशेऽवृत्तिलक्ष्यता— वच्छेदक समानाधिकरणा त्यन्ताभाव प्रतियोगित्वम् ।

असमवायिकारणम् – समवायेन कार्याधिकरणेसम- वाय स्वसमवायि समवेतत्वान्यतर सम्बन्धेनसम्बद्धं कारणम् ।

असाधारणकारणत्वम्—कार्य (त्वातिरिक्त धर्माव च्छिन्नकार्यता निरूपित कारणता शालित्वम्) तावच्छेदकावच्छिन्न कार्यानुत्पादकत्वेसति कार्यविशे- षोत्पादकत्वम् ।

असाधारणत्वम् – तद्वृत्तित्वेसति तदितरावृत्तित्वम् लक्ष्यतावच्छेदक व्यापकत्वेसति लक्ष्यतावच्छेदक व्याप्यत्वम् ।

अहंकारः – अभिमानात्मिकान्तःकरणवृत्तिः ।

आ

आकांक्षा – स्वरूपयोग्यत्वेसति अजनितान्वयबोध जन कत्वम् । यत्पदस्य यत्पदाभाव प्रयुक्तमन्वयबोधाजन कत्वं तत्पद समभिव्याहृततत्पदत्वम् ।

आक्षेपः—प्रतिषेधपुरस्सरोक्तिः

आख्यातत्वम्—सुभिन्नत्वेसति संख्या वोधक प्रत्ययत्वम् ।

आख्यानम्—पूर्ववृत्त कथनम् स्वयंदृष्टार्थ कथनंवा

आचार्यः— मत प्रस्थापकः मन्त्रव्याख्याकृद्वा आचिनोतिच शास्त्रार्थ माचारे स्थापयत्यपि स्वयमप्या चरेयस्तु स आचार्य इतिस्मृतः ॥

आत्मा—ज्ञानाधिकरणम् १ अमूर्त समवेत द्रव्यत्वा परजातिमत्त्वं वेति तार्किकाः ।

१ **आत्माश्रयत्वम्**—स्वग्रहणसापेक्षग्रहकत्वम् १ सा पेक्षापादकप्रसंगत्वम् ।

आदिः—परस्मिन्सति यस्मात्पूर्वोनास्तिसः समुदाय— विशिष्टत्वम् आदित्वम् वै० स्वघटकत्व स्वघटकोत्तरत्वा- भाववत्त्व स्वघटकपूर्वत्वैतत्रितय सम्बन्धेन ।

आधेयता—आधेयमित्याकारक प्रतीतिनियामक धर्म- विशेषः ।

आपत्तिः—सम्यग्वर्त्तनोपायानुपलम्भः ।

आपातत्वम्—संशयादिग्रस्तत्वम् १ अविचारित बाक्यजन्यत्वंवा २ अज्ञान निवृत्तावसमर्थज्ञानमापात ज्ञानम् ।

अप्रामाण्यम् – शंकास्पदज्ञानत्वम् ।

आप्तत्वम्—प्रयोग हेतुभूत यथार्थ ज्ञानवत्वम् १लोक वेद साधारण प्रतारणाद्यजन्य हिताहितोपदेश कर्तृत्वे सति तद्भिन्नोपदेशाकर्तृत्वम् ।

आरादुपकारकम्—द्रव्याद्यनुद्दिश्य केवलं बिधीयमानं कर्म ।

आरोपः— अतद्वति तत्प्रकारकं बाधज्ञानकालीनं ज्ञानम् ।

आलयविज्ञानम् – आलयं, लयपर्यन्तंस्थायिविज्ञानम्

आश्रयासिद्धत्वम्—पक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्षकत्वम्

आसक्तिः— विषयान्तर परिहारेणैक विषयावलम्बनम्

आसत्तिः—यत्पदार्थेन सह यत्पदार्थस्यान्वयोपेक्षित- स्तयोःपदयोरव्यवधानम् । शक्ति लक्षणान्यतरसम्ब- न्धेनाव्यवधानेन पदजन्य पदार्थोपस्थितिर्वा ।

आहार्यम्—स्वविरोधिधर्म धर्मितावच्छेदकक स्वप्रकारकं ज्ञानम् ।

आहार्य ज्ञानम्—बाध कालीनेच्छाजन्यंज्ञानं यथा माणवके प्रेम्णा चिन्तामणि बुद्धिः ।

उ

उपचारः—शक्यार्थत्यागेनान्यार्थबोधनम् अनियत सम्बन्धेनान्यत्र वृत्तिः यथा मञ्चाःक्रोशन्ति इत्यादौ पुरुषैः समं मञ्चसम्बन्धोऽनियतः ।

उपलक्षणत्वम्—स्वप्रतिपादकत्वेसति स्वेतर प्रति पादकत्वम् १ स्वार्थबोधकत्वेसति इतरार्थबोधकत्वम् २ कादाचित्कत्वेसति व्यावर्त्तकत्वम् यथा काकादिकं देवदत्तगृहादेः ।

उपायः—साक्षात्परम्परया वा यत्किंचित्कार्यजननेसमर्थः ।

उपलक्षितत्वम्—स्वसमानाधिकरण स्वेतर कालीन स्वप्रतियोगिकां भाववत्त्व सम्बन्धेन स्वसम्बन्धित्वम्

उपसर्जनत्वम्—स्वार्थविशिष्टयर्थान्तर बोधकत्वम् १ अन्य पदार्थनिष्ठविशेष्यतानिरूपित प्रकारताऽयोजकत्वम् ।

उपसंहारः—विस्तरेण निरूपितस्य पदार्थस्य सारांश कथनेन तन्निरूपण समापनम् १ ग्रन्थ तात्पर्यावधारक लिंगविशेषः ।२।

उपलक्षणत्वम्—बिबक्षितान्वय प्रतियोगितानवच्छेदकत्वेसति व्यवच्छेदकत्वम् ?।

एकत्वम्—स्वसजातीयनिष्ठ भेदप्रतियोगिता नवच्छेदकैकत्वम ।

एकैकवृत्ति गुणत्वम्—स्वाश्रयान्योन्याभावव्यापकात्यन्ताभाव प्रतियोगि गुणत्वम् ।

क

कल्पना—अविद्यमानपदार्थस्य अन्यत्रस्थितस्यान्यत्र प्रतिभास रूपो मानस व्यापार ।

कादाचित्कत्वम्—सत्त्वेसति किंचित्कालवृत्यभाव प्रतियोगित्वम् ।

कुतर्कः—श्रुतिविरोधितर्कः ।

केवललक्षणा—शक्यसाक्षात्सम्बन्धः ।

केवलव्यतिरेकित्वम्—अन्वयव्याप्ति शून्यत्वेसति व्यतिरेकव्याप्तिमत्त्वम् ।

केवलान्वयित्वम्—अत्यन्ता भा(वाप्रतियोगित्वम्) वीयप्रतियोगितानवच्छेदक धर्मवत्त्वम् असद्विपक्षत्वम्

कालोपाधिः—क्षणादिना व्यवहारविषयत्वनियामको धर्मः २ क्रियामात्रं वा ३

क्षणः—निमेषक्रियावच्छिन्नस्य कालस्य चतुर्थोभागः १ स्वाधेय पदार्थप्रागभावानाधारः समयः ।

क्षणिकत्वम्—स्वाधिकरण समय प्रागभावाधिकरणा(नुत्पत्तिकत्वम् १) वृत्तित्वमिति बौद्धाधिकारे २ तृतीयक्षणवृत्तिध्वंस प्रतियोगित्वम् घटादिवारणाय तृतीयक्षण वृत्तीति । ४ क्षणान्तरासम्बन्धित्वेसति क्षणसम्बन्धित्वम्

ख

खण्ड प्रलयः—जन्यद्रव्यानधिकरण कालः ।

ग

गमकत्वम्—नित्यसाकांक्षत्वम् ।

घ

घटकत्वम्—तद्विषयताव्यापक विषयतावत्त्वम् ।

घटितत्वम्—तद्विषयिताव्याप्य विषयतावत्त्वम्

च

चक्षुः—रूपोपलब्धि साधनमिन्द्रियम् ।

चरमत्वम्—स्वजातीयपदार्थप्रागभावानधिकरणत्वम् स्वेतरभावकारणानपेक्ष कार्यकत्वम् (२)

चेष्टा—इष्टानिष्टप्राप्ति परिहारानुकूल व्यापारः ।

ज

जनकत्वम्—अन्यथासिद्धशून्यत्वेसति नियतपूर्ववृत्तित्वम् ।

जल्पः—उभयपक्ष स्थापनवती विजिगीषु कथा । परमतनिराकरणत्वेसति स्वमतस्थापनम् ।

जहदजहल्लक्षणा—वाच्यार्थैकदेशत्यागेनैकदेशवृत्तिः

जहल्लक्षणा—शक्यमात्रपरित्यागेन तत्सम्बन्ध्यर्थान्तरे वृत्तिः । यथा गंगयांघोष इत्यत्र गंगापदस्यतीरे, अजहल्लक्षणायामतिव्याप्तिवारणाय शक्यमात्रपरित्यागेनेति (१)

जात्युत्तरम्—असदुत्तरम्,

जीवः—प्राणधारणानुकूलव्यापाराश्रयः (१)सुखादि समवायिकारणम् (२)

जीवनम्—प्राणधारणानुकूलो व्यापारः ।

ज्ञानलक्षणसन्निकर्षः—स्वविषयविषयक प्रत्यक्षजनकः

ज्ञानेन्द्रियम्—ज्ञानकरणमिन्द्रियम् ।

त

तर्कः—अनिष्टप्रसञ्जकः (१) व्याप्यारोपेण व्यापकारोपः, यदिपर्वतेवह्निर्नस्यात् तर्हि धूमोऽपि न स्यात्।

तात्पर्यम्—वक्तुरिच्छा (१) तत्प्रतीति जननानुकूल वृत्तिमत्त्वम्।

तादात्म्यम्—भेदसहिष्णुवभेदत्वमिति केचित् (१) तद्भिन्नत्वेसति तदभेदेन प्रतीयमानत्वम्।

तुल्यत्वम्—स्वभिन्नजाति समनियतत्वम्।

तुल्यबलविरोधः—अन्यत्रान्यत्रलब्धावकाशयोर्द्वयोः शास्त्रयोरेकत्र युगपत्प्राप्तिः।

द

दार्ष्टान्तिकत्वम्—दृष्टान्तप्रयुक्तत्वम्।

द्वित्वम्—अपेक्षाबुद्धि विशेषविषयत्वम्। (१) अपेक्षाबुद्धिजन्यो गुणविशेषः (२)

देहः—प्रतिक्षणमुपचीयमानावयवः (१) इन्द्रियाश्रयोवा।

द्रवत्वम्—आद्यस्यन्दनासमवायि कारणम्।

द्रव्यत्वम्—गुणसमवायित्वम्।

नान्तरीयकत्वम्—अन्यनिष्पादक यत्ननिष्पाद्यत्वम्।

नास्तिकः—परलोकाद्यभावप्रतिपादकः (१) वेदनिन्दकोवा (२)

निरूपणम्—लक्षणप्रमाणस्वरूपाभिधानम्।

निरूपकत्वम्—स्वरूपसम्बन्ध विशेषः

निर्विकल्पकम्—संसर्गानवगाहि ज्ञानम् यथा घट घटत्वे इति ज्ञानम्।

नैयायिकः—षोडशपदार्थानुसारिन्यायज्ञः।

नोदनसंयोग—स्पर्शवद्द्रव्यसंयोगः।

नोदना—क्रियासु प्रवर्तकं वचनम्।

न्यायः—लोकशास्त्रप्रसिद्धदृष्टान्तः १प्रमाणैरर्थपरीक्षणम् प्रमाणानुग्राहकस्तर्कः।२

न्यायशास्त्रम्—पदार्थानांसर्वेषामनुगमरूपेण-प्रकाशको ग्रन्थः।

निरूपितत्वम्—स्वरूपसम्बन्धविशेषः (१)

निर्णयः—तदभावाप्रकारकं तत्प्रकारकं ज्ञानम्, (१) विमृश्यपक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणम् (२)।

प

पदार्थत्वम्—पद (निष्ठवृत्तिनिरूपकत्वम् १) जन्य ज्ञान विषयत्वम्, (२) द्रव्याद्यन्यतमत्वम्।

परीक्षा—परमतनिराकरणपूर्वकस्वमतस्थापनम्।

परममहत्त्वम्—अपकर्षानाश्रयपरिमाणत्वम्।

परमाणुः—मूर्तत्वेसतिनिरवयवः (१)। जालसूत्रमरीचिस्थं यत्सूक्ष्मंदृश्यतेरजः, तस्यषष्ठितमोभागः परमाणुः स उच्यते।

परसामान्यत्वम्—अधिकदेशवृत्तिजातित्वम्

परामर्शः—व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मताज्ञानम्।

परार्थानुमानम्—न्यायप्रयोज्यानुमानम्।

परार्थानुमितिः—स्वयंव्याप्याद्व्यापकं प्रतीत्य परप्रतिपत्त्यर्थं प्रयुक्तादवयववाक्यात्परस्य व्यापकप्रत्ययः

पौरुषेयत्वम्—प्रमाणान्तरेणार्थमुपलभ्यविनिर्मितत्वम् (१) पूर्वानुपूर्व्यनपेक्षपुंविशेषबुद्ध्यधीनानुपूर्वीमत्त्वंवा (२) सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषयत्वम्।

प्रतितन्त्र सिद्धान्तः— वादिप्रतिवाद्येकतरमात्राभ्युपगतप्रतिपादनं प्रतिपाद्य मुख्यतः प्रतिज्ञाय पश्चात् तत्सिद्धिहेतु प्रदर्शनम् उपोद्घातवारणायमुख्यइति, असम्बद्धहेतुव्यावृत्त्यर्थं तत्सिद्धीति।

प्रतियोगी—यस्याभावः यस्यसम्बन्धः यस्य सादृश्यंवा सः ३। धर्मिभिन्नत्वेसति भेदनिरूपकत्वम्।

प्रत्यक्षम्—इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नज्ञानम्। सन्निकर्षध्वंसवारणाय ज्ञानमिति, अनुमित्यादिवारणायेन्द्रियाथ सन्निकर्षेति, ज्ञानाकरणकं ज्ञानम्।

प्रत्यक्षप्रमाणम्—प्रत्यक्षप्रमाकरणकम्। प्रमाकरणानुमानादावतिव्याप्तिवारणाय प्रत्यक्षेति, भ्रमप्रत्यक्षकरणेऽतिप्रसंगवारणाय प्रमापदम्।

प्रत्यभिज्ञा—तत्तेदन्तावगाहिज्ञानम् (१) संस्का-

रेन्द्रिय संप्रयोगोभयजन्यज्ञानम् (२) ,यथासोऽयं देवदत्त इति ।

प्रध्वंसाभावत्वम् – अविनाशित्वेसति (जन्यत्वम्) प्रतियोगिसमवायिमात्रवृत्यभावत्वम् । अन्योन्याभाववारणाय मात्रेति, सामयिकाभावादिवारणाय सत्यन्तम् ।

प्रमेयत्वम् – प्रमाविषयत्वम् ।

प्रसङ्गसङ्गतित्वम्— उपोद्घातभिन्नत्वेसत्यनन्तराभिधान प्रयोजक जिज्ञासाजनक ज्ञानविषयत्वम् ।

प्रागभावत्वम्— अजन्यत्वेसति विनाशित्वम् । घटादिवारणाय सत्यन्तम्, परमाणुवारणाय विनाशित्वमिति ।

प्राणः—शरीरान्तःसञ्चारीवायुः । महावाय्वादावतिव्याप्तिवारणाय विशेषणम्, मनआदिवारणाय विशेष्यम्, धनञ्जय वारणायसञ्चारीति ।

पुनरुक्तिः— अनुवादान्यत्वेसति निष्प्रयोजनंपुनरभिधानम् ।

प्रतियोगितावच्छेदकः—येनरूपेणा भावादेः प्रतियोगिता बोध्यते स धर्मः (१) येन सम्बन्धेनाभावः स सम्बन्धः (२) ।

प्रतियोगित्वम्—स्वरूपसम्बन्धविशेषः (१)

प्रतिसन्धानम्—अनुचिन्तनम् ।

फलोपधायकत्वम्—कार्याव्यवहितपूर्ववृत्तित्वसम्बन्धेन फलविशिष्टत्वम् यथा कुलालहस्तस्थ दण्डे ।

भ

भावनासंस्कारः—जन्यज्ञानजन्यसंस्कारः (१) पूर्वानुभवजन्यः स्मृतिहेतुः (३), आत्मादिवारणाय प्रथमदलम्, अनुभवध्वंश वारणाय द्वितीयदलम् ।

भाविकालः, भविष्यत्धम्–सूर्यपरिस्पन्दादि क्रिया प्रागभावावच्छिन्नः कालः (१) वर्तमानप्रागभावप्रतियोगित्वम् (२) ।

भूतकालः—सूर्यपरिस्पन्दादि क्रियाध्वंसावच्छिन्नः कालः (१) वर्तमानध्वंसप्रतियोगित्वम् (२)

भेदः—पृथक्करणम् (१) अन्योन्याभावो वा ।

म

मनः—सुखदुःखादि साक्षात्कारकारणमिन्द्रियम्, आत्ममनःसंयोगादि वारणायेन्द्रियमिति, चक्षुरादिवारणायसुखेति ।

महाकालः—अनवच्छिन्नः कालः । उपाध्यनवच्छिन्नः कालः ।

य

यथार्थज्ञानम्—फलवत्प्रवृत्तिजननयोग्यम्, यथा रजते इदंरजतमितिज्ञानम् (१) दुष्टसामग्रयजन्यं ज्ञानम् (२)

युक्तिः अर्थावधारणम् (१) स्वपक्षसाधक विपक्ष बाधकप्रमाणोपन्यासः (२)

योग्यानुपलब्धिः—अभावप्रतियोगिसत्त्व प्रसञ्जन प्रसञ्जितोपलब्धि रूप प्रतियोगिकानुपलब्धिः, यथा भूतलेघटोनास्तीति प्रतीति सिद्ध घटाभाव प्रतियोगिनो घटस्य यद्यत्र घटः स्यादिति प्रसञ्जनेन (आपादनेन) तर्ह्युपलभ्येतेति प्रसञ्जितोपलब्धिरूपप्रतियोगिका घटस्यानुपलब्धिस्तस्या भूतले घटाभाव प्रमा जायते ।

योनिजशरीरं—शुक्रशोणितयोः परस्पर मेलन जन्यम्

ल

लक्षणा—बोध्यसम्बन्ध इति मी० १ शक्य सम्बन्धः २ सा द्विविधा केवललक्षणा लक्षितलक्षणा चेति शक्य परम्परा सम्बन्धः लक्षितलक्षणा यथा द्विरेफोऽस्तीदिति वाक्ये द्विरेफस्य भ्रमरपदे सम्बन्धस्तस्य च मधुकरे ।

लक्ष्यम्—वक्तृतात्पर्य विषयत्वे सति शक्य सम्बद्धम्, लक्षितुं योग्यम् ।

लक्षणम्—यो धर्मो लक्ष्येऽव्याप्त्या वर्तते, न वर्तते चान्यत्र स धर्मः १ लक्षतावच्छेदक समनियतम् २।

व

वितण्डा—स्वपक्ष स्थाप (न हीना विजिगीषुकथा) ना राहित्येन परपक्ष निराकरण वाक्यम् ।

वितर्कः—संदेहाद्यनन्तरं जायमान ऊहः ।

विनिगमना विरहः—एकतर पक्षपाति युक्तिविरहः

विपर्ययः—बाध्यमानं ज्ञानम् । अतस्मिँस्तत्प्रत्यः

विप्रतिपत्तिः—संशय जनक वाक्यम् १ परस्परं विरुद्धार्थ (प्रतिपादकवादि वचनम २) क वाक्य द्वय जन्यप्रतीतिद्वयम् ३ ।

विभुत्वं—सर्वमूर्तद्रव्य संयोगित्वम् । सर्वदेशवृत्तित्वम्

वृत्तित्वम्—आधेयत्वम. । (क्वचित् निरूपकता)

वृत्तिः—शक्तिः लक्षणा, कृतद्धितान्तसमासाना-मन्यतमः

वैयधिकरण्यं - भिन्नविभक्त्यन्तानां पदानां विभ-न्नार्थ निष्ठत्वम् ।

व्यतिरेकः - यदभावे यदभावः यथा यत्र यत्र सर्वप्राणिहिंसनशीलत्वे सति पशुत्वाकृतिविशिष्टा काचन व्यक्तिर्नभवति तत्र तत्र सिंहप्रत्ययोऽपि न भवति ।

व्यतिरेक व्याप्तिः - साध्याभाव (पुरस्सर त्वम्) व्यापकी भूताभावप्रतियोगित्वम् ।

व्यतिरेक सहचारः - कारणाभावे कार्याभावः ।

व्यतिरेक्यनुमानम् - व्यतिरेक व्याप्ति विशिष्ट हेतु-कानुमानं ।

व्यधिकरणत्वम्—तदधिकरणावृत्तित्वम् ।

व्यपदेशः—निमित्त सद्भावाद्विशिष्टो ऽपदेशो मुख्यो-व्यवहारः ।

व्यभिचारः—साध्याभाववद्वृत्तित्वम् ।

व्यापकत्वम्—अधिकदेशवृत्तित्वम् -हेतुसमानाधिक रणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं वा तत्समानाधिकरणा त्यन्ताभाव प्रतियोगितानवच्छेदक धर्मवत्वम् । तन्निष्ठाऽन्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वम् । प्रतियोग्यनधिकरण हेतुमन्निष्ठा भाव प्रतियोगिता सामान्ये यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्वं यद्धर्मावच्छिन्नत्व मेतदु भयाभावस्तेन सम्बन्धेन तद्धर्मावच्छिन्नस्य तद्धेतु व्यापकत्वम् ।

व्याप्तिः—साध्य (ाभाववदवृत्तित्वम् १) साधन योरव्यभिचरित सम्बन्धः २ ।

व्युत्पत्तिः– शास्त्रजन्य शब्दार्थ ज्ञानादि सम्पाद्य संस्कार विशेषः ।

व्यासज्यवृत्तित्वम्– एकत्वानवच्छिन्न पर्याप्तिकत्वम्

विग्रहः—वृत्यर्थाववोधकं वाक्यम् । समासा दिवृत्ति समानार्थकवाक्य विशेषः

विनिगमकम्—अन्यतरपक्षपातिनी युक्तिः (विनिगमना वा)

विशेषणता— स्वरुपसम्बन्धरुप सन्निकर्ष विशेषः प्रकारताख्यो विषयता विशेषः ।

वैयधिकरण्यम्—तदनधिकरण वृत्तित्वम् तदधि करणा वृत्तित्वम् ।

वैशिष्ट्यम्– सम्बन्धः । यस्य यत्र यः सम्बन्धः स एव तत्र तस्य वैशिष्ट्यम् ।

व्यभिचारः - साध्याभाववद्वृत्तित्वम्

श

शक्तत्वम्—कार्योत्पादनयोग्यत्वम् । शक्तिमत्त्वम् ।

शरीरत्वम्—भोगावच्छेदकत्वम् ।

शाब्दबोधः—एक पदार्थेऽपर पदार्थ संसर्ग विषयकं शक्तिज्ञानाधीनोपस्थिति प्रयोज्यं ज्ञानम् ।

स

सखण्डोपाधिः —बहु पदार्थघटितो धर्मः ।

सङ्गतिः—अनन्तराभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनक ज्ञान विषयत्वम् ।

समवायः—अयुत सिद्धयोः सम्बन्धः नित्यत्वे सति सम्बन्धत्वम् आकाशादि वारणाय सम्बन्धत्व मिति संयोग वारणाय सत्यन्तम् ।

सविकल्पकम्— वैशिष्ट्यावगाहिज्ञानम् यथा घटमहं जानामीत्यादि ज्ञानम् । इच्छादि वारणाय ज्ञानमिति निर्विकल्पक वारणाय वैशिष्ट्यावगाहीति ।

सहकारित्वम् – स्वभिन्नत्वे सति स्वकारणत्वम्

साक्षात्सम्बन्धः—यन्निष्ठ संसर्गतायां प्रतियोग्यनुयोगि विषयता निरूपितत्वमिति हरिनाथ भट्टाचार्यः।

संसर्गता—सम्बन्धनिष्ठ विषयता।

सादृश्यम्– तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयो धर्मवत्त्वम्

समनियतत्वम्—व्यापकत्वे सति व्याप्यत्वम्

समारब्धत्वम्—वर्तमानकाल वृत्तिध्वंश प्रतियोग्याद्य कृति विषयत्वम्।

सामानाधिकरण्यम्—तदधिकरण वृत्तित्वम्।

संशयः—अनवधारण ज्ञानम्। १ एकस्मिन्धर्मिणि विरुद्ध (नानाकोव्यवगाहि ज्ञानम्)

संसर्गाभावः—संसर्ग प्रतियोगिकोऽभावः १ तादात्म्यभिन्न सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताकोऽभावो वा

स्थूलशरीरं शुक्र शोणित निर्मितत्वे सत्यस्थ्यादि समुदायः।

स्मृतिः-उद्भूत संस्कारमात्रजन्यंज्ञानम् संस्कारध्वंसेऽति व्याप्ति वारणाय ज्ञान मिति, प्रत्यभिज्ञायामति व्याप्ति वारणाय मात्र पदम् अनुभवेऽतिव्याप्तिवारणाय संस्कार जन्यमिति असम्भव वारणायोद्भूतेति]

स्वतोग्राह्यत्वम् – दोषाभाव सहकृतयावत्स्वाश्रय ग्राहक सामग्री (मात्र) ग्राह्यत्वम्।

सुषुप्तिः—पूरीतता मनःसंयोगः।

स्वरुपयोग्यकारणत्वम्—कारणतावच्छेदक धर्म वत्त्वम् यथा वनस्थ दण्डे।

स्वरुपसम्बन्धः— प्रतियोग्यनुयोग्यन्यतरात्मक सम्बन्धः १ सम्बन्धान्तरमन्तरेण विशिष्ट प्रतीतिजनन योग्यत्वम्।

स्वरुपासिद्ध हेत्वाभासः—पक्षेऽभाववत्वम्।

स्वारसिक लक्षणा—अधुनातन तात्पर्य विषयी भूतार्थ निष्ठालक्षणा।

स्वार्थानुमानं—न्यायाप्रयोज्यानुमानम्

स्वार्थानुमितिः—स्वस्य व्याप्य प्रतीत्यन्तरं व्यापक प्रत्ययः।

ह

हेत्वाभासत्वम्—अनुमिति कारिणीभाव प्रतियोगि यथार्थ ज्ञान विषयत्वम।

इति न्यायकोषः।

१ नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय
तस्मैकृष्णाय नमः संसार महीरुहस्यबीजाय ॥

१ नवीन मेघवत् कान्तिवाले, तथा गोप युवतियों के वस्त्रों को चुरानेवाले संसार के निमित्तकारण जो कृष्ण उन्हें नमस्कार है।

२ द्रव्यं गुणस्तथाकर्म सामान्यं सविशेषकम्
समवायस्तथाऽभावः पदार्थाः सप्तकीर्तिताः ॥

२ द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय अभाव, ये सात "पदार्थ" कहे जाते हैं।

३ क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योम कालदिग्देहिनोमनः।
द्रव्याण्य(थ गुणारूपं रसोगन्धस्ततः परम् ॥

३ पृथ्वी, जल तेज, बायु, आकाश काल, दिशा, आत्मा, मन, ये (नौ) द्रव्य हैं ॥ (रुप, रस, गन्ध,

४ स्पर्शः संख्या परिमितिः पृथक्त्वञ्चततःपरम्
संयोगश्च विभागश्च परत्वं चा परत्वकम् ॥

४ स्पर्श, संख्या, परिमिति, पृथक्त्व, संयोग विभाग, परत्व, अपरत्व,

५ बुद्धिः सुखं दुःखमिच्छाद्वेषोयत्नोगुरुत्वकम्
द्रवत्वं स्नेहसंस्कारावदृष्टं शब्द एव च) ॥

५ बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म, शब्द, ये गुणहै)

६ उत्क्षेपणं ततोऽपक्षेपणमाकुञ्चनं तथा।
प्रसारणं च गमनं कर्माण्येतानि पञ्च च ॥

६ उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन ये पाँच कर्म हैं।

७ भ्रमणं रेचनं स्यन्दनोर्ध्वज्वलनमेवच।
तिर्यग्गमनमप्यत्र गमनादेव लभ्यते ॥

७ भ्रमण, रेचन, स्यन्दन, ऊर्ध्वज्वलन, तिर्यग्गमन ये गमन ही पद से लिये जाते हैं।

८ सामान्यं द्विविधं प्रोक्तं परं चापरमेवच।
द्रव्यादित्रिक वृत्तिस्तु सत्तापरतयोच्यते ॥

८ पर और अपर ये दो सामान्य हैं। द्रव्य गुण, कर्म्म में रहने वाली सत्ता पर सामान्य कहाती है।

९ परभिन्नाच या जातिः सैवाऽपरतयोच्यते।
(द्रव्यत्वादिक जातिस्तु परापरतयोच्यते ॥

९ पर सामान्य से भिन्न जाति अपर (व्याप्य) जाति कहलाती है। और द्रव्यत्वादि परापर दोनों जाति कहाती है।

१० व्यापकत्वात्परापि स्याद्व्याप्यत्वादपरापिच
अन्त्योनित्यद्रव्यवृत्तिर्विशेषः परिकीर्तितः ॥

१० द्रव्यत्वादि जाति घटत्वापेक्षया व्यापक और सत्तापेक्षया व्याप्य है। अन्त्य व्यावर्तकोंके अवसान में रहनेवाला विशेष नित्य द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से रहता है।

११ घटादीनां कपालादौ द्रव्येषु गुण कर्मणोः।
तेषु जातेश्च सम्बन्धः समवायः प्रकीर्तितः ॥

११ घटादि कपालादि में गुण और कर्म्म-द्रव्य में जाति-द्रव्य गुणकर्म्म में और विशेष नित्य द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से रहते हैं।

१२ अभावस्तुद्विधा संसर्गान्योन्याभावभेदतः
(प्रागभावस्तथाध्वंसोऽप्यत्यन्ताभावएवच ॥

१२ अभाव दो प्रकार के हैं, संसर्गाभाव, अन्योन्याभाव, प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव अत्यन्ताभाव के

१३ एवं त्रैविध्यमापन्नः संसर्गाभाव इष्यते)
सप्तानामपि साधर्म्यं ज्ञेयत्वादिक मुच्यते ॥

१३ भेदसे संसर्गाभाव भी तीन प्रकार का है) सातो पदार्थों का साधर्म्य ज्ञेयत्व वाच्यत्व और प्रमेयत्व है

१४ द्रव्यादयः पञ्च भावा अनेके समवायिनः
सत्तावन्तस्त्रय स्त्वाद्या गुणादिर्निर्गुणक्रियः ॥

१४ द्रव्यादि पाँच पदार्थ के (१) अनेकत्वे सति भावत्व (२) समवायित्व। द्रव्य, गुंण, कर्म्म का सत्तावत्व और गुणादि छौ का निर्गुणत्व एवं निष्क्रियत्व साधर्म्य हैं।

१५ सामान्य परिहीनास्तु सर्वेजात्याद्योमता
पारिमाण्डल्यभिन्नानां कारणत्वमुदाहृतम् ॥

१५ सामान्यादि चार का सामान्य शून्यत्व एवं अणु परिमाण परममहत्परिमाण अतीन्द्रिय सामान्य और विशेष से भिन्नका कारणत्वसाधर्म्य है ।

१६ अन्यथासिद्धिशून्यस्य नियता पूर्ववर्तिता
कारणत्वं भवेत्तस्य त्रैविध्यं परिकीर्तितम् ॥

१६ अन्यथा सिद्ध भिन्ननियतपूर्ववर्ती कारण कहलाते हैं । वह तीन प्रकार का है ।

१७ समवायिकारणत्वं ज्ञेय थाय समवायि हेतुत्वम् ।
एवं न्यायनयज्ञैस्तृतीय मुक्तं निमित्तहेतुत्वम् ॥

१७ न्यायज्ञों से समवायि असमवायि और तीसरा निमित्त कारण कहा गया है ।

१८ यत्समवेतंकार्यं भवतिज्ञेयंतुसमवायि जनकं तत् ।
तत्रासन्नं जनकं द्वितीयमाभ्यां परंतृतीयंस्यात्

१८ जिस मे समवाय सम्बन्धेन कार्य उत्पन्न हो वह समवायि कारण है । एवं-उसीमें समवाय वा स्व समवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से वृत्ती होकर जो कार्य जनक हो वह असमवायि कारण है । इन दोनों से भिन्न निमित्त कारण है ।

१९ (येनसह पूर्वभावः कारणमादाय वायस्य
अन्यं प्रतिपूर्वभावे ज्ञाते यत्पूर्वभाव विज्ञानम्

१९ (कार्य के प्रति कारण का नियत पूर्वं वृतित्त्व जिस रूपसे गृहीत हो " जिसका कारणद्वारा ही अन्वय व्यतिरेक हो " जिस मे अन्यत्र पूर्वं वृत्ताता ज्ञान होकर ही कार्य के प्रति पूर्वं वृत्तिता का ज्ञानहो

२० जनकं प्रतिपूर्ववृत्तितामपरिज्ञायनयस्यगृह्यते
अतिरिक्तमथापि यद्भवेन्नियतावश्यकपूर्व—भाविनः) ।

२० यत्कार्यं जनकके प्रति पूर्वं वृत्तता का ज्ञान होकर हीं यत्कार्यं के प्रति जिसमे पूर्वं वृत्तिता का ज्ञान हो और लघु नियत पूर्वं वृत्ती को छोड़कर सभी अन्यथा सिद्ध हैं)

२१ (प पञ्चान्यथासिद्धा
दण्डत्वादिक मादिमम् ।
घटादौ दण्ड रुपादि द्वितीय मपि दर्शितम् ॥

२१ (उक्त पाँच अन्यथा सिद्ध हैं-घटादि कार्य्य के प्रति दण्डत्वादि पहला, दण्ड रूपादि दूसरा ।

२२ तृतीयंतु भवेद्व्योम कुलाल-जनकोऽपरः
पञ्चमो रासभादिः स्यादेतेष्वावश्यकस्त्वसौ

२२ आकाश तीसरा,, कुलाल पिता चौथा और गदहा इत्यादि पाँचमा अन्यथा सिद्ध हैं) इन पाँच अन्यथा सिद्धों मे पाँचवाँ अन्यथा सिद्धही आवश्यक है (पूर्व चार अन्यथा सिद्धो का उसी मे समावेश हो जाता है ।

२३ समवायिकारणत्वं द्रव्यस्यैवेति विज्ञेयम्॥
गुणकर्ममात्रवृत्तिज्ञेय मथाप्यसमवायिहेतुत्वम्

२३ समवायि कारणत्व द्रव्यमात्र वृत्ती एवं-असमवायि कारणत्व गुण कर्ममात्र वृत्ती हैं ।

२४ अन्यत्र नित्यद्रव्येभ्य आश्रितत्वमिहोच्यते
क्षित्यादीनां नवानां तु द्रव्यत्वं गुण योगिता

२४ नित्य द्रव्यों से भिन्न का साधर्म्य द्रव्यत्व और गुणवत्त्व है ।

२५ क्षितिर्जलं तथातेजः पवनो मन एवच । परापरत्व मूर्तत्व क्रियो वेगाश्रया अमी ॥ २६ कालखात्म दिशांसर्वगतत्वं परमं महत् । क्षित्यादि पञ्चभूतानिचत्वारिस्पर्शवन्तिहि ॥	२५ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और मन इनके साधर्म्य परत्व अपरत्व मूर्तत्व क्रियावत्व और वेगवत्व है । २६ आकाशादि ४ चार का सर्वगतत्व तथा परममहत्परिमाणवत्व पृथिव्यादि ५ का भूतत्व और पृथिव्यादि ४ का स्पर्शवत्व ।
२७ द्रव्यारम्भश्चतुर्षु स्यादथाकाशशरीरिणाम् अव्याप्यवृत्तिः क्षणिको विशेष गुण इष्यते ॥	२७ द्रव्य समवायि कारणत्व तथा आकाश और जीवात्मा का अव्याप्य वृति विशेष गुणवत्त्व और क्षणिक विशेष गुणवत्त्व साधर्म्य हैं ।
२८ रूपद्रवत्वप्रत्यक्ष योगिनः प्रथमास्त्रयः । गुरुणो द्वे रसवती द्वयोर्नैमित्तिको द्रवः ॥	२८ पृथ्वी, जल, तेज का रूपवत्व द्रवत्ववत्त्व प्रत्यक्ष विषयत्व, पृथ्वी जल का गुरुत्व और रसवत्त्व पृथ्वी तेजका नैमित्तिक द्रवत्ववत्त्व ।
२९ आत्मानो भूतवर्गाश्च विशेष गुणयोगिनः यदुक्तं यस्यसाधर्म्यं वैधर्म्य मितरस्य तत् ॥	२९ आत्मा भूतवर्ग का विशेषगुणवत्त्व साधर्म्य है । जो जिसका साधर्म्य कहा गया है-तद्भिन्न का वह धर्म्य है ।
३० स्पर्शादयोऽष्टौवेगाख्यःसंस्कारोमरुतोगुणा स्पर्शाद्यष्टौ रुप वेगौ द्रवत्वं तेजसोगुणाः ॥	३० वायु के स्पर्शादि ८ और वेगाख्य संस्कार ये ९ एवं तेज के स्पर्शादि ८, रुप, वेग और नैमित्तकद्रवत्व ये ११ गुण है ।
स्पर्शादयाऽष्टौ वेगश्च गुरुत्वंच द्रवत्वकम् । रुपं रसस्तथास्नेहो वारिण्येते चतुर्दश ॥	३१ जल के स्पर्शादि ८, वेग, गुरुत्व, सांसिद्धिकद्रवत्व रुप, रस, और स्नेह ये १४ गुण है ।
३२ स्नेहहीना गन्धयुताः क्षितावेते चतुर्दश बुद्ध्यादिषट्कंसंख्यादिपञ्चकं भावनातथा ३३ धर्माधर्मौ गुणाएते आत्मानः स्युश्चतुर्दश संख्यादि पञ्चकं कालदिशोः शब्दश्चतेचखे	३२ स्पर्शादि ८, वेग, गुरुत्व, सांसिद्धिकद्रवत्व रुप, रस, और गन्ध, ये १४ पृथ्वी के गुण है । बुद्ध्यादि छः संख्यादि पाच तथा भावना ३३ धर्म और अधर्म ये चौदह गुण जीवात्मा के है । संख्यादि पाँच. और काल दिशाके गुण है । संख्यादि पाँच और शब्द ये छः गुण आकाश के हैं ।
३४ संख्यादयःपञ्चबुद्धिरिच्छायत्नोऽपिचेश्वरे परापरत्वे संख्याद्याः पञ्चवेगश्च मानसे ॥	३४ संख्यादि पाँच एवं बुद्धि, इच्छा, और यत्न, ये आठ गुण परमेश्वर के हैं ? संख्यादि पाँच परत्व, अपरत्व और वेग ये आठ गुण मनके हैं ।
३५ तत्रक्षितिर्गन्धहेतुर्नानारुपवती मता । षड्विधस्तु रसस्तत्र गन्धस्तु द्विविधोमतः ।	३५ नवों द्रव्यो मे केवल पृथ्वी गन्धका समवायि कारण है और नाना रुपवती है । पृथ्वी ही मे छवो तरह के रस और दोनों तरह के गन्ध (दुर्गन्ध और सुगन्धि) हैं ।

स्पर्शस्तस्यास्तु विज्ञेयो ह्यनुष्णाशीत पाकजः

३६ पाकज अनुष्णाशीतस्पर्शवत्त्व भी पृथ्वीका लक्षण जानना चाहिये ।

नित्यानित्या च सा द्वेधा नित्यास्यादणु लक्षणा
३७ अनित्यातु तदन्यास्यात्सैवावयव योगिनी
सा च त्रिधाभवेद्देहमिन्द्रियं विषयस्तथा ॥

नित्य तथा अनित्य प्रभेद से पृथ्वी दोप्रकार की ३७ है । परमाणुरुप पृथ्वी नित्य है और उस से भिन्न पृथ्वी अनित्य (कार्यरुपा) है । वही अनित्य पृथ्वी अवयववती है । वह अनित्य पृथ्वी शरीर, इन्द्रिय, और विषयभेद से तीन प्रकार की होती है ।

३८ योनिजादि भवेद्देह मिन्द्रियं घ्राणलक्षणम्
विषयोद्वयणुकादिश्च ब्रह्माण्डान्त उदाहृतः ॥

३८ (क) योनिज और अयोनिज शरीर रुप पृथ्वी हैं । (ख) घ्राणादि इन्द्रिय रूप पृथ्वी है । (ग) द्वयणुक से ब्रह्माण्डपर्यन्त विषय रूप पृथ्वी है ।

३९ वर्णःशुक्लो रसस्पर्शौ जले मधुरशीतलौ ।
स्नेहस्तत्र द्रवत्वं तु सांसिद्धिकमुदाहृतम् ॥

३९ जलमें शुक्ल रूप मधुररस शीतस्पर्श स्नेह (चिकनापन) और सांसिद्धिक द्रवत्व रहते हैं ऐसा कहा गया है ।

४० नित्यतादि प्रथमवत्किन्तु देह मयोनिजम्
इन्द्रियं रसनंसिन्धुर्हिमादिर्विषयो मतः ॥

४० प्रथमवत् (अर्थात् पृथ्वी के समान) जल भी नित्य अनित्य भेदसे दो प्रकारका होता है । किन्तु पृथ्वी से जलमें इतनाही विशेष है कि जलीय शरीर अयोनिज मात्र है । जलीय इन्द्रिय रसनेन्द्रिय है और समुद्र वर्फ प्रभृति (नदी, शरोबरवनौरी इत्यादि) सव विषय जल रूप है ।

४१ उष्णःस्पर्शस्तेजसस्तुस्याद्रूपंशुक्लभास्वरम्
नैमित्तिकं द्रवत्वंतुनित्यतादि च पूर्ववत् ॥

४१ तेज का स्पर्श उष्ण है । रुप भास्वर शुक्ल (परकीय रूपादि का व्यञ्जक) है द्रवत्व नैमित्तिक है (अग्नि संयोगादि से द्रवत्व होता है) एवं नित्यता और अनित्यता जल के समान है ।

४२ इन्द्रियं नयनं वह्निस्वर्णादि विषयो मतः ।

४२ तैजस इन्द्रिय नेत्र है और अग्नि तथा सोना चान्दी लोहा इत्यादि धातु तैजस विषय है । यह शास्त्रों का अभिमत है ।

अपाकजोऽनुष्णाशीत स्पर्शस्तु पवने मतः ॥
४३ तिर्यग्गमन वानेषज्ञेयः स्पर्शादि लिङ्गकः
पूर्ववन्नित्यतायुक्तं देहव्यापित्वगिन्द्रियम् ॥

वायु अपाकज अनुष्णाशीतस्पर्शवान् है । तिर्यग्गमनवान् (टेढ़ी चाल चलनेवाला) है । ४३ और स्पर्शादि हेतुओं से अनुमान करने योग्य है (एतावता उसका प्रत्यक्ष नहीं होता है) । उस की नित्यता और अनित्यता पूववत् जाननी चाहिये । शरीर मे व्यापी जो त्वचा वही वायवीय इन्द्रिय है ।

४४ प्राणादिस्तु महावायुपर्यन्तो विषयोमतः)
आकाशस्यतु विज्ञेयः शब्दोवैशेषिको गुणः ॥

४४ प्राणादि से लेकर महावायुपर्यन्त वायवी विषय है आकाश का विशेषगुण शब्द है ।

४५ इन्द्रियंतु भवेच्छ्रोत्रमेकः सन्नप्युपाधितः।
जन्यानां जनकःकालो जगतामाश्रयोमतः॥

४५ श्रोत्र आकाश का इन्द्रिय है। आकाश एक रहने पर भी उपाधि भेद से (नाना प्रतीत होता है)। जन्य पदार्थ मात्र का काल जनक है (साधारण निमित्त कारण है) और सम्पूर्ण संसारका कालिक सम्बन्धसे आश्रय है।

४६ परापरत्वधीहेतुः क्षणादि स्यादुपाधितः।
दूरान्तिकादिधीहेतुरेका नित्यादिगुच्यते॥

४६ कालकृत परत्व और अपरत्व के ज्ञान का असाधारण कारण काल है। क्षण आदि कालके औपाधिक भेद हैं दूरत्व और समीपत्व के ज्ञान का असाधारण कारण दिशा है वह एक है और नित्य है।

४७ उपाधिभेदादेकापि प्राच्यादिव्यप देशभाक्
आत्मेन्द्रियाद्यधिष्ठाता करणंहि सकर्तृकम्॥

४७ दिशा एक रहने पर भी उपाधि भेद से प्राची प्रतीची आदि विभिन्न व्यवहार का विषय होती है। आत्मा सब इन्द्रियों का अधिष्ठाता है (अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय से उत्पन्न हुए का ज्ञान का अधिकरण है) इस का कारण यह है कि करण सतृ्क होता है (करण कार्य-सम्पादन में कर्त्ता की अपेक्षा करता है)

४८ शरीरस्य न चैतन्यं मृतेषु व्यभिचारतः।
तथात्वं चेदिन्द्रियाणा मुपघाते कथंस्मृति॥

४८ शरीर ज्ञानादिक्रियाका कर्ता नहीं हो सकता है क्योंकि मृत शरीर मे ज्ञान नहीं रहता है। यदि तत्तदिन्द्रियों को तत्तदिन्द्रियजन्य ज्ञान का आश्रय माने तो एक इन्द्रिय के नाश हो जानेपर उस इन्द्रिय से अनुभूत पदार्थ का स्मरण द्वितीय इन्द्रिय को कैसे होगा क्योंकि नियम है कि एक व्यक्ति से अनुभूत पदार्थ व्यक्तयन्तर को स्मरण नहीं होता। इसलिए यही स्थिर हुआ कि इन्द्रिय भी कर्त्ता नहीं हो सकता

४९ मनोऽपि न तथा ज्ञानाद्यनध्यक्षं तदा भवेत्
धर्माधर्माश्रयोऽध्यक्षो विशेषगुणयोगतः॥

४९ मन को भी चेतन नहीं मान सकते हैं। क्योंकि मन को ज्ञानादिका आश्रय माननेपर ज्ञानादिका प्रत्यक्ष नहीं हो सकेगा। इसलिये यही पर्यवसित होता है कि जीवात्मा धर्म अधर्म का आश्रय है। और सुखदुःखादि विशेष गुण के सम्बन्ध से प्रत्यक्ष का विषय होता है।

५० प्रवृत्त्याद्यनुमेयोऽयं रथगत्येव सारथिः।
अहंकारस्याश्रयोऽयं मनोमात्रस्य गोचरः॥

५ जैसे चलते हुए रथ में कोचवान् नहीं देखे जाने पर भी उसका अनुमान किया जाता है कि इस रथमें कोचवान् अवश्य है। उसी प्रकार दूसरे जीवात्मा का (प्रत्यक्ष नहीं होंने पर भी उस व्यक्ति की) प्रवृत्ति से उस जीवात्मा का अनुमान होता है। आत्मा "अहंकार" का आश्रय है (अहम् इत्याकारक प्रत्यक्ष का विषय है) और मन ही से वह ग्रहण किया जाता है (मनोमात्रजन्य प्रत्यक्ष का विषय है)

विभुर्बुद्ध्यादि गुणवान्बुद्धिस्तु द्विविधामता । अनुभूतिः स्मृतिश्च स्यादनुभूतिश्चतुर्विधा ॥	५१ आत्मा विभु (सर्वमूर्त संयोगी) है। और बुद्ध्यादि १४ गुणवाला है। बुद्धि-अनुभव और स्मरण के भेद से दो प्रकार की है। अनुभव के चार प्रभेद हैं।
५२ प्रत्यक्षमप्यनुमिति स्तथोपि मितिशब्दजे। घ्राणजादिप्रभेदेन प्रत्यक्षं षड्विधं मतम् ॥	५२ (१) प्रत्यक्ष (२) अनुमिति (३) उपमिति (४) और शाब्द। घ्राणज, त्वाच, चाक्षुष. श्रावण, रासन, मानस, इन के प्रभेद से प्रत्यक्ष ६ प्रकार का माना जाता है।
५३ घ्राणस्य गोचरोगन्धो गन्धत्वादिरपिस्मृतः तथारसोरसज्ञायास्तथा शब्दोऽपिचश्रुतेः ॥	५३ गन्ध, गन्धत्वादि (आदि सब्द से गन्धाभाव और गन्धत्वाभाव) घ्राणेन्द्रिय का गोचर है। घ्राणेन्द्रिय जन्य प्रत्यक्ष विषय है। एवं रसरसत्वादि रसनेन्द्रिय ग्राह्य हैं और शब्दत्वादि कर्णेन्द्रिय के गोचर हैं।
५४ उद्भूतरूपं नयनस्य गोचरो द्रव्याणितद्वन्तिपृथक्त्वसंख्ये। विभागसंयोगपरापरत्व, स्नेहद्रवत्वं परिमाण युक्तम् ॥	५४ उद्भूत रूप का, तथा उद्भूत रूपवाले द्रव्यका, पृथक्त्व तथा संख्याका, विभाग तथा संयोग का, परत्व तथा अपरत्व का, स्नेह तथा द्रवत्व का, और परिमाण का, चक्षुसे ग्रहण होता है (उक्त पृथक्त्वादिं को योग्यवृत्ति समझना चाहिये)।
५५ क्रिया जातियोग्यवृत्तिः समवायश्चतादृशः गृह्णातिचक्षुः संयोगादालोकोद्भूत रूपयो॥	५५ योग्यवृत्ति क्रिया जाति समवाय का ग्रहण चक्षुरिन्द्रिय से होता है। आलाक (प्रकाश) तथा उद्भूत रूपके सम्बन्ध से चक्षु उक्त रूपादि विषयोंको ग्रहण करता है।
५६ उद्भूतस्पर्शवद्द्रव्यंगोचरःसोऽपिचत्वचः रूपान्यच्चक्षुषो योग्यं रूपमत्रापि कारणम् ॥ द्रव्याध्यक्षे--*	५६ जिस द्रव्य का स्पर्श उद्भूत हैं वह द्रव्य तथा उद्भूतस्पर्श और रूप को छोड़कर जो पदार्थ चक्षुरिन्द्रिय से ग्रहण किये जाते हैं ये सब त्वगिन्द्रिय से भी ग्रहण किये जाते हैं। द्रव्यके त्वाच प्रत्यक्षकेप्रति रूपको भी कारणता है (इसलिये वायुके अनुमानही होताहै किन्तु प्रत्यक्ष नहीं होता है)
५७ * त्वचो योगो मनसा ज्ञानकारणम्। मनोग्राह्यं सुखंदुःखमिच्छाद्वेषोमतिःकृति ॥	५७ मनके साथ त्वगिन्द्रिय का संयोग ज्ञानका कारण है। (अतएव सुषुप्ति कालमें उपपन्न होता है)। सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, ज्ञान, यत्न (अपनी आत्मा) अपने मनसे ग्रहण किये जाते हैं।
५८ ज्ञानंयन्निर्विकल्पाख्यं तदतीन्द्रियमिष्यते। महत्वं षड्विधेहेतुरिन्द्रियं करणंमतम् ॥	५८ निर्विकल्पक ज्ञान अतीन्द्रिय होता है अर्थात् किसी इन्द्रिय से ग्राह्य नहीं होता है। षडविध प्रत्यक्ष प्रति महत्परिमाण कारण होता है और इन्द्रिय करण होता हैं।

५९ विषयेन्द्रिय संबन्धो व्यापारः सोऽपि षड्विधः।
द्रव्यग्रहस्तु संयोगात्संयुक्त समवायतः

५९ घटपटादि विषयोंके साथ नेत्रादि इन्द्रियो का जो प्रत्यक्षानुकूल सम्बन्ध होता है वह पूर्वोक्त षड्विध प्रत्यक्षके प्रति व्यापार कहा जाता है यह सम्बन्ध रूप व्यापार ६ प्रकारके होते हैं। द्रव्य का ग्रहण संयोग सम्बन्ध से होता है।

६० द्रव्येषुसमवेतानांतथातत्समवायतः
तत्रापिसमवेतानां शब्दस्यसमवायतः॥

६० द्रव्य सवेत रुपादि का ग्रहण संयुक्त समवाय सम्बन्ध से होता है। द्रव्य समवेत समवेत रुपत्वादि का "संयुक्तसमवेत समवाय" सम्बन्ध से होता है। शब्द का समवाय सम्बन्धसे होता है।

६१ तद्वृत्तीनां समवेतसमवायेनतुग्रहः
प्रत्यक्षंसमवायस्य विशेषणतयाभवेत्॥

६१ शब्द मे समवाय सम्बन्धसे रहनेवाले "शब्दत्वादिका" समवेत समवाय सम्बन्ध से ग्रहण होता है और समवाय का विशेषणता सम्बन्ध से ग्रहण होता है।

६२ विशेषणतया तद्वदभावानां ग्रहोभवेत्
यदिस्यादुपलभ्येतेत्येवं यत्र प्रसज्यते॥

६२ उसी प्रकार अभावों का भी ग्रहण विशेषणता सम्बन्ध से होता है "अत्र यदि घटः स्यात्तर्हि उपलभ्येत" इस प्रकार प्रतियोगि प्रत्यक्ष की आपत्ति जहां दी जासकती है वहीं घटाभावादि का प्रत्यक्ष होता है। इसी हेतु अन्धकार मे घटादि के अभावों का प्रत्यक्ष नहीं होता है।

६३ अलौकिकस्तुव्यापारस्त्रिविधः परिकीर्त्तितः
सामान्य लक्षणो ज्ञानलक्षणो योगजस्तथा॥

६३ अलौकिक सन्निकर्ष तीन प्रकार के होते हैं— सामान्य लक्षण ज्ञान लक्षण और योगज।

६४ आसत्तिराश्रयाणां तु सामान्यज्ञानमिष्यते
तदिन्द्रियजतद्धर्म बोध सामग्र्यपेक्ष्यते॥

६४ सामान्याश्रय विषयक जो अलौकिक प्रत्यक्ष उस मे सामान्य ज्ञान प्रत्यासत्ति अर्थात् सन्निकर्ष है।

तदिन्द्रियजन्य तद्धर्म प्रकारक अलौकिक प्रत्यक्षकेप्रति तदिन्द्रिय जन्य तद्धर्म प्रकारक लौकिक प्रत्यक्ष की सामग्री प्रयोजक है।

६५ विषयी यस्य तस्यैव व्यापारोज्ञानलक्षणः
योगज द्विविधः प्रोक्तो युक्त युञ्जानभेदतः।

६५ ज्ञान लक्षण प्रत्यासत्ति यद्विषयक है वह तद्विषयक ज्ञानोत्पादक होती है। युक्त युञ्जान भेद से योगज धर्म दो प्रकार के होते हैं।

६६ युक्तस्यसर्वदाभानं चिन्तासहकृतोऽपरः।

६६ युक्त योगी को सर्वदा विषय का भान होता रहता है और युञ्जान को ध्यान करने से भान होता है।

६७ व्यापारस्तु परामर्शः करणंव्याप्तिधीर्भवेत्
अनुमायांज्ञायमानं लिङ्गं तु करणं नहि।
अनागतादि लिङ्गेन नस्यादनुमितिस्तदा।

६७ अनुमिति मे परामर्श व्यापार है। एवं व्याप्ति ज्ञान कारण है और व्याप्यत्वेन ज्ञायमानलिङ्ग (अनुमितिका) करण नही है, क्योंकि अनागत एवं अतीत लिङ्ग से अनुमिति होती है सो नहीं होगी।

६८ व्याप्यस्यपक्षवृत्तित्वधीः परामर्शउच्यते।
व्याप्तिःसाध्यवदन्यस्मिन्न सम्बन्धउदाहृतः॥

६८ साध्य व्याप्तिविशिष्ट हेतु मे पक्षवृत्तित्वावगाही जो ज्ञान वह परामर्श कहलाता है साध्यवद् भिन्न निरूपित वृत्तित्वाभाव व्याप्ति है अर्थात् साध्याधिकरण से भिन्न मे हेतुका सम्बन्ध नहीं रहनाहीं व्याप्ति है।

६९ अथवाहेतुमन्निष्ठविरहाप्रतियोगिना।
साध्येनहेतोरैकाधिकरण्यं व्याप्तिरुच्यते॥

६९ हेतुके अधिकरण मे रहने वाला जो विरह-अभाव उस अभाव का अप्रतियोगी जो साध्य तादृश साध्य के साथ हेतुका सामानाधिकरण्य साध्य निरूपित व्याप्ति है।

७० सिषाधयिषया शून्यासिद्धिर्यत्र न विद्यते।
सपक्षस्तत्रवृत्तत्वज्ञानादनुमितिर्भवेत्॥

७० साध्य के निश्चय करने की इच्छाको "सिषाधयिषा कहते हैं तादृश सिषाधयिषा के अभाव सहित जो सिद्धि (पक्षमे साध्यका निश्चय) उसका अभाव पक्षता है वह जहां रहे वह पक्ष है और उक्त पक्षके साथ जो व्याप्ति विशिष्ट हेतु वैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानात्मक परामर्श उसको रहने से अनुमिति होती है।

७१ अनैकान्तोविरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः
कालात्ययापदिष्टश्च हेत्वाभासास्तुपञ्चधा

७२ आद्यःसाधारणस्तुस्यादसाधारणकोऽपरः
तथैवानुपसंहारी त्रिधानैकान्तिकोभवेत्॥

७१ यद्विषयक निश्चय अनुमिति या परामर्श अन्यतर का प्रतिबन्धक हो वही हेत्वाभास कहाता है।)। हेत्वाभास ५ प्रकार के हैं यथा (१) अनैकान्तिक (२) विरुद्ध (३) असिद्ध (४) प्रतिपक्षित (सत्प्रतिपक्ष) (५) और कालात्ययापदिष्ट (बाधित)। अनैकान्तिक (सव्यभिचार) के तीन प्रभेद हैं। यथा (१)
७२ साधारण (२) असाधारण (३) अनुपसंहारी

७३ यः सपक्षेविपक्षे च भवेत्साधारणस्तुसः।
यस्तूभयस्माद्व्यावृतः सचासाधारणो मतः॥

७३ जो हेतु सपक्ष और विपक्ष दोनों मे रहे वह "साधारण" नामका हेत्वाभास कहाता है।

जो हेतु "सपक्ष वा विपक्ष" किसी मे नहीं रहे (किन्तु पक्षमात्र मे रहे) वह असाधारण हेत्वाभासहै

७४ तथैवानुपसंहारी केवलान्वयिपक्षकः ।
यः साध्यवतिनैवास्ति सविरुद्ध उदाहृतः ॥

७४ जिस स्थल में वस्तुमात्र पक्ष है अर्थात् पक्षता केवलान्वयि है वह हेतु अनुपसंहारी (हेत्वाभास) कहाता है । जो हेतु साध्यवत् में नहीं रहे वह विरुद्ध हेत्वाभास कहाता है ।

७५ आश्रयासिद्धिराद्यास्यात्स्वरुपासिद्धिरप्यथ ।
व्याप्यत्वासिद्धि रपरा-
स्यादसिद्धिरतस्त्रिधा ॥
७६ पक्षासिद्धिर्यत्रपक्षोभवेन्मणिमयोगिरिः
ह्रदोद्रव्यंधूमवत्त्वादत्रासिद्धि रथापरा ॥
७७ व्याप्यत्वा सिद्धिरपरा-
नीलधूमादिके भवेत् ॥

७५ (१) आश्रयासिद्धि (२) स्वरुपासिद्धि (३) व्याप्यत्वासिद्धि के भेद से असिद्धि तीन प्रकार के हैं । "मणिमयः पर्वतो वह्निमान् धूमात्" इस स्थलमे पर्वत रुप पक्षमे मणिमयत्वका अभाव आश्रयासिद्धि है । अतः धूमरुप हेतु यहां आश्रयासिद्धयात्मक दोष से हेत्वाभास है । ह्रदोद्रव्यं धूमवत्वात्" इस स्थलमे ह्रद रुप पक्षमे धूमवत्व का अभाव स्वरुपासिद्धि है अतः धूमवत्वरुप हेतु स्वरुपासिद्धयात्मक दोष से हेत्वाभास) है । (व्यर्थ विशेषण घटित हेतु व्याप्यत्वासिद्धि दोष कहाताहै) पर्वतो वह्निमान् नीलधूमात् यहां नील धूम व्याप्यत्वा सिद्धिदोष से हेत्वाभास है ।

विरुद्धयोः परामर्शे हेत्वोः सत्प्रतिपक्षता ।

७७ परस्पर विरुद्ध साध्यद्वय साधक जो हेतु द्वय उस के परामर्श होनेपर उक्त दोनोंहेतु सत्प्रतिपक्ष कहाते हैं ।

७८ साध्यशून्यो यत्रपक्षस्त्वसौ वाधउदाहृतः ।
उत्पत्तिकालीनघटे गन्धादिर्यत्र साध्यते ॥

७८ जिस स्थल मे साध्याभाववत् पक्षतावच्छेदक विशिष्ट पक्ष है वहां हेतु कालात्ययापदिष्ट (बाधित) कहाता है—"यथा उत्पत्तिकालीनघटः गन्धवान्पृथ्वीत्वात्" यहां पक्षतावच्छेदक उत्पत्ति कालविशिष्ट घट रुप पक्ष गन्धाभाववत् है । अतः इस स्थल का पृथ्वीत्वरुपहेतु बाधित कहाता है ।

७९ ग्रामीणस्य प्रथमतः—
पश्यतो गवयादिकम् ।
सादृश्यधीर्गवादीनां-
यास्यात्साकरणं मतम् ॥
८० वाक्यार्थं स्यातिदेशस्य-
स्मृतिर्व्यापारउच्यते ।
गवयादि पदानांतु शक्तिधीरुपमाफलम्

७९ प्रथमतः गवयादिको देखतेहुए ग्रामीण की जो अपरिचित गवयादि मे गोसादृश्य की बुद्धि हुई वही बुद्धि उपमिति रूप ज्ञान में करण माना जाता है । किसी आरण्यक कथित जो "गो सादृश्योगवयपद वाच्यः" इत्याकारक अतिदेश वाक्य तदर्थ की स्मृति हुई वह उप-
८०-मिति मे व्यापार कहाजाता है और पीछे-उस ग्रामीण को "गवयो गवयपदवाच्यः इत्याकारक जो गवयादिपदनिरूपित शक्तिका ज्ञान हुआ वही उपमित्यात्मक ज्ञान रूप कार्य्य है ।

८१ पदज्ञानंतु करणं द्वारं तत्र पदार्थधीः ।
शाब्दबोधः फलं तत्र शक्तिधीः सहकारिणी ॥

८१ शाब्दबोध के प्रति पदज्ञान करण और पदजन्य पदार्थोपस्थिति व्यापार है पद और अर्थ इन दोनों मे शक्तिरुप जो विशेष सन्बन्ध उसका ज्ञान सहकारी कारण है अर्थात् पदज्ञानोत्तर शक्तिज्ञानजन्य पदार्थोपस्थिति द्वारा शाब्दबोध रूप फल होता है ।

८२ लक्षणा शक्यसम्बन्धस्तात्पर्यानुपपत्तितः

८२ शक्य सम्बन्धका नाम लक्षणा है । तात्पर्य की अनुपपत्ति जहां ज्ञात होती है उस जगह लक्षणा से पदार्थ की स्मृति और शाब्दबोध होते हैं ।

८३ आसत्तियोग्यताकांक्षा तात्पर्यज्ञानमिष्यते
कारणंसन्निधानं तु पदस्यासत्तिरुच्यते ॥

आसत्तिज्ञान योग्यताज्ञान आकाङ्क्षा और तात्पर्यज्ञान ये शाब्दबोध के प्रति कारण हैं । पदों के परस्पर सान्निध्य को आसत्ति कहते है (कारिका मे आसत्ति पद आसत्ति ८३ ज्ञानार्थक हैं ।

पदार्थे तत्र तद्वत्तो योग्यता परिकीर्तिता ।

८३ पदार्थ इत्यादि कारिका से योग्यता का निरूपण करते हैं ।

८४ यत्पदेन विनायस्याननुभावकताभवेत् ।
आकांक्षावक्तुरिच्छातु तात्पर्यं परिकीर्तितम् ॥

८४ जिस पदके विना जिस पद मे यादृश शाब्दबोध जनकत्व नहीं होता है तत्पद सहित तत्पद मे तादृश शाब्दवोधानुकूल आकांक्षा रहती है । और वक्ता की इच्छा तात्पर्य है ।

८५ साक्षात्कारे सुखादीनां करणं मन उच्यते ।
अयौगपद्याज्ज्ञानानां तस्याणुत्वमिहेष्यते ॥

८५ सुखादिप्रत्यक्ष के प्रति मन करण कहाजाता है । एक काल मे अनेक इन्द्रियों से नाना ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती है इसलिये वह अणु मानाजाताहै ।

८६ अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया–
निर्गुणानिष्क्रियागुणाः ।

८६ गुण, द्रव्यमें समवाय सम्बन्धसे रहते हैं किन्तु गुणमे, गुण और क्रिया नहीं रहती है ऐसा जानना चाहिये ।

८७ रूपं रसः स्पर्शगन्धौ परत्वमपरत्वकम्
द्रवत्वं स्नेहवेगाश्च मतामूर्त गुणाअमी

रुप, रस, गन्ध, स्पर्श, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, वेग, स्थितिस्थापक ये सव मूर्त (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, ८७ मन के गुण हैं ।

८८ धर्माधर्मौ भावनाचशब्दोबुद्ध्यादयोऽपिच
एतेऽमूर्तगुणाः सर्वे विद्वद्भिः परिकीर्तिताः

धर्म, अधर्म, भावना, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख ८८ इच्छा, द्वेष, यत्न ये दश अमूर्त के गुणहैं ऐसा विद्वानो ने कहा है ।

संख्यादयोविभागान्ता उभयेषां गुणामताः ॥

संख्या, परिमाण पृथक्त्व संयोग और विभाग ये पांचो गुण मूर्त (पृथ्वी जल तेज वायु और मन) और अमूर्त (आकाश, काल दिशा और आत्मा) इन दोनों मे अर्थात् द्रव्य मात्र मे रहते हैं ।

८९ संयोगश्च विभागश्चसंख्याद्वित्वादिकास्तथा
द्विपृथक्त्वादयस्तद्व देतेऽनेकाश्रिता गुणाः ॥
(९० अतःशेषगुणाः सर्वे मताएकैकवृत्तयः ।
बुद्धयादिषट्कं स्पर्शान्ताः स्नेहःसांसि-
द्धिकोद्रवः ।
९१ अदृष्टभावनाशब्दाअमीवैशेषिकागुणाः

९१ संख्यादिरपरत्वान्तो-
द्रवोऽसांसिद्धिकस्तथा ।
९२ गुरुत्ववेगौ सामान्य-
गुणा एते प्रकीर्तिताः ॥

९२ संख्यादिरपरत्वान्तो
द्रवत्वं स्नेह एवच ।
९३ एतेतुद्वीन्द्रिय ग्राह्याः-

९३ अथ स्पर्शान्त शब्दकाः ।
बाह्यैकैकेन्द्रिया ग्राह्याः ॥

९३ गुरुत्वादृष्ट भावनाः ।
९४ अतीन्द्रियाविभूनां तु ये
स्युर्वैशेषिका गुणाः ।
अकारणगुणोत्पन्ना एतेतु परिकीर्तिताः

९५ अपाकजास्तु स्पर्शान्ता द्रवत्वं च
तथाविधम् ।
स्नेहवेगगुरुत्वैक पृथक्त्वपरिमाणकम्

९६ स्थितिस्थापक इत्येतेस्युःकारण-
गुणोद्भवाः ॥
(९६ संयोगश्च विभागश्च वेगश्चैतेतु कर्मजाः
९७ स्पर्शान्तपरिमाणैक पृथक्त्वंस्नेहशब्दके
भवेद समवायित्वम्—

९७ अथवैशेषिके गुणे ॥
९८ आत्मनः स्यान्निमित्तत्वम्—
९८ उष्णस्पर्श गुरुत्वयोः ॥
९९ वेगोऽपिच द्रवत्वेच संयोगादिद्वयेतथा
द्विधैव कारणत्वं स्याद्—
अथ प्रादेशिको भवेत् ॥

८९ संयोग विभाग द्वित्वादि संख्या द्विपृथक्त्वादि ये चार अनेक मे रहनेवाले गुण हैं ।

९० उक्त चारो गुणों से भिन्न जितने गुण हैं वे सव एक एकमात्र मे रहने वाले हैं)

९० बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेषं, यत्न, रूप रस, गन्ध, स्पर्श, स्नेह, सांसिद्धिक द्रवत्व,
९१ धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये विशेष गुण कहे जाते हैं ।

९१ संक्या, परिमाण पृथक्त्व, संयोग, विभाग परत्व, अपरत्व, असांसिद्धिक
९२ अर्थात् नैमित्तिक द्रवत्व गुरुत्व और वेग सामान्य गुण है ।

९२ संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व ।
९३ और स्नेह ये गुण दो इन्द्रियों से ग्राह्य हैं

९३ रुप रस गन्ध स्पर्श और शब्द ये सवगुण वाह्य एक एक इन्द्रिय से ग्राह्य हैं ।

९३ गुरुत्व, अदृष्ट, और भावना ये अतीन्द्रिय हैं । विभुके विशेष गुण अर्थात् बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, धर्म, अधर्म, भावना, शब्द ये दश गुण अकारण गुणोत्पन्न हैं

९५ अपाकज, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और असांसिद्धिक द्रवत्व, स्नेह, वेग, गुरूत्व, एकत्व, एक पृथक्त्व, परिमाण स्थितिस्थापक ये सब कारण गुणोत्पन्न हैं ।

९६ संयोग विभाग और वेग ये तीन गुण कर्मजहैं ।

९७ रुप रस गन्ध स्पर्श परिमाण एकत्व एक पृथक्त्व (एकमात्रनिष्ठपृथक्त्व) स्नेह शब्द (और स्थितिस्थापक) ये गुण असमवायि कारणमात्र होते हैं ।

९७ आत्मामे जो विशेष गुण हैं (बुद्धि सुख दुःख इच्छा द्वेष यत्न धर्म अधर्म भावना) वे निमित्त कारण मात्र होते हैं ।

९८ उष्ण स्पर्श, गुरुत्व,
९९ वेग द्रवत्व संयोग विभाग ये सव असमवायि और निमित्त दोनों तरह के कारण होतेहै

विभुके विशेष गुण (बुद्धि सुख दुःख इच्छा

(९९ वैशेषिको विभुगुणः संयोगादिद्वयं तथा	९९द्वेष यत्न धर्म अधर्म भावना शब्द संयोग विभाग) ये सब प्रादेशिक हैं।
१०० चक्षुर्ग्राह्यं भवेद्रूपं द्रव्यादेरुपलम्भकम् चक्षुषःसहकारीस्याच्छुक्लादिक मनेकधा	१०० जो रूप चक्षुमात्र से ग्राह्य और द्रव्यादि के प्रत्यक्ष मे कारण तथा चक्षुका सहकारी (सहायक) भी है। वह रूप शुक्लादि प्रभेद से सात प्रकारका है।
(१०१ जलादि परमाणौ तन्नित्यमन्यत्सहेतुकम्	१०१ जल और तेजके परमाणु में जो रूप है वह नित्य है उससे भिन्न जितने रूप हैं वे सब अनित्यहैं।
१०१ रसस्तु रसनाग्राह्योमधुरादिरनेकधा १०२ सहकारी रसज्ञाया नित्यतादि च पूर्ववत्॥	१०१ रस रसनेन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष का विषय है और मधुरादि भेद से ६ प्रकार का है १०२ एवं रसना का सहकारी है और उसमें भी रूप के तरह नित्यत्व, अनित्यत्व माना जाता है।
(१०२ घ्राणग्राह्याभवेद्गन्धोघ्राणस्यैवोपकारकः	१०२ गन्ध घ्राणेन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष का विषय है और घ्राण का सहकारी है।)
(१०३ सौरभश्चा सौरभश्च सद्वेधापरिकीर्तितः (स्पर्शस्त्वगिन्द्रिय ग्राह्यस्त्वचःस्यादुपकारकः	१०३ सौरभ असौरभ भेदसे गन्ध दो प्रकारका हैं।) स्पर्श त्वगिन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष का विषय है एवं त्वचा का सहकारी है।)
१०४ अनुष्णाशीतशीतोष्णभेदात्सत्रिविधोमतः काठिन्यादिक्षितावेव नित्यतादिचपूर्ववत्	१०४ अनुष्णाशीत, शीत तथा उष्ण भेद से स्पर्श तीन प्रकार केहैं। कठिन स्पर्श और सुकुमारस्पर्श पृथ्वीमात्र में रहता है। स्पर्श में नित्यत्वानित्यत्व-रूप के समान समझना चाहिये।
१०५ एतेषां पाकजत्वंतु क्षितौनान्यत्रकुत्रचित् तत्रापि परमाणौस्यात्पाको वैशेषिकेनये॥	१०५ पृथ्वीमात्र में रूप रस गन्ध स्पर्श पाकज होते हैं वैशेषिक के मत में पृथ्वी में भी पार्थिव परमाणु मात्रमें पाक होता है, इसलिये उनके मतसे पार्थिव परमाणु मात्रमें रहनेवाले रूपादि पाकज हैं।
(१०६ नैयायिकानांतुनये द्व्यणुकादावपीष्यते।	१०६ नैयायिकों के मतसे परमाणु और द्व्यणुकादि अवयवी में भी पाक होता है।)
(गणना व्यवहारेतु हेतुः संख्याभिधीयते॥	गणना व्यवहार का असाधारण कारण संख्या है।)
१०७ नित्येषुनित्यमेकत्व मनित्येऽनित्यमिष्यते द्वित्वादयः परार्धान्ता अपेक्षा बुद्धिजामताः	१०७ नित्यमे रहनेवाली एकत्व संख्या नित्य है और अनित्यमें रहनेवाली अनित्य है द्वित्व से लेकर परार्द्ध पर्यन्त संख्या अपेक्षा बुद्धि से उत्पन्न होती है अतएव वह अनित्य होगी।
१०८ अनेकाश्रयपर्याप्ता एतेतु परिकीर्तिताः। अपेक्षाबुद्धिनाशाच्च नाशस्तेषां निरूपितः॥	१०८ द्वित्वादि संख्या अनेकाश्रय में पर्याप्ति सम्बन्ध से रहती है और अपेक्षा बुद्धिके नाश से उन संख्याओं का नाश होता है।

१०६ अनेकैकत्वबुद्धिर्या सापेक्षाबुद्धिरिष्यते।
(परिमाणं भवेन्मान व्यवहारस्य कारणम् ।।

(१०९ अनेक तत्तद्धर्म्म विशेष्यक एकत्व प्रकारक जो 'अयमेकः अयमेकः' इत्याकारक ज्ञान वह अपेक्षा बुद्धि कही जाती है ।

मान व्यवहार का असाधारण कारण "परिमाण" अर्थात् परिमिति है ।)

(११० अणुदीर्घं महद्धस्वमितितद्भेद ईरितः ।

११० उक्त "परिमाण" अणु, दीर्घ, महत् तथा ह्रस्वके भेद से चार प्रकार का है ।)

अनित्येतदनित्यंस्यान्नित्ये नित्य मुदाहृतम्
१११ संख्यातः परिमाणाच्च प्रचयादपि जायते ।
(अनित्यं द्वयणुकादौ तु संख्याजन्यमुदाहृतम्

अनित्य द्रव्यगत परिमाण अनित्य है और नित्य द्रव्यगत परिमाण नित्यहै अनित्यपरिमाण १११ संख्या परिमाण प्रचय इनतीनों सेउत्पन्न होते हैं ।
द्व्यणुक, त्र्यणुकगत अनित्य परिमाण संख्या जन्य कहा गया है ।)

११२ परिमाणंघटादौतु परिमाणज मुच्यते
प्रचयः शिथिलाख्यो यः संयोगस्तेनउच्यते
११३ परिमाणं तूलकादौ—
नाशस्त्वाश्रय नाशतः ।

११२ घटादि (अवयवी) गत परिमाण कपालादि (अवयव) गत परिमाण से उत्पन्न होता है, तूलकादिगत शिथिल (ढीला) संयोग प्रचय कहा जाता है और प्रचय से तूलकादि में परिमाण की उत्पत्ति होती है । ११३ परिमाण का नाश आश्रय नाश के अधीन है ।)

संख्यावत्तुपृथक्त्वंस्यात्पृथक्प्रत्ययकारणम्
११४ अन्योन्याभावतो नास्य—
चरितार्थत्वमिष्यते ।
अस्मात्पृथगिदं नेति प्रतीतिर्हि विलक्षणा

११४ यह इससे पृथक् है इस व्यवहार का असाधारण कारण पृथक्त्व है उस में नित्यत्वा नित्यत्व संख्या के समान है, वह पृथक्त्व अन्योन्याभावसे गतार्थ नहीं हो सकता है क्योंकि "इदमस्मात् पृथक्" इत्याकारक पृथक्त्व प्रतीतिसे "इदमिदन्न" इत्याकारक अन्योन्या भाव की प्रतीति में वैलक्षण्य का स्पष्ट भान होता है ।

११५ अप्राप्तयोस्तु या प्राप्तिः सैवसंयोगईरितः
कीर्तितस्त्रिविधस्त्वेष आद्योऽन्यतर कर्मजः ।।

११५ अमिलित द्रव्यद्वय का जो मिलन वह संयोग कहा जाता है वह संयोग तीन प्रकार का है जिसमें प्रथम अन्यतर कर्मजन्य है अथात् संयुक्त होनेवाले दो द्रव्यों में किसी एक द्रव्यके कर्म से पैदा होनेवाला है ।

११६ तथोभयक्रियाजन्यो—
भवेत्संयोगजोऽपरः ।
आदिमःश्येनशैलादि संयोगः परिकीर्तितः
११७ मेषयोः संनिपातो यः—
सद्वितीय उदाहृतः ।

११६ दूसरा उभय कर्मजन्य और तीसरा संयोग जन्य है इन तीनों में पर्वत के साथ श्येनादि पक्षी का संयोग प्रथम अन्यतर कर्मजन्य संयोग है ।

११७मेड़ों का सन्निपात (टक्कर) रूप द्वितीय उभय कर्मजन्य संयोग है ।

११७ कपालतरु संयोगा—
त्संयोगस्तरु कुम्भयोः ॥
११८ तृतीयः स्यात्कर्मजोऽपि—
द्विधैव परिकीर्तितः ।
अभिघातो नोदनंच शब्दहेतुरिहादिमः ॥
११९ शब्दाहेतुर्द्वितीयः स्याद्
विभागोऽपि त्रिधाभवेत् ।
एककर्मोद्भवस्त्वाद्योद्वयकर्मोद्भवोऽपरः
१२० विभागजस्तृतीयःस्या—
त्तृतीयोऽपिद्विधा भवेत् ।
हेतुमात्र विभागोत्थो हेत्वहेतु विभागजः ॥

११७ कपाल वृक्षके संयोग से उत्पन्न घट वृक्ष का संयोग तृतीय संयोगजन्य संयोग है ।
११८ अन्यतर कर्मजन्य और उभय कर्मजन्य रूप जो कर्मज संयोग वह अभिघात और नोदन के भेद से दो प्रकार का होता है ।
११९ शब्द का जनक जो संयोग वह अभिघात कहा जाता है और शब्द का अजनक जो संयोग वह नोदन कहा जाता है ।

विभाग भी तीन प्रकार का होता है । प्रथम एक कर्मजन्य (अन्यतर कर्मजन्य) है द्वितीय उभय कर्मजन्य है और तृतीय
१२० विभाग जन्य है । तृतीय जो विभाग जन्य विभाग वह भी कारण मात्र विभागजन्य विभाग और कारणाकारण विभागजन्य विभाग के भेद से दो प्रकार का होता है ।

१२१ परत्वञ्चा परत्वञ्च
द्विविधं परिकीर्तितम् ।
दैशिकं कालिकं चापि
मूर्त एवतु दैशिकम् ॥
१२२ परत्वं मूर्तसंयोग
भूयस्त्व ज्ञानतो भवेत् ।
अपरत्वं तदल्पत्व बुद्धितः स्यादितीरितम्

१२१ दैशिक और कालिक भेदसे परत्व तथा अपरत्व दो दो प्रकार के होते हैं । जिन में दूरत्व, समीपत्व रूप दैशिक परत्वापरत्व मूर्त
१२२ मात्र में रहते हैं । दैशिक परत्व बहुतर मूर्त संयोगान्तरितत्व ज्ञान से उत्पन्न होता है और दैशिक अपरत्व अल्पतर मूर्त संयोगान्तरितत्व ज्ञान से उत्पन्न होता है ।

१२३ तयोरसमवायीतु दिक्संयोगस्तदाश्रये ।

१२३ दैशिक परत्वापरत्व का असमवायि कारण दैशिक परत्वापरत्वाश्रय के साथ दिशा का संयोग है ।

(दिवाकर परिस्पन्द भूयस्त्व ज्ञानतोभवेत्

दिवाकर के परिस्पन्द (क्रिया) में भूयस्त्व ज्ञान से जेष्ठत्व रूप कालिक परत्व उत्पन्न होता है ।

१२४ परत्वमपरत्वं तु तदीयाल्पत्वबुद्धितः
अपरत्वसमवायीस्या—
त्संयोगः कालपिण्डयोः ॥

१२४ एवं दिवाकर परिस्पन्द में अल्पत्व ज्ञान से कनिष्ठत्व रूप कालिक अपरत्व उत्पन्न होता है। कालिक परत्वापरत्व का असमवायि कारण कालिक परत्वा परत्वाश्रय के साथ कालका संयोग है।

१२५ अपेक्षाबुद्धि नाशेन नाशस्तेषां निरूपितः

१२५ अपेक्षा बुद्धि के नाश से दैशिक और कालिक परत्वा परत्व का नाश होता है।)

बुद्धेः प्रपञ्च प्रागेव प्रायशो विनिरूपितः
१२६ अथावशिष्टोऽप्यपरः
प्रकारः परिदृश्यते।
अप्रमाचप्रमाचेति ज्ञानंद्विविधमिष्यते ॥

बुद्धि के प्रभेद (प्रकार) का निरूपण पूर्वही अधिक हो चुका है।

१२६ अब उसके अवशिष्ट प्रकार बतलाए जाते हैं। यथार्थ और अयथार्थ के भेद से ज्ञान दो प्रकार के होते हैं। तदभाववद्विशेष्यक और तत्प्रकारक जो ज्ञान वह अयथार्थ ज्ञान कहा जाता है।

१२७ तच्छून्येतन्मतिर्यास्याद्
प्रमासा निरूपिता।
तत्प्रपञ्चो विपर्यासः
संशयोऽपि प्रकीर्तितः ॥

१२७ अयथार्थ ज्ञान विपर्यास और संशय के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

१२८ आद्योदेहेष्वात्मबुद्धिः शंखादौपीततामतिः
भवेन्निश्चयरूपाया संशयाऽथ प्रदर्श्यते ॥

१२८ निश्चयात्मक भ्रम विपर्यास कहलाता है यथा "गौरोहम्" इत्याकारक देह विशेष्यक आत्मत्व प्रकारक निश्चय एवं "शंखः पीतः" इत्याकारक शंख विशेष्यक पीतत्व प्रकारक निश्चय विपर्यास है। अब संशय का स्वरूप बतलाते है।

१२९ किंस्विन्नरोवास्थाणुर्वेत्यादिबुद्धिस्तुसंशयः
तदभावाप्रकाराधीस्तत्प्रकारातु निश्चयः ॥

१२९ "अयं नरोवा स्थाणुर्वा" इत्याकारक बुद्धि संशय रूप है एवं तदभावाप्रकारक तत्प्रकारक ज्ञान निश्चय है।

१३० ससंशयो मतिर्या स्यादेकत्राभावभावयोः
साधारणादिधर्मस्य ज्ञानंसंशय कारणम् ॥

१३० एक वस्तु विशेष्यक विरुद्धभावाभाव प्रकारक ज्ञान संशय होता है। साधारणादि धर्मज्ञान संशय का कारण है।
ज्ञान संशय है। साधारणादि धर्म ज्ञान संशय का कारण है।

१३१ दोषोऽप्रमायाजनकःप्रमायास्तुगुणोभवेत्
पित्तदूरत्वादिरूपो दोषो नानाविधःस्मृतः ॥

१३१ अप्रमाके प्रति दोष और प्रमाके प्रति गुण कारण है। पित्त दूरत्वादि भेदसे दोष अनन्त प्रकारके हैं।

१३२ प्रत्यक्षेतु विशेष्येणविशेषणवतासमम्
संन्निकर्षो गुणस्तुस्यादथ त्वनुमितौपुनः

१३२ विशेषण विशिष्ट विशेष के साथ जो इन्द्रिय का सन्निकर्ष वह प्रत्यक्ष प्रमाने गुण है। साध्य विशिष्ट पक्ष में जो साध्य

व्याप्य हेतु वैशिष्ट्यावगाही ।

१३३ पक्षेसाध्यविशिष्टेतु
परामर्शो गुणो भवेत् ।
शक्ये सादृश्यबुद्धिस्तु भवेदुपमितौगुणः

१३३ परामर्श वह अनुमिति प्रमामें गुण हैं। गवयादि पदके शक्यार्थ गवयादियों में जो गवयादिका सादृश्य ज्ञान वह उपमिति प्रमा में गुण है।

१३४ शाब्दबोधे योग्यताया-
स्तात्पर्यस्याथवा प्रमा।
गुणः स्याद् भ्रमभिन्नन्तु ज्ञानमत्रोच्यते प्रमा ॥

१३४ प्रमात्मक योग्यता ज्ञान अथवा प्रमात्मक ज्ञान तात्पर्य ज्ञान शाब्दबोध प्रमामें गुण है।

१३५ अथवा तत्प्रकारं
यज्ज्ञानं तद्विशेष्यकम ।
तत्प्रमा-न-प्रमानापिभ्रमःस्यान्निर्विकल्पकम्
१३६ प्रकारतादिशून्यंहि
सम्बन्धानवगाहितत् ।
(प्रमात्वं न स्वतो ग्राह्यं संशयानुपपत्तितः ॥

१३५ "तदाश्रय विशेष्यक तत्प्रकारक ज्ञान" प्रमा है और निर्विकल्पक ज्ञान न प्रमा है न भ्रम है।

१३६ जिसहेतु निर्बिकल्पकज्ञान प्रकारता बिशेष्यता शून्य और सम्बन्धानवगाही होता है।

प्रमात्व स्वतो ग्राह्य नहीं है अर्थात् जिस सामग्री से ज्ञान का ग्रह होता है उसी सामग्री से तज्ज्ञाननिष्ठ प्रमात्व का ग्रह नहीं होता है यदि ऐसा न माना जाय तो ज्ञानोत्पत्त्यनन्तर "इदं ज्ञानं प्रमा न वा" इत्याकारक संशय नहीं होगा। (इसका हेतु मुक्तावली मे वतलाया गया है)।

१३७ व्यभिचारस्याग्रहोऽपिसहचारग्रहस्तथा
हेतुर्व्याप्तिग्रहेतर्कः क्वचिच्छंका निवर्तकः ॥

१३७ व्यभिचार ज्ञानाभाव और सहचार ग्रह ये दोनों व्याप्ति ज्ञान के कारण हैं और तर्क कहीं कहीं व्याप्ति ज्ञान के प्रतिबन्धक व्यभिचार शंका का विघातक होने से व्याप्ति ज्ञान में उपयोगी होता है।

१३८ साध्यस्यव्यापकोयस्तहेतोरव्यापकस्तथा
स उपाधिर्भवेत्तस्यनिष्कर्षोयं प्रदर्श्यते ॥

१३८ साध्य का व्यापक और हेतु अर्थात् साधनका अव्यापक जो पदार्थ वह उपाधि कहलाता है। उस उपाधि का निष्कर्ष वतलाते हैं।

१३९ सर्वेसाध्य समानाधिकरणाःस्युरुपाधयः
हेतोरेकाश्रये येषां स्वसाध्यव्यभिचारिता ॥

१३९ सभी उपाधि साध्य के समानाधिकरण होते हैं और हेतु के किसी अधिकरण में उन उपाधियों का व्यभिचारित्व (अभाव) और साध्य का व्यभिचारित्व (अभाव) रहा करता है।

(१४० व्यभिचारस्यानुमानमुपाधेस्तु प्रयोजनम्

१४० हेतु में व्यभिचार का अनुमान करना उपाधि का प्रयोजन है।)

शब्दोपमानयोर्नैव पृथक्प्रामाण्यमिष्यते
१४१ अनुमानगतार्थत्वा
दितिवैशेषिकं मतम् ।
तन्न सम्यग्विनाव्याप्तिबोधं शब्दादिबोधतः

वैशेषिक (कणाद) के मत से शब्द और उपमान इन दोनों में अनुमान से पृथक प्रामाण्य नहीं है। अर्थात् अनुमानही में ये दोनों अन्तर्गत है किन्तु नैयायिक मत से यह ठीक नही है क्योंकि शब्द और उपमानजन्य बोध व्याप्ति ज्ञान की अपेक्षा नहीं करता है।

१४२ त्रैविध्यमनुमानस्यकेवलान्वयिभेदतः
द्वैविध्यंतु भवेद्व्याप्तेरन्वयव्यतिरेकतः
१४३ अन्वयव्याप्तिरुक्तैव
व्यतिरेकादिहोच्यते ।
(साध्याभाव व्यापकत्वंहेत्वभावस्य यद्भवेत्

१४२ केवलान्वयि केवल व्यतिरेकि और अन्वय व्यतिरेकि के भेद से अनुमान तीन प्रकार का होता है एवं अन्वय और व्यतिरेक के भेदसे व्याप्ति दोप्रकारकी होती है। १४३ उसमें अन्वयव्याप्ति का प्रदर्शन पूर्व ग्रन्थसे किया जा चुका है अब व्यतिरेक व्याप्ति का प्रदर्शन यहाँ किया जा रहा है।

(साध्याभाव व्यापकी भूत जो अभाव तादृशाभाव प्रतियोगित्व व्यतिरेक व्याप्ति है।

१४४ अर्थापत्तिस्तु नैवेह प्रामाणान्तर मिष्यते
व्यतिरेकव्याप्तिबुद्धयाचरितार्थाहिसायतः ॥

१४४ अर्थापत्ति प्रमाणान्तर और अनुमानातिरिक्त प्रमाण नहीं है क्योंकि व्यतिरेक व्याप्ति ज्ञान ही में वह अन्तर्भूत हो सकती है।

(१४५ सुखंतुजगतामेव काम्यं धर्मेणजायते ।
(अधर्मजन्यंदुःखंस्यात्प्रतिकूलं सचेतसाम् ।

१४५ सकल प्राणियों की इच्छा का विषय जो सुख वह धर्म से उत्पन्न होता है।)
सकल प्राणियों के द्वेष का विषय जो सुख दुःख वह अधर्म से उत्पन्न होता है।)

१४६ निर्दुःखत्वे सुखेचेच्छातज्ज्ञानादेवजायते
इच्छातु तदुपाये स्यादिष्टोपायत्वधीर्यदि ॥

१४६ दुःखाभाव की इच्छा में दुःखाभाव ज्ञान और सुखकी इच्छामें सुख ज्ञान कारण है। दुःखाभाव और सुख के साधन में इष्ट साधनता ज्ञान रहने से उस साधन की इच्छा होती है।

१४७ चिकीर्षा कृतिसाध्यत्व
प्रकारेच्छाचया भवेत् ।
तद्धतुः कृतिसाध्येष्ट साधनत्व मति र्भवेत् ॥
१४८ बलवद्द्विष्टहेतुत्व मतिःस्यात्प्रतिबन्धिका

१४७ कृति साध्यत्व प्रकारक इच्छा को चिकीर्षा कहा जाता है। कृति साध्यताका ज्ञान और इष्टसाधनता का ज्ञान उस (चिकीर्षा) का कारण है।
१४८ चिकीर्षा के प्रति बलवद्द्विष्ट साधनता का ज्ञान प्रतिबन्धक है।)

(तद्धेतुत्व बुद्धेस्तुहेतुत्वं कस्यचिन्मते ॥

एवं किसी के मत से चिकीर्षाके प्रति बलवत् अनिष्ट के अजनकत्व का ज्ञान ही कारण है।

१४६ द्विष्टसाधनताबुद्धि र्भवेद्द्वेषस्य कारणम्
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च तथा जीवन कारणम्

१५० एवंप्रयत्नत्रैविध्यं
तान्त्रिकैः परिकीर्तितम् ॥

चिकीर्षा कृति साध्येष्टसाधनत्वमतिस्तथा
१५१ उपादानस्य चाध्यक्षं
प्रवृत्तौ जनकं भवेत् ।
निवृत्तिस्तु भवेद्द्वेषाद्द्विष्टसाधनताधियः ॥
१५२ यत्नो जीवन योनिस्तु
सर्वदातीन्द्रियो भवेत्)
शरीरेण प्राणसंचारे कारणं परिकीर्तितम्)
१५३ अतीन्द्रियंगुरुत्वंस्यात्पृथिव्यादि द्वयेतुतत्
(अनित्ये तदनित्यं स्या)न्नित्ये नित्यमुदाहृतम्

१५४ तदेवा समवायिस्य त्पतनाख्येतुकर्मणि
सांसिद्धिकंद्रवत्वंस्यान्नैमित्तिक मथापरम् ॥
१५५ सांसिद्धिकं तु सलिलेद्वितीयंक्षितितेजसोः
परमाणौ जलेनित्य, मन्यत्रा नित्यमुच्यते ॥

१५६ नैमित्तिकं वह्नियोगात्तपनीय घृतादिषु,
द्रवत्वं स्यन्दने हेतुर्निमित्तं संग्रहे तु तत् , ॥

१५७ स्नेहोजले, सनित्योऽणा
वनित्योऽवयविन्यसौ, ।
तैलान्तरे तत्प्रकर्षाद्दहनस्यानुकूलता ॥

१५८ संस्कारभेदो वेगोऽथस्थितिस्थापकभावने
मूर्तमात्रे तु वेगः स्यात्कर्मजो,वेगजःक्वचित् ॥

१४९ उपाय द्वेष के प्रति बलवद्द्विष्टसाधनता ज्ञान कारण है। एवं दुःख और सुखाभाव रूप फल के द्वेषकेप्रति तत्तत्फलका ज्ञान कारणहै

प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवन योनि भेद से प्रयत्न तीन प्रकार का होता है।
१५० ऐसा पण्डितों ने कहा है।

चिकीर्षा, कृति साध्यता ज्ञान इष्ट साधनता ज्ञान और प्रवृत्ति का साध्य जो पदार्थ उसके
१५१ समवायि कारणका प्रत्यक्ष-ये प्रवृत्तिके कारण है द्विष्ट साधनताबुद्धिके द्वेषसे निवृत्ति होती है।

१५२ प्राणियों के जीवन पर्य्यन्त रहने वाला जीवन-योनि नामका यत्न अतीन्द्रिय है और वह शरीर में प्राण सञ्चार का कारण माना जाता है।

१५३, १५४ पूर्वा०गुरुत्व पृथ्वी और जल में रहता है और अतीन्द्रिय है परमाणुगत गुरुत्व नित्य और तदन्यगत गुरुत्व अनित्य है। और वही गुरुत्व आद्यपतन का असमवायि कारण है।

१५४,१५५ सांसिद्धिक नैमित्तिक भेदसे द्रवत्व दोप्रकारके होते हैं। उनमें सांसिद्धिक द्रवत्व जल में और नैमित्तिक द्रवत्व पृथ्वी और तेज में रहता है। जल परमाणु में रहनेवाला द्रवत्व नित्य और पार्थिव तैजस परमाण्वादि एवं जलीय द्वयणुकादि में रहनेवाला द्रवत्व अनित्य है।

१५६ सुवर्णादि रूप तेज में और घृत लाक्षादिरूप पृथ्वी में रहनेवाला द्रवत्व वह्नि संयोगरूप निमित्त से पैदा होने के कारण नैमित्तिक कहा जाता है। द्रवत्व स्यन्दन का असमवायि कारण और संग्रह का निमित्त कारण है।

१५७ जलमात्र मे रहनेवाला स्नेह नित्य अनित्य के भेद से दो प्रकार का है। अणुपरमाणु में नित्य और जन्य जल में अनित्य स्नेह रहता है। तैल में जल रहने पर भी उस जल में अधिक स्नेह रहने के कारण वह जल अग्नि के अनुकूल ही होता है।

१५८ वेग स्थिति स्थापक और भावना के भेद से संस्कार तीन प्रकार का होता है। वेग मूर्त मात्र में रहता है और कर्मज और वेगज के भेद से दो प्रकार का होता है।

१५९ स्थितिस्थापक संस्कारः
क्षितौ,केचिच्चतुर्ष्वपि, ।
अतीन्द्रियोसौ विज्ञेयःक्वचित्स्पन्देऽपि कारणम्

१६० भावनाख्यस्तुसंस्कारोजीववृत्तिरतीन्द्रियः
उपेक्षानात्मकस्तस्य निश्चयः कारणं भवेत् ॥
१६१ स्मरणे प्रत्यभिज्ञाया मप्यसौ हेतुरुच्यते
धर्माधर्मावदृष्टंस्याद्धर्मःस्वर्गादि साधनम्

१६२ गंगास्नानादियागादिव्यापारःसतुकीर्तितः
कर्म्मनाशाजलस्पर्शा दिनानाश्यस्त्वसौमतः ॥
१६३ अधर्म्मोनरकादीनां हेतुर्निन्दित कर्म्मजः
प्रायश्चित्तादिनाश्योऽसौ जीववृत्तीत्विमौगुणौ

१६४ इमौतु वासना जन्यौ ज्ञानादपि विनश्यतः
शब्दोध्वनिश्चवर्णश्च मृदङ्गादि भवोध्वनिः ॥
१६५ कण्ठसंयोगादिजन्या वर्णास्तेकादयोमताः
सर्वःशब्दोनभोवृत्तिः श्रोत्रोत्पन्नस्तु गृह्यते ॥

१६६ वीचीतरङ्ग न्यायेन तदुपत्तिस्तुकीर्तिता
कदम्बगोलकन्यायादुत्पत्तिः कस्यचिन्मते ॥
१६७ उत्पन्नःको विनष्टः क इति बुद्धेरनित्यता ।
(सोऽयं क इति बुद्धिस्तु साजात्यमवलम्बते

१६८ तदेवौषधमित्यादौ सजातीयेऽपिदर्शनात्)
तस्मादनित्या एवेति वर्णाः सर्वे मतं हिनः ॥

इति सार्थं न्याय कारिकावली समाप्ता ॥

१५९ स्थिति स्थापक संस्कार पृथ्वी में माना जाता है, और किसी के मत से वह पृथिव्यादि चारों में माना जाता है । वह संस्कार अतीन्द्रिय है और, कहीं कहीं आकृष्ट शाखादि में जो स्पन्द होता है उसका कारण है।
१६० जीवात्मा में रहनेवाला भावनाख्य संस्कार अतीन्द्रिय है । और उपेक्षानात्मक निश्चय उसका कारण होता है ।
१६१ 'सएवायं देवदत्तः' इत्यादि प्रत्यभिज्ञा और स्मरण का कारण भावनाख्य संस्कार हैं ।
१६१,१६२ पूर्वा० धर्म अधर्म दोनों अदृष्ट शब्दके अर्थ है उनमें धर्म स्वर्ग का कारण है । और वह धर्म गङ्गा स्नानादि यागादिरूप क्रिया का व्यापार है
१६२ उत्त. कर्मनाशा नदी के जल स्पर्शादि से धर्म का नाश होता है ।
१६३, श्रुति स्मृति निषिद्ध कर्म से उत्पन्न होनेवाला अधर्म नरकादि सकल दुःखों का कारण है । और प्रायश्चित्तादि से नाश्य है । एवं धर्म अधर्म दोनों जीवात्मा में रहते हैं ।
१६४पूर्वा. धर्म और अधर्म मिथ्या ज्ञान जन्य वासना से उत्पन्न होते हैं और तत्वज्ञान से नष्ट होते हैं ।
१६४, १६५, १६६ पू० ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक के भेद से शब्द दो प्रकार के होते हैं । उनमें मृदङ्गादिजन्य शब्द ध्वन्यात्मक है और कण्ठ संयोगादि जन्य ककाराद्यात्मक शब्द वर्णात्मक है । ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक दोनों प्रकार के शब्द आकाश में समवेत है और श्रोत्रेन्द्रिय में उत्पन्न होनेपर ज्ञात होते हैं । वीचीतरंगन्याय से शब्द की उत्पत्ति होती है ।
१६६, उत्त० किसी के मत से कदम्बगोलक न्याय से शब्द की उत्पत्ति होती है ।
१६७, ककारादि शब्दों के उत्पाद बिनाश की प्रतीति होने के कारण शब्द मे अनित्यता मानी जाती है । यह वही ककार है जिसको पूर्व में सुन चुका हूं यह प्रतीति पूर्वश्रुत ककार के सजातीय ककार को विषय करती है ।
१६८, जिस औषध को मैंने किया था वही औषध दूसरेसेभी किया गया है ; इत्यादि स्थलमें अन्यकृत औषध को स्वकृत औषध से भिन्न रहने पर भी उसकी प्रत्यभिज्ञा होने के कारण उस प्रत्यभिज्ञा को सजातीय विषयक अवश्य मानना होगा । अतः ध्वन्यात्मक एवं वर्णात्मक सभी शब्द अनित्य ही है । यह हम नैयायिकों का सिद्धान्त है ।